श्रीमद्भगवद्गीतासु
भक्तियोगः
(१२मो अध्याय)

प्रवचनकार
गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक :
गोस्वामी श्याम मनोहर.
६३,स्वस्तिकसोसायटी
४था रस्ता, जुहुस्कीम
पार्ले, मुंबई.४०००५६

प्रकाशनार्थ आर्थिकसहयोग :
पुष्टिमार्गीय वैष्णवसमुदाय (किशनगढ़)
श्रीमती सरस्वती न.मित्तल (अंधेरी, मुंबई)
मथुरादास भाटिया (मुंबई)
हितेन्द्र शाह (कांदिवली, मुंबई)
रुचिरेन्द्र झाला (बोरिवली, मुंबई)

प्रकाशनवर्ष :
वि.सं.२०६७.

निःशुल्कवितरणार्थ
प्रति :२०००

मुद्रक :
रमा आर्ट्स्,
४, चुनावाला इन्डस्ट्रिअल् एस्टेट्,
कोंडिविटा, अंधेरी (पूर्व),
मुंबईः४०० ०५९.

।।श्रीकृष्णाय नमः।।

।।भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डाय नमः।।

माहात्म्यबोध–परिपुष्ट–रति–स्वरूप
श्रीकृष्णभक्ति–सरणी–तरणीः किलायं।
मोहान्धकार–कलि–कल्मष–वारको वै
श्रीवल्लभो विजयते जगदैकबन्धुः।।

तत्वार्थदीपनिबन्धके शास्त्रार्थप्रकरणमें आचार्यचरण स्वयं अपनी ज्ञानप्राप्तिको प्रकार बतावे हैं :

''वक्ता स्वस्य तादृशज्ञानप्राप्तौ प्रकारम् आह भगवच्छास्त्रम् आज्ञाय विचार्य च पुनः पुनः... भगवच्छास्त्रम् आज्ञाय इति, अन्यथा अनाप्तत्वं स्यात्. भगवच्छास्त्रं भागवतं, गीता, पञ्चरात्रं च इति''.

मुख्यशास्त्र बताते भये आपश्री आज्ञा करे हैं :

''एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं देवकीपुत्रेण गीतं=गीता... वेदानामपि तदुक्तप्रकारेण अर्थनिर्णयः... शास्त्रम् अवगत्य मनो–वाग्–देहैः कृष्णः सेव्यः इति अर्थः... शास्त्रार्थो=गीतार्थः... कृष्णवाक्यानुसारेण शास्त्रार्थं ये वदन्ति हि ते हि भागवताः प्रोक्ता शुद्धाः ते ब्रह्मवादिनः''.

(त.दी.नि.प्र.१।३–५,२१)

सर्वनिर्णयप्रकरणके भक्तिप्रकरणमें आपश्री आज्ञा करें हैं **''श्रवणादीनां साधनत्वे प्रमाणं गीता. 'भक्त्यातु अनन्यया शक्यः' इति साधनसाध्यरूपाम् एकीकृत्य आह. गीतायाअपि प्रामाण्यं फलवाक्यात्''** (त.दी.नि.२।२२१).

आचार्यचरणके इन् वचनन्के बावजूद अपने सम्प्रदायमें गीतापरक भाषासाहित्य प्रमाणमें कम मात्रामें उपलब्ध होवे है और सम्प्रदायानुयायीन्में गीताकी समझ भी कम दीखे है. जिन्को झुकाव गीताके प्रति ज्यादा है, उनकु सम्प्रदायमें दीक्षित होवेके बावझूद अपनी सेवा–कथाकी साधनाप्रणालीसुं ज्ञानमार्गीय श्रवण–मननादिकी उत्कृष्टताको भ्रम सतावे है. उनकी गीताकी समझ वाल्लभ दर्शन/मत अनुसार नहिं होके अन्यान्य दर्शन/मत अनुसार दीखे है. या लिये गीतासाहित्यकी अतीव आवश्यकता है.

पू.गो.श्रीश्याममनोहरजीके द्वारा भगवद्गीताके द्वादशाध्याय **'भक्तियोग'**पे किशनगढ़में जो अष्टदिवसीय प्रवचनसत्र करीब ३२ वर्षपूर्व आचार्यचरणके प्राकट्योत्सवके उपलक्ष्यमें सम्पन्न भयो हतो, वह आज अपने सामने पुस्तकाकारमें प्रकट हो रह्यो है. ये अतीव हर्षकी बात है.

यामें आपश्रीने बतायो है के गीता समझनी मुश्किल है, क्योंके ये कोई एक रोगपे दी जाती औषधिरूप न होके औषधीन्को भण्डार है. याके कारण ही भगवान् श्रीकृष्णने साधनन्की अभीष्टतमतामें भक्तिकु श्रेष्ठ बतायी है, कुरुक्षेत्रमें अर्जुनके कर्तव्यकी जिज्ञासा होय तो निरहंकार निष्काम कर्मकु श्रेष्ठ बतायो है; और इन् दोनोंन्मेंसु कोइ साधनावलम्बनकी निर्भरता न होय तो शरणागति श्रेष्ठ बतायी है.

प्रवचनसत्रको विचार करवेपे निम्नलिखित मुद्दा सामने आवे हैं :

उपक्रम : गीताके स्वरूपको विचार –

प्रवचनके उपक्रममें १.भगवद्गीता क्या है? २.भगवद्गीताको सार क्या है? ३.गीताके उपदेशको क्रम क्या है? ४.गीतोपदेष्टाको निर्णय क्या है? इन् दृष्टिकोणन्सु गीताको स्वरूप आपश्रीने समझायो है. वाके बाद कर्मी ज्ञानी और भक्त सु कर्मयोगी ज्ञानयोगी और भक्तियोगी श्रेष्ठ है ये समझाके०सु भक्तियोग समझावेको उपक्रम कियो है.

भक्ति ये अंशी परब्रह्म परमात्मा कु भजनीय भगवान् और अंश जीवकु भक्त बनावेवालो सम्बन्ध है. यासु या प्रवचनसत्रमें सरल भाववाही शब्दन्में **१.भजनीयको स्वरूप २.भक्तिको स्वरूप ३.भक्तन्को स्वरूप** इन् तीनों पहलून्पे विशद विचार कियो गयो है.

भजनीयके स्वरूपको विचार :

१.परमात्मा कलाकार जगत् वाकी कला २.सारे नाम-रूप वाने धारण किये है ३.भगवान् कृष्णकी तीन तरहसु क्रीडा ४.भर्ता सन् म्रियमाणो बिभर्ति इत्यादिरूपमें कियो गयो है.

भक्तिके स्वरूपको विचार :

१.भक्ति भी संकल्पभेदसु भिन्न बने है २.ध्यानको महत्व ३.निर्गुणभक्तियोग ४.भक्ति और उपासना ५.भक्ति दुर्लभ भी और सुलभ भी ६.भक्ति अकृत्रिम भाव ७.'भक्ति'शब्दके विभिन्न अर्थ ८.भक्तिकी जड़न्को सिंचन इत्यादिरूपमें कियो गयो है.

भक्तके स्वरूपको विचार :

१.भजनकर्तान्के प्रकार २.अहन्ता-ममताको नशा सभीकु चढ़्यो भयो है ३.सर्वभूतहिते रतः ४.अज्ञानी-शास्त्रज्ञानी-भगवद्ज्ञानी ५.ईश्वरको स्नेही और भक्त ६.अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् इत्यादिरूपमें कियो गयो है.

भक्तियोगके प्रवचनचित्रमें इन् मुख्य रंगन्के साथ साथ बहोत सारे महत्वके मुद्दान्पे सरल शब्दन्में गंभीर वाल्लभ तत्वचिन्तनके रंगकी अनोखी छटा भी दीखे है जैसे : १.महाप्रभुजीको स्थायीभाव २.भजनीयविनाशयोग ३.वेदान्तके तीन वाद ४.गीताको मुख्य सिद्धान्त ५.साकारता-सर्वाकारता-निराकारता-व्यक्ताकारता.

आपश्रीके प्रवचनशैलीकी विशेषता है हंसते-हंसाते भये अति महत्वपूर्ण सन्देश देवेवाली प्रसंगोक्ति जैसे १.मोटरके आगे घोड़ा २.कामपुरुषार्थकी परिक्रमा ३.भगवान्

क्या बहरा है? ४.सेवामें भी अहंको नशा ५.दैन्यमेंभी अहंकार ६.जगत्को तमाशा ७.दुर्विदग्धकी दुविधा ८.यमुनाजलके नामपे तमसाजल इत्यादिमें दीखे है.

पत्रावलम्बनमें वैदिक स्वाध्यायके लिये दी गई guide line मार्गनिर्देश **'''आ' सर्वतः पुनः तत्र यथा शंका न जायते शब्दे हि अर्थे हि अनुष्ठाने तथा अध्येयो हि वैदिकै :''** न्यायानुसार गीताशास्त्रके भक्तियोगको स्वाध्याय पू.गो.श्रीश्याममनोहरजीसु करवेको जो लाभ प्रवचनसत्रार्थीन्कु भयो, वो आज हम सभीन्कु भी या पुस्तकके माध्यमसु प्राप्त हो रह्यो है ऐसो हमकु लगे है. जा स्वाध्यायलाभके आनन्दके सामने भक्तियोगके रसिकजन भाषाकीय अज्ञानके कारण तथा लिपिबद्ध करवे आदिमें जो भी यामें हमारी क्षति रह गई है उनकु क्षम्य गिनेंगे.

अशोक शर्मा
धर्मेन्द्रसिंह झाला
पद्मिनी झाला

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ट
पहले दिनको प्रवचन	**१–३२**
१.द्वादशाध्याय	१
२.भगवद्गीता उपनिषदन्को सार है	११
३.गीताको सार	१२
४.गीतोपदेष्टाको निर्णय	१५
५.दो स्तरपे गीताको उपदेश	१६
६.भक्तियोगको फलितस्वरूप द्वादशाध्याय	१७
७.गीताके उपदेशको क्रम	१८
८.कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग के बीज	१८
९.भक्त और भक्तियोगी	२१
१०.ज्ञानी और ज्ञानयोगी	२१
११.कर्मी और कर्मयोगी	२४
१२.भक्ति भी संकल्पभेदसु भिन्न बने है	२५
१३.ध्यानको महत्व	२८
१४.सब संप्रदायनुकु एक कर दो	३०
१५.सच्ची दिशामें कदम रखनो जरूरी	३१
१६.अर्जुनको प्रश्न	३२
दूसरे दिनको प्रवचन	**३३–५८**
१७.भजनकर्तान्के प्रकार	३३
१८.एकही कार्य भिन्न-भिन्न पुरुषार्थरूप	३४
२०.नित्ययुक्तभक्ति	३८
२१.मोटरके आगे घोड़ा	३८
२२.भक्तिपुरुषार्थ	३९
२३.कामपुरुषार्थकी परिक्रमा	४०
२४.भगवान्की असूया	४१
२५.भजनीयविनाशयोग	४३
२६.भगवान् क्या बहरा है?	४५
२७.सब संप्रदाय सब धर्म के भेद मिथ्या	४९
२८.भक्ति डेटिंग् नहीं. भक्ति तो एक धर्म एक व्रत एक नेमा	५०
२९.निर्गुणभक्तियोग	५२
तीसरे दिनको प्रवचन	**५५–७४**
३०.उपनिषदन्में लगते विरोधाभासको निराकरण गीतासु	५५
३१.महाप्रभुको स्थायी भाव	५६
३२.'माया' नहीं 'लीला' कहो	५८
३३.परमात्मा एक कलाकार है और जगत् वाकी कला है	५९
३४.सारे नाम रूप वाने धारण किये हैं	६०
३५.वेदान्तके तीन वाद	६४
३६.अव्यक्ता हि गतिः दुःखम्	६७
३७.अहन्ता-ममताको नशा सभीकु चढ़्यो भयो है	६८
३८.सेवामेंभी अहंको नशा	६९
३९.दैन्यमेंभीअहंकार	७०
४०.व्रतन्में भी चक्कर	७२
चौथे दिनको प्रवचन	**७४–९८**
४१.भगवान् कृष्णकी क्रीड़ा तीन तरहसुं	७४
४२.जगत्को तमाशा	८०
४३.सर्वाकारकु समझनो मुश्किल	८०

४४.क्या सर्वाकारता केवल उपासनार्थ है? ८४
४५.ज्ञानयोग और भक्तियोग ८५
४६.भक्ति:परमात्माकु समझके भगवान्कु
चाहनो गीताको मुख्यसिद्धान्त ८६
४७.दुर्विदग्धकी दुविधा ९०
४८.तस्मात् योगी भव अर्जुन ९१
४९.अर्जुनको सन्देह/अक्षरको रहस्य ९२
पांचवें दिनको प्रवचन **९५–१२०**
५०.आरम्भवाद विवर्तवाद और परिणामवाद ९५
५१.यथार्थकी यथोपासनता ९६
५२.कर्ता कारयिता हरिः ९७
५३.विभिन्न दर्शनकी भिन्न-भिन्न दृष्टि ९८
५४.कर्म स्वभाव और काल के अधिदेव
ब्रह्मा विष्णु शिव १०१
५५.यमुनाजलके नामपे तमसाजल १०२
५६.तत्व एक पर आधिभौतिक आध्यात्मिक
आधिदैविक होवेको त्रैविध्य १०४
५७.साकारता सर्वाकारता निराकारता
व्यक्ताकारता १०६
५८.भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग १०८
५९.ज्ञानयोग=व्यक्तमें अव्यक्तकी और
भक्तियोग=अव्यक्तमें व्यक्तकी खोज १०९
६०.तुलना दो व्यक्तन्के बीच होवे
अव्यक्तके साथ नहीं ११०
६१.शास्त्रको उपदेश और वा उपदिष्टमें
विश्वास ११३

६२.ब्राह्मिकी सत्ता नाम-रूप-कर्मन्को
अजस्र स्रोत ११४
६३.नाम-रूप-कर्मके प्रवाहमें तैरनो बहनो
या तटस्थ बनके मजा लेनी ११६
६४.भक्तिकी आवश्यकता मनको भजनीयमें
नित्ययोग परन्तु ज्ञानमें वो अनावश्यक ११९
छट्ठे दिनको प्रवचन **१२१–१४२**
६५.मुहमें रखते ही गरमी सुहागसौंठकी नहीं
पर वाके मसालाके महिमाकी १२१
६६.भक्ति और उपासना १२३
६७.भक्तिके अनुभाव बेबसीके पर
उपासनाके ऐच्छिक १२५
६८.शाखारुन्धन्तीन्याय उपासनामें अच्छो
भक्तिमें खराब १२८
६९.अध्यारोपापवादसु आगे ज़ेनसाधनामें
अपोहितांगीकारकी प्रक्रिया १२९
७०.भर्ता सन् म्रियमाणो बिभर्ति १३१
७१.निन्दकन्की निन्दाकी निन्दारसानुभूति १३५
७२.संसारीके ब्रह्मज्ञानकी गुरुपादुकाकी नौटंकी १३९
सातवे दिनको प्रवचन
भक्तिमार्गाब्जमार्तण्ड श्रीमदाचार्यचरण **१४३–१५९**
७३.भक्ति दुर्लभ भी और सुलभ भी १४३
७४.मिथ्या अहंता १४९
७५.भक्तिको भाव समर्पणको भाव १४९
७६.भक्ति एक अकृत्रिमभाव १५१
७७.'भक्ति'शब्दके विभिन्न अर्थ १५२

आठवें दिनको प्रवचन **१६०–१९०**
७८.प्रभुसु सगाई–विवाहकी तरह
भक्तियोगकी साधनदशा–सिद्धदशा १६०
७९.अज्ञानी–शास्त्रज्ञानी–भगवद्ज्ञानी १६२
८०.ईश्वरको स्नेही और भक्त १६४
८१.विषयानन्द एक भूलावा १६५
८२.अव्यक्तोपासना–व्यक्तोपासना १६७
८३.ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः १६८
८४.अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते १६९
८५.अभ्यासयोग १७१
८६.भक्तिकी जड़नूको सिंचन १७२
८७.अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् १७४
८८.मैत्रः करुणएव च १७६
८९.निर्ममो निरहंकारः... १७६
९०.अभ्यासेऽपि असमर्थोऽसि... १७८
९१.ये यथोक्तं पर्युपासते...तेअतीव मे प्रियाः १७९
अमृतवचनावली **१८१–२१३**

पहले दिनको प्रवचन

गीताके द्वादशाध्यायपे अपन् विचार करेंगे. जैसे कह्यो जाय **''श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः''** (बृह.उप.२।४।५), भगवद्वाणीको पहले श्रवण करनो, फिर वाको मनन करनो और फिर निदिध्यासन करनो. वा न्यायसु जितने दिन प्रवचन चलेगो उतने दिन या अध्यायको पाठ भी अपन् करेंगे.

।।अथ द्वादशाध्यायः।।

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ताः ये भक्ताः त्वां पर्युपासते।।
ये चापि अक्षरम् अव्यक्तम् तेषां के योगवित्तमाः।।१।।

एवम् सततयुक्ताः ये भक्ताः त्वाम् पर्युपासते ये च अपि अक्षरम् अव्यक्तम् तेषाम् के योगवित्तमाः?।।१।।

ये=जो, भक्ताः=भक्तजन, एवम्=या प्रकारसु सततयुक्ताः=निरन्तर आपके भजनमें लगे भए, त्वाम्=आपके (साकाररूपकु), पर्युपासते=अति श्रेष्ठ भावसु उपासना करे हैं, च=और, ये=जो, अव्यक्तम् अक्षरम्=अव्यक्त अक्षरको, अपि=ही, तेषाम्=उन् दोनों भक्तनूमें, के=कौंन, योगवित्तमाः=अति उत्तम योगवेत्ता है?

जो भक्तजन या प्रकारसु निरन्तर आपके भजनमें लगे भए आपके साकार रूपकी ही और जो अव्यक्त निराकार अक्षरकी ही अति श्रेष्ठ भावसु उपासना करे हैं, उन दोनों भक्तनूमें अति उत्तम कौंन है?

श्रीभगवान् उवाच

मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।।
श्रद्धया परया उपेता ते मे युक्ततमा मताः।।२।।

मयि आवेश्य मनः ये माम् श्रद्धया परया उपेता नित्ययुक्ताः उपासते ते मे युक्ततमाः मताः।।२।।

मयि=मेरेमें, मनः=मनकु, आवेश्य=एकाग्र करके, श्रद्धया परया उपेता=परम श्रद्धासुयुक्त, नित्ययुक्ताः=निरन्तर ये=जो, माम्=मेरेसाकाररूपकी, उपासते=उपासना करे हैं, ते=वे, मे=मोकु, युक्ततमाः=युक्ततम, मताः=लगे हैं.

जो मेरेमें मनकु एकाग्र करके निरन्तर अति श्रेष्ठ श्रद्धासु युक्त होके मेरी उपासना करे हैं, वो मोकु युक्ततम लगे हैं.

येतु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते।।
सर्वत्रगम् अचिन्त्यम् च कूटस्थम् अचलं ध्रुवम्।।३।।
सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।४।।

येतु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तम् पर्युपासते सर्वत्रगम् अचिन्त्य कूटस्थम् अचलम् च ध्रुवम् संनियम्य इन्द्रियग्रामम् सर्वत्र समबुद्धयः ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।३-४।।

तु=और, ये=जो पुरुष, इन्द्रियग्रामम्=इन्द्रियन्के समुदायकु, संनियम्य=भली प्रकारसु वशमें करके, अचिन्त्यम्=मन बुद्धिसु परे, सर्वत्रगम्=सर्वव्यापि, अनिर्देश्यम्=अकथनीयस्वरूप, च=और, कूटस्थ=सदाएकरसरहवेवाले, ध्रुवम्=नित्य, अचलम्=अचल, अव्यक्तम् अक्षरम्=निराकार अक्षरकी, पर्युपासते=अच्छी तरह उपासना करे हैं, ते=वे, सर्वभूतहिते रताः=संपूर्ण भूतन्के हितमें रत भये, सर्वत्र=सबमें समबुद्धयः=समान बुद्धिवाले माम् एव=मोकु ही प्राप्नुवन्ति=प्राप्त होवे हैं.

परन्तु जो पुरुष इन्द्रियन्के समुदायकु भली प्रकारसु वशमें करके मन-बुद्धिसु परे सर्वव्यापि अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहवेवाले नित्य अचल निराकार

अविनाशी अक्षरब्रह्मको निरन्तर एकीभावसु ध्यान करे हैं भजे हैं, वे सम्पूर्ण भूतन्के हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मोकु ही प्राप्त होवे हैं.

क्लेशो अधिकतरः तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्।।
अव्यक्ता हि गतिर् दुःखम् देहवद्भिः अवाप्यते।।५।।

अव्यक्तासक्तचेतसाम् तेषाम् अधिकतरो क्लेशो (भवति) हि देहवद्भिः अव्यक्ता गतिः दुःखम् अवाप्यते।।५।।

अव्यक्तासक्तचेतसाम्=अव्यक्तब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले तेषाम्=उन पुरुषन्को अधिकतरः=अधिकतर क्लेशः=क्लेश होवे है हि=क्योंके देहवद्भिः=देहाभिमानीन्कु, अव्यक्ता गतिः=अव्यक्तविषयक गति, दुःखम्=दुःखपूर्वक अवाप्यते=प्राप्त होवे है.

निराकार ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले उन् पुरुषन्कु विशेष परिश्रम होवे है. क्योंके देहाभिमानीन्कु अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त हो जावे है.

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।६।।
तेषाम् अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसाम्।।७।।

ये तु मत्पराः सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य अनन्येनैव योगेन माम् ध्यायन्तः उपासते. हे पार्थ मयि आवेशितचेतसाम् तेषाम् अहं मृत्युसंसारसागरात् न चिरात् समुद्धर्ता भवामि।।६-७।।

येतु=जो तो, मत्पराः=मेरेमें परायण, सर्वाणि कर्माणि =संपूर्ण कर्मन्को, मयि संन्यस्य=मोकु अपर्ण करके, माम् एव=मोकु ही अनन्येन भावेन=अनन्य भावसु

ध्यायन्त=चिन्तन करते भये उपासते=भजे है. मयि आवेशितचेतसाम् तेषाम्=मेरेमें आवेशितचित्तवाले भक्तन्को, अहम्=मैं, न चिरात्=शीघ्र ही मृत्युसंसारसागरात्=मृत्युरूप संसारसमुद्रसु न चिरात्=शीघ्र ही समुद्धर्ता भवामि=उद्धार करवेवालो बनु हुं.

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।।
निवसिष्यसि मय्येव अतः ऊर्द्धं न संशयः।।८।।

मय्येव मनः आधत्स्व मय्येव बुद्धिम् निवेशय अतः ऊर्द्धवम् मय्येव निवसिष्यसि न संशयः।।८।।

मय्येव=मेरेमें हि, मनः आधत्स्व=मनकु लगा, मय्येव=मेरेमें हि, बुद्धिम्=बुद्धिकु, निवेशय=लगा, अतः ऊर्द्धम्=याके उपरान्त, मय्येव=मेरेमें हि, निवसिष्यसि=निवास करेगो, न संशयः=यामें संशय नहीं है.

मेरेमें ही मनकु लगा और मेरेमें ही बुद्धिकु लगा याके उपरान्त तु मेरेमें ही निवास करेगो, यामें कुछ भी संशय नहीं है.

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।।
अभ्यासयोगेन ततो माम् इच्छ आप्तुं धनञ्जय।।९।।

अथ मयि चित्तं स्थिरम् समाधातुं न शक्नोषि ततो हे धनञ्जय अभ्यासयोगेन माम् आप्तुम् इच्छ।।९।।

अथ=यदि तु मयि=मेरेमें चित्तम्=चित्तकु स्थिरम् समाधातुम्=अचल स्थापन करवेके लिये, न शक्नोषि=समर्थ न होय, ततः=तो, हे धनञ्जय=हे अर्जुन, अभ्यासयोगेन=अभ्यासयोगके द्वारा, माम्=मोकु, आप्तुम्=प्राप्त करवेके लिये इच्छ=इच्छा कर.

यदि तु मनकु मेरेमें अचल स्थापन करवेके लिये समर्थ न होय तो हे अर्जुन अभ्यासयोगके द्वारा मोकु प्राप्त करवेकी इच्छा कर.

अभ्यासेऽपि असमर्थो असि मत्कर्मपरमो भव।।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिम् अवाप्स्यसि।।१०।।

अभ्यासे अपि असमर्थो असि मत्कर्मपरमो भव मदर्थम् कर्माणि कुर्वन् अपि (/मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्) सिद्धिम् अवाप्स्यसि।।१०।।

अभ्यासे अपि=अभ्यासमें भी, असमर्थः=असमर्थ, असि=होय (तर्हि)=तो, मत्कर्मपरमो=मेरे कर्म करवेमें ही परायण, भव=बन, मदर्थम्=मेरे लिये, कर्माणि=कर्मन्कुं, कुर्वन्=करते भये, अपि=भी, सिद्धिम्=सिद्धिकु अवाप्स्यसि=प्राप्त कर पायेगो.

अभ्यासमें भी असमर्थ होय तो केवल मेरे लिये कर्म करवेमें ही परायण हो जा. मेरे लिये कर्मन्कु करते भये भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिकु ही प्राप्त कर पायेगो.

अथ एतदपि अशक्तो असि कर्तुम् मद्योगम् आश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।११।।

अथ एतदपि कर्तुम् अशक्तो असि ततः यतात्मवान् (सन्) मद्योगम् आश्रितः सर्वकर्मफलत्यागं कुरु।।११।।

अथ=यदि एतदपि=याकु भी कर्तुम्=करवेमें अशक्तो=असमर्थ असि=होय ततः=तो यतात्मवान्=प्रयत्नशील (सन्)=होके मद्योगम्=मेरी प्राप्तिरूप योगकु आश्रितः=शरण हो जा, सर्वकर्मफलत्यागं=सर्वकर्मन्के फलको त्याग कुरु=कर.

श्रेयोहि ज्ञानम् अभ्यासाद् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते।।
ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् शान्तिः अनन्तरम्।।१२।।

ज्ञानं हि अभ्यासात् श्रेयः, ज्ञानाद् ध्यानम् विशिष्यते, ध्यानात् कर्मफलत्यागः, त्यागाद् अनन्तरम् शान्तिः।।१२।।

ज्ञानम् हि=ज्ञान हि, अभ्यासात्=अभ्याससु, श्रेयः=श्रेय है. ज्ञानात्=ज्ञानसु, ध्यानम्=मेरे स्वरूपको ध्यान, विशिष्यते=श्रेष्ठ है (तथा) ध्यानात्=ध्यानसु भी, मेरे लिये कर्मफलको त्यागः=कर्मफलत्याग (श्रेष्ठ है). त्यागात्=त्यागसु, अनन्तरम्=तत्काल ही, शान्तिः=परम शान्ति मिले है.

ज्ञान हि अभ्याससु श्रेष्ठ है. ज्ञानसु मेरे स्वरूपको ध्यान श्रेष्ठ है. ध्यानसु भी कर्मफलत्याग श्रेष्ठ है. त्यागसु ही परमशान्ति मिले है.

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुणएव च।।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।१३।।

सर्वभूतानाम् अद्वेष्टा, मैत्रः करुणएव च, निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।१३।।

सर्वभूतानाम्=सर्वभूतन्में अद्वेष्टा=द्वेषभाव रहित, मैत्रः=मित्रभाववाले, च=और करुणएव=हेतुरहित करुणावान्, निर्ममः=ममता रहित, निरहंकार=अहंकाररहित, समदुःखसुख=सुखदुःखन्की प्राप्तिमें समान, क्षमी=क्षमावान्.

सर्वभूतन्में द्वेषभावसु रहित, स्वार्थरहित मैत्री और करुणावान् तथा ममतारहित एवं अहंकाररहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें समान और क्षमावान्.

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मयि अर्पितमनोबुद्धिर् यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१४।।

सततम् सन्तुष्टः योगी यतात्मा दृढनिश्चयः मयि अर्पितमनोबुद्धिः यः मद्भक्तः सः मे प्रियः।।१४।।

सततम्=सतत, सन्तुष्टः=सन्तुष्ट होय, योगी=ध्यानयोगमें युक्त, यतात्मा=मन और इन्द्रियन् कु बसमें कियो भयो, दृढनिश्चयः=दृढ़ निश्चयवालो, मयि अर्पितमनोबुद्धिः=मेरेमें अर्पित मनह्बुद्धिवालो, यः=जो, मद्भक्तः=मेरो भक्त, स=वह मे=मोकु प्रियः=प्रिय है.

सतत सन्तुष्ट ध्यानयोगमें युक्त मन और इन्द्रियन् कु बशमें करवेवालो दृढनिश्चयवालो मोमें अर्पित मन और बुद्धिवालो जो मेरो भक्त है वह मोकु प्रियः है.

यस्माद् नोद्विजते लोको लोकाद् नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर् मुक्तो यः स च मे प्रियः।।१५।।

यस्माद् लोको न उद्विजते, लोकात् च यो न उद्विजते, हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः यः स च मे प्रियः।।१५।।

यस्मात्=जासु लोको न उद्विजते=लोक उद्वेगकु प्राप्त न होते होवें, च=और लोकात्=लोकसु यः=जो न उद्विजते=उद्वेगकु प्राप्त न होते होवें, हर्षामर्षभयोद्वेगैः=हर्ष-अमर्ष-भय-उद्वेगादि सुं मुक्तः=मुक्त यः=जो स=वह च=ही मे=मोकु प्रियः=प्रिय है.

जासुं लोक उद्विग्न न होते होवें है और जो स्वयं लोकसु उद्विग्न न होतो होवे ऐसो हर्ष-अमर्ष-भय-उद्वेगसु मुक्त जो है वो मोकु प्रिय है.

अनपेक्षः शुचि दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१६।।

अनपेक्षः शुचि दक्षः उदासीनः गतव्यथः सर्वारम्भपरित्यागी यः मद्भक्तः स मे प्रियः।।१६।।

अनपेक्षः=अपेक्षारहित शुचिः=शुद्ध दक्षः=चतुर उदासीनः=पक्षपातरहित गतव्यथः=व्यथासु रहित, सर्वारम्भपरित्यागी=सर्वारम्भको परित्याग करवेवालो यः=जो मद्भक्तः=मेरो भक्त है स=वो मे=मोकु प्रियः=प्रिय है.

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।।१७।।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।।१७।।

यो=जो न हृष्यति=हर्षित न होतो होवे, न द्वेष्टि=द्वेष न करतो होय, न शोचति=शोक न करतो होय, न कांक्षति=कामना न करतो होय, शुभाशुभपरित्यागी=शुभ और अशुभ सभी कर्मन्के फलन्को त्यागी होय, यः=ऐसो जो भक्तिमान्=भक्तिमान् है स=वो मे=मोकु प्रियः=प्रिय है.

जो न हर्षित होवे है न द्वेष करे हैं न शोक करे हैं न कामना करतो होय शुभ और अशुभ सभी कर्मन्के फलन्को त्यागी होय ऐसो जो भक्तिमान् है वो मोकु प्रिय लगे है.

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुख-दुःखेषु समः संगविवर्जितः।।१८।।

शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः (यः) समः, शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः।।१८।।

शत्रौ मित्रे च=शत्रु और मित्र में तथा मानापमानयोः च=मान और अपमान में (यः) समः=जो समान होय तथा=तथा शीतोष्णसुखदुःखेषु=सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखादिके द्वन्द्वन्में, समः=समान होय (च)=और संगविवर्जितः=आसक्तिसु रहित है.

जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें समान है, तथा सर्दी-गर्मी, सुख-दुःखादि के द्वन्द्वन्में सम होय और आसक्तिसु रहित होय.

तुल्यनिन्दास्तुतिर् मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियो नरः।।१९।।

तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी येन केनचित् सन्तुष्टो अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् नरो मे प्रियः।।१९।।

तुल्यनिन्दास्तुतिः=निन्दा-स्तुतिकु समान समझवेवालो, मौनी=मननशील, येन केनचित् सन्तुष्टो=जो कछु प्रकारसु शरीरको निर्वाह करवेमें सन्तुष्ट, अनिकेत=रहवेके स्थानके बारेमें ममतारहित होय, (सः)=वो स्थिरमतिः=स्थिरबुद्धिवालो भक्तिमान्=भक्तिमान् नरः=नर मे=मोकु प्रियः=प्रिय लगे है.

निन्दा-स्तुतिकु समान समझवेवालो, मननशील, और कोईभी प्रकारसु शरीरके निर्वाहमें सन्तुष्ट और रहवेके स्थानमें ममतारहित ऐसो स्थिरबुद्धिवालो भक्तिमान् पुरुष मोकु प्रिय लगे है.

येतु धर्म्यामृतम् इदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः।।२०।।

येतु मत्परमाः श्रद्दधाना इदं धर्म्यामृतम् यथोक्तं पर्युपासते ते भक्ताः मे अतीव प्रियाः।।२०।।

ये=जो तु=तो मत्परमाः=मेरे परायण श्रद्दधाना=श्रद्धायुक्त पुरुष इदं=यह धर्म्यामृतम्=धर्ममय अमृतकु यथोक्तं=कहे गये प्रकारसु पर्युपासते=निष्कामभावसु सेवन करे हैं ते=वे भक्ताः=भक्तजन मे=मोकु अतीव प्रियाः=अतिशय प्रिय लगे हैं.

।।इति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः।।

(भगवद्गीता उपनिषदन्को सार है)

गीताके अठारह अध्यायन्में एकह्मएक योगको वर्णन है, जैसे पहले अध्यायमें अर्जुनविषादयोग है. गीतामाहात्म्यमें कह्यो है **''सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः पार्थो वत्स सुधीः भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्''** उपनिषद् गायके जैसी है. प्रायः दस-ग्यारह प्रमुख उपनिषद् हैं. उन दस-ग्यारह उपनिषदन्में प्राणविद्यादि ऐसे सब मिलाके करीब ३२विद्यान्को उपदेश है, ऐसो सम्प्रदाय है. उन बत्तीसों विद्यान्को सार भगवान्ने गीतामें अर्जुनकु कह्यो है. **''सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः''** उपनिषद् गायके जैसी है, इनमें जो बत्तीस विद्यायें प्रतिपादित भई हैं वो विद्यायें जैसे गायके थनमें दूध रहे और ग्वाल जब वाकु दुहे है तब वो दूध बाहर आवे. ऐसे **''सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः''** या न्यायसु बत्तीस विद्यायें और उन बत्तीस विद्यान्में अमृतरूप दूधकुं प्रभुने दुह्यो है. **''पार्थो वत्स''** पार्थ अर्जुन बछड़ाकी तरह है, वाने वा रसकु सबसे पहले गीताके माध्यमसु पियो, दुग्धं गीतामृतं महत् या न्यायसु. जो अमृतविद्या **''अथ परा यया तद् अक्षरम् अधिगम्यते''** (मुण्ड.उप.१।१।५) ऐसे कहे हैं, वा न्यायसु पराविद्या, परमात्मविषयणी विद्या, उन सारी विद्यान्को सार प्रभुने गीताके माध्यमसु यहां कह दियो है. ये गीताको असाधारण माहात्म्य है.

उपनिषदन्में कई बातें जो बत्तीस विद्यान्के अन्तर्गत कही गयी हैं, उनकु भगवान् बिल्कुल वाके रूपमें कहीं प्रस्तुत करे हैं, कहीं उन बातन्कु साररूपेण प्रस्तुत करे हैं फिरभी गीतामें आके उन सारी विद्यान्को रहस्य प्रभुने खुलासासु कह दियो है. ये बात अपनेकु हृदयगत करनी चइये.

आजकलके कई विद्वान् चक्कर चलाते रहे हैं के उपनिषदन्में भक्ति नहीं हती. भक्ति तो पुराणन्ने चालू करी है. उपनिषदन्में तो ज्ञान ही ज्ञान हतो. दरअसल ऐसो होतो के उपनिषदन्में ज्ञान ही ज्ञान होतो, तो वो रहस्य जाको विवरण प्रभुने गीतामें कियो और यदि गीतामें भक्ति मिले है तो ये सोचनो के उपनिषदन्में भक्ति नहीं हती, तो ये भगवान्के उपनिषदन्के अर्थ करवेकी सामर्थ्यपे प्रश्नचिन्ह लगावे जैसो है भगवान् तो अर्थ कर रहे हैं के भक्ति है और ये उपनिषदन्के अर्थरूपसु कही गयी है.

क्योंके भगवान् यों कहे हैं **''इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहम् अव्ययम् विवस्वान् मनवे प्राह मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत्. एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः स कालेन इह महता योगो नष्टः परन्तप. स एव अयं मया ते अद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः. भक्तो असि मे सखा चेति रहस्यं हि एतद् उत्तमम्''** (गीता.४।१-३). यहां भगवान् भी ऐसो दावा नहीं कर रहे हैं के मैं कोई नई बात समझा रह्यो हूं. प्रभु भी यही कह रहे हैं के जो कछु पहले कह्यो गयो है वही तुमकु साररूपसु समझा रह्यो हूं. जो श्रोता सामने बैठ्यो भयो है वा श्रोताकु वामें सहभागी बनाने. अब प्रश्न ये है के वा बखतके उपनिषद्के जो श्रोता हैं उनकु उद्देश्य करके उपनिषदन्में जो विद्यायें वर्णित भई हैं वैसो रूप शायद यामें नहीं भी आवे, पर जा तरहसु भगवान् गीतामें उपदेश दे रहे हैं वो अर्जुनके प्रश्नन्के समाधानके रूपमें है. पर जो कह्यो जा रह्यो है वो नयो नहीं है. **''योगः प्रोक्तः पुरातनः''** बहोत पुरातन योग है. ये गीतासु भी बहोत पुरानो है. भगवान्ने कह्यो है. जैसे जा दिन, जा क्षण, अपन् दूध दुहें, वा क्षण दूध पैदा नहीं होवे है. वा क्षण दूध प्रकट होवे है गायके थनमेंसु, दूध तो पहले ही पैदा हो गयो, क्योंकी दूध पैदा नहीं होवे तो निकलेगो नहीं. जब दुह्यो तब प्रकट भयो. ऐसे भगवान्ने उपनिषदन् रूपी गायन्कुं अर्जुन रूपी बछड़ाके लिये जब दुह्यो, तब ये गीतामृत दुग्ध प्रकट भयो. पर हतो उपनिषदन्में ये पहलेसु ही. काफी विस्तृत रूपसु ये चर्चायें हती और जो सावधानीसु उपनिषदन्को अध्ययन करवेवाले हैं, उनकु तो पता चले ही है के उपनिषद्में ये शब्द होंय के न होंय पर अर्थ तो है ही. कहीं शब्द भी है कहीं शब्द नहीं भी है पर अर्थ तो है ही. ऐसे उपनिषदन्में भी भक्तिको निरूपण तो एक जगह नहीं अनेक स्थलन्पे भयो है और वा न्यायकु अनुसरते भये, अर्जुन जब एकह्एक प्रश्न करतो गयो तब भगवान् गीतामें उन् प्रश्नन्के जवाब देते गये. संदर्भ घटतो-बढ़तो चल्यो जाय, कर्मको, भक्तिको, ज्ञानको, शरणागतिको, सबको उपदेश प्रभुने दियो.

(गीताको सार)

इन सारे उपदेशन्को सार स्वयं प्रभुने गीतामें बतायो है सारी गीताको सार क्या है? दो श्लोकन्में. वो सार ध्यानमें रखोगे तो गीताको हर अर्थ आपकु हृदयमें स्फुरेगो. फिर कोई भी व्याख्या करे पर एक थर्मामीटर् आपके पास है के जा थर्मामीटर्सु आप माप सकोगे के गीताके सारके अनुरूप बोल रह्यो है के प्रतिकूल बोल रह्यो

है. वो सार प्रभुने गीतामें छट्ठे अध्यायमें जहां कर्मषटक् समाप्त भयो है वहां दो श्लोकन्में बतायो है.

तपस्विभ्यो अधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतो अधिकः।
कर्मिभ्यश्च अधिको योगी तस्माद् योगी भव अर्जुन।।
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।

(गीता.६।४६-४७).

इन् दो श्लोकन्में सारी गीताकी थीम् आ गई. जैसे अपन् एक थीसिस् करें तो अपन् पहले सिनोपसिस् बनावें के या सिनोपसिस्के आधारपे अपन् आखो ग्रन्थ लिखेंगे. जैसे अपन् ड्रॉइंग बनावे, रंगोली बनानो चाहें, मांडना मांडे, तो पहले रेखायें खेंचे और फिर रंग भरें. ऐसे गीताकी रेखा क्या है? **''तपस्विभ्यो अधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतो अधिकः. कर्मिभ्यश्च अधिको योगी तस्माद् योगी भव अर्जुन''** ये पहली रेखा है. और **''योगीनामपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः.''** यहां 'तम' प्रत्यय लगायो है. भगवान् कह रहे हैं के तप जो तपस्वी कर रह्यो है, वा तपमें तपवेवालेके बजाय तपोयोगी मोकु अच्छो लगे है. **''तपस्विभ्यो अधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतो अधिकः''** केवल ज्ञानीके बजाय ज्ञानयोगी अच्छो लगे है. **''कर्मिभ्यश्च अधिको योगी''** जो केवल कर्म कर रह्यो है, ठीक है कर्म करनो कोई बुरी बात नहीं है, पर कर्म करवेके बजाय कर्मयोगी मोकु अधिक अच्छो लगे है. ''कर्मिभ्यश्च अधिको योगी तस्माद् योगी भव अर्जुन'' याके लिये अर्जुन तू योगी बन. कौंनसो योगी? ये तू निश्चय कर. यदि तोकु तपोयोगी बननो है तो तपोयोगी बन. यदि ज्ञानयोगी बननो है तो ज्ञानयोगी बन. कर्मयोगी बननो है तो कर्मयोगी बन. केवल कर्मी मत बन. केवल ज्ञानी मत बन. केवल तपस्वी बनवेको मोह मत रख. योगी बन. **''तस्माद् योगी भव अर्जुन''** और फिर कह रहे हैं **''योगिनामपि सर्वेषां'' 'सर्वेषां'** मने कर्मयोगी ज्ञानयोगी तपोयोगी ये जितने योगी हैं इन सब योगीन्में यदि तू मोकु पूछे तो **''योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना. श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः''** ये जितने योगी हैं इन योगीन्के बीचमें, जो **''श्रद्धावान् मद्गतेन**

अन्तरात्मना'' जाको अन्तरात्मा मेरेमें स्थित है. जाने अपनी अन्तरात्मा मेरेसु जोड़ ली है. ऐसे मेरेसु अन्तरात्मा जोड़वेवालो कोई श्रद्धावान् व्यक्ति मेरो भजन करे तो वो मोकु युक्ततम लगे है. योगी तो सब योगी हैं पर जो श्रद्धापूर्वक मेरो भजन करे है वो योगी मोकु युक्ततम लगे है. ये बात बताई तो अपनेकु आखी गीताकी रूपरेखा पता चल जाये के भगवान् यहां क्या कहनो चाह रहे हैं. हर बातको खुलासा कर दियो. क्योंके भगवान्ने गीताके अठारह अध्यायन्में पहले छह अध्यायन्में कर्मयोगको प्रतिपादन कियो है. दूसरे छह अध्यायन्में भक्तियोगको प्रतिपादन कियो है. तीसरे छह अध्यायन्में ज्ञानयोगको प्रतिपादन कियो है. या तरहसु कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग को प्रतिपादन करवेके बाद अन्तमें उपसंहारमें भगवान्ने ये बात कही **''तेरेकु कुछ जाननो है तो जानवे लायक बातें तो ये हैं. नहीं जाननो होय तो मेरेपे छोड़ देनो है तो चिन्ता मत कर जानवेकी''** क्यों? जैसे अपनेकु कोई रोग होय तो डॉक्टर्के यहां दवाखानामें अपन् जावें पर डॉक्टर्के हाथमें नाड़ी नहीं दे. डॉक्टरसु अपनो निदान नहीं करावें और डॉक्टर्के दवाखानामें जितनी दवाईयां पड़ी भई है, उनकी इन्क्वायरी करते रहें के ये कायकी दवा है, ये कायकी दवा है? अब डॉक्टर् भी मस्तराम है. वो भी आपकु बतातो जा रह्यो है के ये टी.बी की दवा है, ये केन्सर्की दवा है, ये बुखारकी दवा है. अब आप तो खुलासा करो नहीं के आपकु क्या रोग है? आपकु पेट दुख रह्यो है? सिर दुख रह्यो है? कान दुख रह्यो है? आप दवाई पूछते जा रहे हो और वो दवाई बतातो जा रह्यो है. ले तू दवाईकी जानकारी. जितनी दवाईकी जानकारी तू जाननो चाह रह्यो है उतनी दवाईकी जानकारी मिलती रहेगी. प्रत्येक दवाईकी जानकारी मिले के नहीं मिले पर डॉक्टर्के हाथमें नब्ज रख दो, डॉक्टर्कु निदान करवे दो, जो दवाई होयगी वाकी जानकारी आपकु होय के नहीं होय, वो दवाई यदि खा लोगे तो रोग मिट जायगो. रोग दवा खावेसु मिटे. दवाईकी जानकारीसु रोग नहीं मिटे. या तरहसु भगवान्के वा दवाखानामें जितनी भी दवाई हैं कर्मयोगकी, भक्तियोगकी, ज्ञानयोगकी वो बता रहे हैं. अर्जुन पूछतो गयो और भगवान् बताते चले जा रहे हैं. अब दवाईके बारेमें समझनो के कौंनसी दवाई लेनी? सब दवाई बता दी मैंने. कोई दवाई सस्ती नहीं है और कोई भी दवाई अनुपयोगी, निकम्मी नहीं है. सब दवाई कारगर हैं. सब दवाई कीमती हैं. सब पूछ रहे हैं ये क्या दवाई है? ये क्या दवाई है?

देखो बात सच्ची है. एक दवाईकी दुकान होवे दूसरो डॉक्टर्को दवाखाना होवे. थोड़ो विवेक होनो चइये के दवाईकी दुकानमें जाके आप सब दवाईकी अच्छाईको वर्णन पूछो, दवाई खरीदवेके लिये तो सच्ची बात है. दवाईकी दुकानमें आप सब दवाईको वर्णन पूछो तो ठीक बात है के ये क्या रोगकी दवाई है? ये कौंनसे रोगकी दवाई है? क्योंके जो दवा बेचवेवालो है, वाको डॉक्टर् होनो जरूरी नहीं है. वाने तो सिर्फ दुकान लगाई है. दवाकी दुकान लगावेवालो और दवाखाना चलावेवालो डॉक्टर् दोनोंमें अन्तर है. जो दवाई बेचतो होय वाके आगे तो आप दवाईको विवरण पूछो और फिर आप नक्की करो के ये दवाई खानी या नहीं खानी प्रिस्क्रिप्शन् होय या नहीं होय अपने पास, पर माथा दुखवेकी दवाई है और माथा दूखे तो वो दवाई खाओ, वो एक दूसरी बात है. पर जब आप डॉक्टर्के पास जा रहे हो तो आपकु पता चलेगो के आपकु रोग क्या है? जो निदान करवेमें समर्थ है वाके सामने दवाईको विवरण पूछवेको नहीं होवे है. वाके सामने तो सिर्फ नब्ज दिखावेकी होवे है. कहां दुख रह्यो है ये बतावेको होवे है. दवाई तो वो खुदही देगो. वासु दवाईकी जानकारी हासिल करनो बहोत जरूरी नहीं है.

(गीतोपदेष्टाको निर्णय)

वा न्यायसु भगवान्ने अठारह अध्यायके अन्तमें छेल्ली ये बात कही **''सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः''** (गीता.१८।६६). अरे भाई चिन्ता क्यों करे. जितनी दवाईको वर्णन चाहे उतनी दवाईको वर्णन बतायो जा सके है. यों सब बत्तीस विद्यान्को सार उनने बता दियो. अब बता दियो तो बता दियो. अब कहवेवालेकी भी मस्ती है और सुनवेवालेकी भी मस्ती है. पर असल बात ये है ''तेरी व्यक्तिगत चिन्ता होय तो मेरे पे छोड़ दे. और तोकु तेरी चिन्ता नहीं होय पर दवाईकी चिन्ता होय तो सुनतो रहे'' बहोतसी दवाईयां है दुनियामें. कर्म, ज्ञान, भक्ति, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, तपोयोग, वैराग्ययोग, संन्यासयोग, अठारह अध्यायमें अठारह योग बताये गये हैं. ऐसे अनेक रोगन्की अनेक दवाईयां और अनेक दवाईयन्में भी अनेक बारीकियें हैं. उनके अनुपानके नियम अलगह्अलग हैं, उनके पथ्यके, सुपथ्यके, कुपथ्यके अलगह्अलग नियम हैं. सबकु जानते रहो, जानते रहो, मजा आयेगी, दवाईकी जानकारी हासिल होती रहेगी.

याके लिये भगवान्ने आज्ञा करी **''तपस्विभ्यो अधिको योगी ज्ञानिभ्यो अपि मतो अधिकः कर्मिभ्यश्च अधिको योगी तस्माद् योगी भव अर्जुन. योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः''** (गीता.६।४६-४७). ये सारो वर्णन गीतामें दवाईको के अच्छीमें अच्छी दवा कौंनसी है? बेशकीमती दवा कौंनसी है? ये सब दवाईन्को वर्णन है और डॉक्टर्को निर्णय ये है **''सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः''** (गीता.१८।६६)

(दो स्तरपे गीताको उपदेश)

ऐसे पूरी गीता आप विचार करोगे तो गीता दो तरहसु चले है. एक तो गीता या तरहसु चले है के जामें मार्गन्को निरूपण है. मने अपन् यदि भगवान्के समीप जानो चाहे है तो मार्गको निरूपण है. यदि अपनेकु भगवान्पे छोड़ देनो है के तोकु जहां ले जानो है वहां ले जा. वहां मार्गको निरूपण नहीं करके प्रभुने शरणागतिको निरूपण कियो है. विश्वास कर मेरेपे के जहां ले जा रह्यो हूं वहां ठीक है. चलो जहां चलनो है वहां चलो.

ऐसे दो स्तरपे प्रभुने गीताको उपदेश दियो है. पहलो स्तर ये के जामें मार्गको निरूपण है. जामें साधक अपनी साधनासु भगवान्कु मापनो चाहे. तो कई तरहके मापदण्ड बताये हैं. या तरहके माप, कर्म ज्ञान भक्ति साधनान्के मानदण्ड बताये. जहां तोकु मापवेकी इच्छा नहीं है, वहां भगवान्ने खुद अपनेह्नआप मापके दे देवें. जैसे अपन् कपड़ा खरीदें अपने शरीरके मापके हिसाबसु और वो कपड़ा दरजीकु दें और बनवा लें. एक वो प्रकार है और दूसरो प्रकार क्या है? नम्बर् बने भये होवें कपड़ाके, बत्तीस नम्बर्की गंजी, बत्तीस नम्बर्की बनियान...रेडीमेड् कपड़ा हैं. तुम अपनो नम्बर् बोले नहीं के वो माप हाजिर है. या तरहसु भगवान् कह रहे हैं **''सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज''**. ये जितने धर्म बताये कर्म ज्ञान भक्ति के यदि तेरी मापवेकी इच्छा नहीं है, तो तेरो माप मोकु पता है के कितनो है. यदि तेरेकु कपड़ा माप मापके लेनो है, तो चल मापके ले. वा तरहसु माप बताते जायेंगे. खोलह्नखोल के थान देखते जाओ के कछु पसन्द आवे के नहीं पसन्द आवे. ये तो फिर ग्राहकपे बात आ गई ना ऐसे दो तरहसु भगवान्ने गीतामें उपदेश दियो है. या उपदेशके रूपमें पहले छह अध्याय भगवान्ने कर्म और कर्मयोग के वर्णनके

रूपमें कहे हैं. दूसरे छह अध्याय भक्ति और भक्तियोगके वर्णनके रूपमें कहे हैं. तीसरे छह अध्याय ज्ञान और ज्ञानयोगके वर्णनके रूपमें किये है. अन्तमें शरणागतिको उपदेश दियो है. ये एक गीताकी सामान्य थीम् है, गीताकी रूपरेखा है. ये समझनो जरूरी है. जाके अन्तर्गत अपन् ये समझें के भक्ति द्वादशाध्यायको विषय है और वाकु प्रभुने भक्तियोगके रूपमें कह्यो है.

(भक्तियोगको फलित स्वरूप द्वादशाध्याय)

ये भक्तियोग क्या है? ये समझवेके पहले अपनेकु ये समझनो चइये के कोईकु घरमें अपन् मिलवे जावें, तो मकानके पहले अपनेकु गली जाननी जरूरी है. गलीके पहले मोहल्ला जाननो जरूरी है. मोहल्लाके पहले शहर या गांव जाननो जरूरी है.

एसे ही सातवें अध्यायसु लेकर बारहवें अध्याय तक भगवान्ने निरन्तर भक्तियोगके अलगह्नअलग पहलुन्कु समझायो है. याके लिये बारहवें अध्यायकु 'भक्तियोग' कह्यो पर भक्तियोगको वर्णन शुरु हो गयो है सातवें अध्यायसु, मतलब कर्म भक्ति और ज्ञान, या न्यायसु पहले कर्म कह्यो, वाके बाद भक्ति कही और फिर ज्ञान कह्यो तेरहवें अध्यायमें.

यासु सबसु पहले कर्म करनो चइये, फिर भक्ति करनी चइये. भक्ति करेंगे तो फिर भगवान्को ज्ञान मिलेगो. जब ज्ञान मिलेगो तो अन्तमें फिर मुक्ति मिलेगी. ये पद्धति पर यहां गीताके उपदेशमें दिखलाई नहीं दे है. जैसे एकके बाद दूसरी, दूसरीके बाद तीसरी सीढ़ी चढ़े, ऐसो क्रम यहां दिखलाई नहीं देवे है.

क्यों दिखलाई नहीं दे है? क्योंके भगवान्ने खुद भक्तियोगके पहले छट्ठे अध्यायके अन्तिमश्लोकन्में या बातको खुलासा कर दियो के-

''तपस्विभ्यो अधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतो अधिकः कर्मिभ्यश्च अधिको योगी तस्माद् योगी भव अर्जुन. योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः''

(गीता.६।४६-४७).

यहां निर्णय दे दियो. तो उत्तरोत्तर चढ़वेकी बात यहां नहीं है. क्योंके ज्ञानीके बजाय ज्ञानयोगी अधिक है और ज्ञानयोगीके बजाय भी श्रद्धापूर्वक भगवद्भजन करवेवालो भगवान्कु ज्यादा युक्ततम लगे है. या बातको खुलासा भगवान्ने भक्तियोगके प्रारम्भ करवेसु पहले ही कर्मयोगकी समाप्तिपे दे दियो. अपनेकु समझमें आवे के ये व्याख्याक्रम उत्तरोत्तर एकके बाद एक अधिक ऊपर चढ़ते जावेके सोपान हैं, सीढ़ी है, ऐसो क्रम भगवान्कु अभिप्रेत नहीं है. क्योंके खुलासा या बातको प्रभुने पहले ही कर दियो.

(गीताके उपदेशको क्रम)

अब ये बात अपनेकु समझमें आवे के गीताके उपदेशको क्रम क्या है? अक्सर आप अखबारमें पढ़ते होगे कोई भी वस्तुके भावके उतार-चढ़ावको एक ग्राफ् बनानो चावें. लाईन् ऊपर चढ़े सबसु ज्यादा ऊपर लाईन् जहां आवे वाके बाद फिर नीचे जावे. ऐसे उपदेशक्रम भगवान्को कैसो है के कर्मको उपदेश ऊपर चढ़नो शुरु भयो, कर्मसु चढ़ते चढ़ते वो भक्तिके शिखरपे आयो है. भक्तियोगके पाछे फिर वो नीचे उतर रह्यो है. जैसे पहाड़ पर अपन् यों चढ़े और यों उतरें. तो दो लाईन् बनी ना एक ऊपर जावेकी और एक नीचे आवेकी. ऐसे कर्म भक्ति और ज्ञान और इन तीनोंन्को निवारण करके भगवान् कहें ''छोड़ न चिन्ता कर्म भक्ति ज्ञान के पहाड़की. शरणागतिकी बात कर यदि तोकु अपनी चिन्ता होय तो'' या तरहसु दो तरहके उपदेश है. यामें भक्तिको उपदेश प्रभुने शिखरपे दियो है. ये बात अपन्कु **''श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः''** या श्लोकसु खबर पड़े और या भक्तियोगको अन्तिम अध्याय बारहवों अध्याय है. याके बाद तेरहवें अध्यायसु ज्ञानयोग शुरु हो जाये है. ये आखी गीताकी एक विवेचन प्रणाली है जो ध्यानमें रखनी चइये नहीं तो क्या होवे के अपनेकु घरको नाम तो पता है पर गली पता नहीं होवे, मोहल्ला पता नहीं होवे, तो अपन् खोजवेमें तकलीफ पायेंगे, या लिये समझनो जरूरी है.

(कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग के बीज)

जब अपन्ने ये बात समझी के कर्म ज्ञान भक्ति के उपदेशके तहत सबसु पहले कर्म, वाके बाद भक्ति, वाके बाद ज्ञान बतायो. अब एक बात ये भी समझनी जरूरी हो जाये के इन् मार्गन्के बीज कहां रहे भये हैं? क्योंके अपनो जितनो व्यवहार

है वो तीन प्रकारसु चले है. संस्कृतमें वाकु ऐसे कह्यो जाय **ज्ञान, इच्छा** और **प्रयत्न**. जैसे कोई चीज अपन्कु चइये है तो सबसु पहली आवश्यकता क्या है? वा वस्तुको अपन्कु ज्ञान होनो चइये. अपन्कु ज्ञान है के या दुकानमें अनाज मिल रह्यो है. पर भूख ही नहीं है. सब दुकानन्में सेंकड़ो चीजे मिल रही हैं करके अपन् खरीदवे नहीं जायेंगे, कहां क्या चीज मिल रही है पर इच्छा भी होनी चइये के वो चीज चहिये, यह दूसरी शर्त है. इच्छा करके घरमें बैठे रहो शेखचल्लीकी तरह. वो शेखचल्ली इच्छा करे आटा बेचेंगे, बकरी बेचेंगे, बकरी बेचके घोड़ा लेंगे, घोड़ा बेचके हाथी लेंगे, हाथी बेचके महल बनायेंगे, इच्छा सब करे पर प्रयत्न कुछ करे नहीं. तो वा कथामें कह्यो जावे है के शेखचल्ली, जो घड़ा लेके आयो थो वो भी टूट गयो. ऐसे इच्छा करतो रहे और प्रयत्न नहीं करे तो भी बात कहीं नहीं पहुचेंगी. वाके लिये अन्तिम कड़ी है वाकी **प्रयत्न**. पहले जाननो, फिर इच्छा करनी और फिर जब इच्छाके अनुरूप आप प्रयास करो तब आपके व्यवहारकी तीनों कड़ी बराबर जुड़ गई. अपने कर्म ज्ञान भक्ति के बीज, कर्म ज्ञान भक्ति के उद्गम, इनमें रहे भये हैं. प्रयास कर्ममार्ग है, इच्छा भक्तिमार्ग है, जानाति ज्ञानमार्ग है. मने भगवान्को अपन्कु ज्ञान है, अपन् कुछ भी कर रहे हैं पर भगवदिच्छा नहीं है, भगवान्की इच्छा नहीं है तो अपन्कु भक्ति प्रकट नहीं होयगी. आदमी कर्म तो कई तरहके करे पर कर्म करवेके बावजूद भगवत्प्राप्तिकी इच्छा नहीं है तो भक्त नहीं कह्यो जा सके. ये पहली शर्त है. भगवत्प्राप्तिकी इच्छा भक्तिकी पहली शर्त है. जान्यो जाय है के नहीं? कई लोग कहें भगवान्सु प्रार्थना करें ''हे भगवान् दर्शन दो, भगवान् दर्शन दो.'' और अभी वैकुण्ठमेंसु विमान उतर आवे, कैलाशसु विमान उतर आवे, कोई जानो चाहेगो? यों कहनो पड़ेगो ''भगवान् आप जरा जल्दी उतर आये, कल पधारियो आप. कल भेजियो विमान. आजके आज जावेकी तैयारी नहीं है अपनी.'' अपन् मांगे हैं ''भई भगवान् दर्शन दो, दर्शन दो.'' पर आज विमान आ जाये तो बड़ी पंचायत हो जायेगी. सब लोग कहेंगे के कल तक मुल्तवी रहे तो अच्छो. ये काम बाकी रह गयो, वो काम बाकी रह गयो. पचासन् काम बाकी हैं. उनमेंसु कल काम जीरो हो जायेगो, ऐसो भी मत समझियो. कल भी पचासके पचास काम बाकी रहेंगे. कोई काम कभी पूरो होवे नहीं. न ज्ञानीको काम पूरो होय, न कर्मीको काम पूरो होय और न भक्तको काम पूरो होवे. काम सबके बाकी हैं. रोजके रोज पचासन् काम बाकी हैं. कोई काम कोई दिन पूरो होयगो नहीं. क्योंके अपने अन्दर इच्छा नहीं है. इच्छा होय तो अभीके अभी सब काम पूरे हो जायें.

इच्छा नहीं है करके अपने सब काम बाकी रहे हैं. याके लिये कर्म ज्ञान और भक्ति कु पहचाननो सबसु पहली शर्त है.

हम अभी अहमदाबादमें भक्तिके ऊपर प्रवचन कर रहे थे. वहां एक आदमीने प्रश्न पूछ्यो ''महाराज धंधा छूटे नहीं, घरबार छूटे नहीं, कुछ सेवा-वेवा हो सके नहीं परन्तु भगवान्के दर्शनको कोई उपाय है के नहीं? बताओ'' हमने कही ''कुछ करनो है नहीं, भूख लगी है नहीं, मुंह हिलानो है नहीं, ग्रास हाथमें रखके मुंहमें डालनो है नहीं, पेट भरेगो के नहीं भरेगो? बताओ'' अब कैसे बतायें. बता ही नहीं सके कोई. आदमी ऐसीह्नऐसी बात करे. क्यों? इच्छा है नहीं. भगवान्के दर्शनकी बात चल रही है तो भगवान्के दर्शनपे प्रश्न कर दियो. पर वो प्रश्न अपन् करें आपसु के या तरहकी इच्छा है के नहीं? जा बखत विमान उतर आवे और कहे ''चल बेटा'' तब पता चले. अभी तो बहोत कर्म कर रहे हैं भगवान्के. यदि तुरतको नगद सौदा होवे तब लेवेके देवे पड़ जायें. स्थिति अपनी ऐसी है. या लिये भक्तिकी पहली पहचान है भगवदिच्छा. तेरेकु भगवान् प्राप्त करवेकी इच्छा है सचमुचमें तो तेरेकु भक्ति है. यदि भगवत्प्राप्तिकी इच्छा नहीं है, यदि बात पोस्टपोन्ड् करनी है तो फिर वो भक्ति सच्ची नहीं है. भक्तिके नामके कर्मकाण्डन्में रुचि है, भक्तिके नामके सेन्टिमेन्टस्, भावनामें रुचि है, पर सचमुचमें भक्ति नहीं है. ये बात एक समझवेकी है.

ऐसे ही ज्ञान, ऐसे ही कर्म. यदि सचमुचमें प्रयास कर रहे हो, तो कर्ममें रुचि है. कुछ लोग प्रयास करें नहीं पर कर्मकी बातें करते रहें. कर्मकी बातें करवेसु कर्ममार्ग नहीं हो जायगो. कर्म करवेसु कर्ममार्ग होयगो. कुछ लोग यों समझें के कर्मकी बातें करते रहो, सुबहसु शाम तक, यहांसु वहां तक, सब समय कर्मकी बातें करें. कर्म करें कुछ भी नहीं, कर्मकी बातें सबकु समझाते रहें. भई सबकु कर्मकी बातें समझा दी, सबने कर्मकी बातें समझ ली, पर करवेके नाम कुछ कर्म हैं के नहीं? सो तो नहीं ही है पर बातें अभी चल रही हैं.

महाप्रभुजी आज्ञा करे हैं **''निष्ठा च साधनैरेव न मनोरथवार्तया''** (त.दी.नि.१।१८). बातें करवेसु कर्म नहीं होयगो. इच्छा होय हृदयमें तो स्नेह होयगो. बातें करवेसु ज्ञान सिद्ध नहीं होयगो. ज्ञान प्राप्त करवेके लिये चित्तमें विमलता होयगी तो ज्ञान होयगो. ये पहली शर्त है **''निष्ठा च साधनैरेव न मनोरथवार्तया.''**

मनोरथ करें बस या वार्तायें करें दिन भर ज्ञानकी, कर्मकी, भक्तिकी, वासु कछु फर्क पड़वेवालो है नहीं. पहली शर्त ये है.

कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग इनके स्रोत अपने प्रयत्न ज्ञान और इच्छा में रहे भये हैं. अपने इन ज्ञान इच्छा प्रयत्न में जरूरी नहीं है के अपनो ज्ञान खाली भगवान्को ज्ञान होय. जैसे एक इंजीनियर् मशीन्के बारेमें जाननो चाहे है. एक वकील कानूनके बारेमें जाननो चाहे है. पंडित शास्त्रके बारेमें जाननो चाहे है. सबके जानवेके विषय अलग अलग हैं. जरूरी नहीं है के जानवेको विषय परमात्मा ही होय. सब अपन्ने जान लियो, तो ज्ञानी अपन् होंयगे पर ज्ञानयोगी नहीं होंयगे. ज्ञानयोगीको मतलब जो परमात्माकु जानवेको प्रयास करे वो ज्ञानयोगी. गांवभरको ज्ञान प्राप्त कियो पर परमात्माको ज्ञान प्राप्त नहीं कियो, वो ज्ञानी कहला सके पर ज्ञानयोगी नहीं कहला सके. ज्ञानयोगी और ज्ञानीमें इतनो अंतर है.

ऐसे ही कर्मी अपनो काम करे. दुकान चलावेवालो दुकान चलावे. मकान बनावेवालो मकानको काम चलावे. सर्विस् करवेवालो सर्विस् करे. स्कूलमें पढ़ावेवालो स्कूलमें पढ़ावे. कर्म तो सब हैं. अकर्म तो कुछ भी नहीं है. पर जा बखत परमात्मा सम्बन्धि कुछ कर्म जाने किये तब वह कर्मयोगी कहलायेगो. नहीं तो कर्मी कहलायेगो, कर्मयोगी नहीं.

(भक्त और भक्तियोगी)

ऐसे ही भक्तिको भी ये ही स्वरूप है. हर आदमी कोई न कोईकु तो चाहे ही है. हर आदमी कोई न कोईकी भक्ति कर ही रह्यो है. पर जब अपन् परमात्माकी भक्ति करें, तब भक्तियोगी कहलायेंगे. नहीं तो भक्त दुनियामें सब हैं. पेटके लिये कोई भक्ति करतो होय. कोई देशके लिये भक्ति करतो होय. अलग अलग हेतुन्सु सब जनें भक्ति करे हैं. भक्ति कर रह्यो है, भक्त है, वासु ये मत समझियो के भक्तियोगी है. भक्त और भक्तियोगीमें थोड़ोसो अन्तर है. भक्तियोगी परमात्माके हेतुसु परमात्मासु स्नेह करे है, अन्य कोई हेतुसु परमात्मासु स्नेह नहीं करे है.

(ज्ञानी और ज्ञानयोगी)

ऐसे ही ज्ञानी परमात्माको ज्ञान लेनो चाहे. आजकल कई लोग उलटो समझावें के ज्ञानी मने जो बुद्धिमान् होय, मूर्ख है सो भक्त बने. ऐसो नहीं है ज्ञान, बुद्धिमत्ता और मूर्खता अलग-अलग बातें हैं. कई पंडित शास्त्र पढ़े महान् ज्ञानी होवें, याको मतलब ये नहीं के वो ज्ञानयोगी हैं. मैं साफ समझुं हुं के अज्ञानी व्यक्ति भी ज्ञानयोगी हो सके है. क्योंके वो सारे विषयनुकु नहीं जानतो होय, पर परमात्माकु यदि जानतो होय तो वो ज्ञानयोगी हो सके है. शास्त्र वाकु कहे है एक चीज ऐसी जानो, जा चीजके जानवेसु दूसरी वस्तुकु जानवेकी गरज नहीं रह जाये. जरूरी नहीं है के वो हर बातकु जाने. कल आप ब्रह्मज्ञानीकु बुलाके पुछो ''क्यों भई तुमकु रोड़ साफ करनी आवे क्या?'' तो जरूरी नहीं है के ब्रह्मज्ञानीकु रोड़ साफ करनी आवे. टेपरेकॉर्डर् बिगड़ जाये और आप ब्रह्मज्ञानीकु कहो ''टेपरेकॉर्डर् ठीक करो'' तो जरूरी नहीं है के ब्रह्मज्ञानी बनवेके अपराधको ऐसो दण्ड दे के टेपरेकॉर्डर् ठीक करो. नहीं ठीक करे तो ''जा तु ब्रह्मज्ञानी नहीं है.'' ब्रह्मज्ञानीको मतलब ऐसो नहीं के वो सब कछु जाने है. ब्रह्मज्ञानीको मतलब जाने ब्रह्मकु जान्यो. ब्रह्मकु जान्योतोब्रह्मज्ञानी. **''एकविज्ञानेनसर्वम्इदंविज्ञातंभवति''** (छान्दो.उप.६।१।२) कह्यो है. एक ऐसे तत्वकु जानो के जा तत्वकु जानवेसु सब कछुको ज्ञान तुमकु हासिल हो जाये. वो ज्ञान कैसो ज्ञान? वो ज्ञान ऐसो ज्ञान नहीं के टेपरेकॉर्डर् बनानो आ जायेगो ब्रह्मज्ञानीकु या के कौंनसी होमियोपेथी गोली मरीज़कु देनी वो ब्रह्मज्ञानसु ज्ञान प्राप्त हो जायेगो? ब्रह्मज्ञानको मतलब ये नहीं है. ब्रह्मज्ञानको मतलब है के जितने भी कार्यरूप तत्त्व हैं उनको ब्रह्मतया ज्ञान. **''यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य ब्रह्म इति एकता''** (बृह.उप.१।५।१७) ऐसे उपनिषद् कहे हैं. यहां ''जो कुछ कह्यो'' पर 'सब' नहीं कह्यो. अब 'सब'को मतलब क्या? 'सब'को मतलब समझमें नहीं आवे. जाकु जितनो समझमें आवे उतनो ही समझमें आवे पर सब तो समझमें नहीं आवे. तो कहे हैं **''यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य ब्रह्म इति एकता.''** ब्रह्म कहवेसु वो सब चीज एक हो जाये.

जैसे अपने किशनगढ़में दो चार दस मोहल्ला हैं. अब मोकु पता नहीं कितने मोहल्ला हैं. पर होयगे पांच दस मोहल्ला, वार्ड होंयगे म्युनिसिपालिटीके, तो वो सबके सब एक अलग वार्ड हैं. पर 'किशनगढ़' कह दियो तो सारेके सारे वार्ड आ गये. कोई वार्ड बच नहीं जायेगो. कोई मकान बच नहीं जायेगो. अब ये जरूरी नहीं है के 'किशनगढ़' केहवेसु किशनगढ़ जाने जान लियो वाकु हर वार्ड की जानकारी

होय. या किशनगढ़ जाने जान लियो वाकु घरह्नघरकी जानकारी होय. पर किशनगढ़के रूपमें वो हर चीजकु जान गयो. एक हर चीजको विशेषज्ञान और दूसरो हर चीजको कारण तरीके सामान्य ज्ञान. जैसे उपनिषद्में उदाहरणके रूपमें ये बतायो ''जाने सोनाको जान लियो वो सोनाके बने भये सारे गहनानुकु जान जायेगो के ये सोना है'' ये जरूरी नहीं है वाकु ये पता पड़े ही के ये हाथमें पहनवेकी बींटी है या कानमें पहनवेकी ईयररिंग् है या पैरमें पहनवेकी बिछिया है ये प्रभेद वाको समझ पड़े के नहीं पड़े. कोई जरूरी नहीं है के वो ये प्रभेद समझे.

रामायणमें आपने सुन्यो होयगो, जब दशरथ यज्ञ करायवेके लिये श्रृंगीऋषिकु लेवेके लिये गये, तो उन ऋषिने स्त्रियें कभी देखी नहीं हती. बड़े ज्ञानी हते. स्त्रियें देखी नहीं हती, तो उनकुं स्त्रियनुकु देखके बड़ो आश्चर्य भयो ''अरे हमारी जटाजूट ऐसी और तुम्हारे बाल ऐसे कैसे?'' स्त्रियें देखी ही नहीं हती कभी. महान् आश्चर्य हो गयो उनकु. अब वो क्या अज्ञानी हते? उन्होंने देखी ही नहीं हती स्त्री वनमें के कैसी होवें स्त्रियें महान् आश्चर्य हो गयो. वो कोई आकर्षित होके स्त्रीके सामने नहीं गये. या आश्चर्यसु गये के ये कैसे तरहके तपस्वी यहां आ गये हैं के जिनके ऐसे ऐसे लम्बे बाल हैं. ऐसे ऐसे कपड़ा पहर रखे हैं. उन्होंने कही ''हमारे कपड़ा तो ऐसे हैं और तुम्हारे कपड़ा भी कुछ अलग ढ़ंगके हैं.'' ये नवीनताके कारण उनकु आकर्षण भयो, कोई स्त्रीके कारण आकर्षण नहीं भयो. तो अपन् क्या उनकु अज्ञानी कहेंगे? अज्ञानी नहीं हते पर उनकु या पहलुको ज्ञान नहीं हतो. भले ही बहोत सारी बातें जानते थे. ऐसे ही ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मके रूपमें तो हर चीज़कु पहचान सकेगो पर जो ब्रह्मके रूपमें नहीं पहचाने जा सकें, ऐसे पहलुन्की वाकु कोई गरज नहीं हैं जांचवेकी, न वाकु याकी पंचायत है. वा पंचायत नहीं होवेके कारण वाकु अज्ञानी तो नहीं कहेंगे. अपन् वाकु ज्ञानी ही कहेंगे. क्योंके वाने तत्त्वकु तो पहचान लियो है अच्छी तरहसु. जो भी कुछ नाम हैं, रूप हैं, वो तो वा तत्त्वके ही नाम रूप हैं. **यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य ब्रह्म इति एकता.''** ऐसे उपनिषद् कहे हैं के 'जो कुछ'. 'अनुक्तम्' नहीं कह्यो, जैसे तुमकु एक सोनाकी इअरिंग् दिखाके बतायें 'देखो ये जासु बन्यो है वाकु सोना कहे हैं.' अब आपकु बींटी नहीं बताई तो कोई बात नहीं. वो बींटी भी सोनाकी है. पहचान जाओगे शायद यह सम्भव है के ये समझमें नहीं आवे के पहरी कहां जाये बींटी? हाथमें पहरी जाये के पैरमें पहरी जाये. शायद ये समझमें नहीं आयेगी पर सोना एक बखत पहचान

लियो तो आपकु फिर कुछ भी अलंकार पहचानवेमें तकलीफ नहीं होयगी. **''यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य ब्रह्म इति एकता''** आप ये पहचानो के बींटी है पर ये तो पहचान हो ही जायेगी के ये सोना है.

ऐसे ज्ञानी शायद आपको नाम जाने के नहीं जाने पर वाकु ये तो पहचान हो जायेगी के आपमें भी ब्रह्म है. आप खाली नहीं दीखोगे पर आपमें ब्रह्म दीखेगो. गधामें वाकु ब्रह्म दीखेगो. घोड़ामें वाकु ब्रह्म दीखेगो. पर वो ब्रह्मको रूप कैसे हो सके है? गधा तो एक मरणशील प्राणी है. वो ब्रह्मको रूप कैसे हो सके है? पर जाकु ब्रह्मज्ञान है वाकु घोड़ामें भी ब्रह्म दीखेगो. गधामें भी ब्रह्म दीखेगो. **''समो नागेन समो मशकेन''** (बृह.उप.१।३।२२), **''शुनिचैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः''** (गीता.५।१८) वो समदर्शी हो जायेगो. समदर्शीको मतलब क्या? वाकु घोड़ा गधा दीखेगो नहीं ऐसी बात नहीं है. घोड़ा गधा दीखेंगे पर उन घोड़ा-गधान्में ब्रह्मपनो, जो सामान्य धर्म है वो वाकु दीखेगो. वो स्पष्टतया वाकु पहचान सकेगो. ये भी ब्रह्मके रूप हैं. जैसे जाने सोना पहचान लियो अच्छी तरहसु, तो वाके सामने चाहे बींटी रखो, चाहे इअरिंग रखो, चाहे बिछिया रखो, वो सबमें सोनाकु अच्छी तरहसु पहचान लेगो. घरमें जैसे कोई छोरी या बहू जिद करे के वाकु बींटी चहिती होय और वाके सामने चूड़ी रखो तो वो मानेगी नहीं. अपन् कहेंगे के यामें ज्यादा सोना वापर्‌यो है. ज्यादा सोना वापर्‌यो है तो वापर्‌यो है, वाको मतलब? हमारे तो बींटी चइये. वो झगड़ा करेगी पर सोनाको चोर झगड़ा नही करेगो. वो ये नहीं कहेगो के मोकु बींटी चइये, चूड़ी नही लऊंगो. वो तो यों कहेगो के मोकु तो सोना चइये. सोनाको चोर है वो या लिये नहीं छोड़ेगो के ये बींटी है या लिये नहीं लेनो. वो तो सोनाको कुछ भी ले लेगो. ऐसे यदि ब्रह्मज्ञानी है तो वो ब्रह्मको चोर है. वो हर रूपमें ब्रह्मकु पहचानके वाकु चोर सके है. दुनियां नहीं पहचान सके जा बखत के ये ब्रह्म है पर ब्रह्मज्ञानीकु दिखलाई दे जायगो ''ये ब्रह्म है'' **''सर्वं खलु इदं ब्रह्म''** (छान्दो.उप.३।१४।१) सब कुछ ब्रह्म है. ज्ञानी हर रूपमें हर नाममें ब्रह्मकु पहचान सके है. पर जो ज्ञानी नहीं है वो बिचारो पहचान नहीं सके है के हर नाम और रूपके पीछे ब्रह्म कहां है? वाकु नाम और रूप ही दिखलाई दे रह्यो है. ब्रह्म दिखलाई नही देगो.

(कर्मी और कर्मयोगी)

ऐसी ही कर्मी कर्म तो करे है सब, पर जो कर्मयोगी है वाकु हर कर्ममें प्रभुकी और कर्मकी एकता दीखेगी. मने हर कर्म वो प्रभुके लिये करेगो. जैसे प्रभु गीतामें आज्ञा करे हैं **''यत् करोषि यद् अश्नासि यद् जुहोषि ददासि यत् यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्.''** (गीता.९।२७), या न्यायसु अपने कर्मसु वो जो भी कर्म कर रह्यो हैद्ध **''यद्द्वयत् कर्म करोमि तत्द्धतद् अखिलं शम्भो तव आराधनम्''** यों कह्यो जाय. जोद्धजो मैं कर्म करूं वो

तेरे आराधनके लिये ही है. तो कर्मयोगीको कर्म ऐसो होयगो के वाको प्रत्येक कर्म भगवदाराधनरूप होयगो.

जा बखत कर्म अपन् भगवदर्थ करते होंय तो वो कर्मयोग है. जा बखत अपन् कर्म स्वार्थके लिये करते होंय, अब स्वार्थ कोइको छोटो होय कोईको बड़ो होय, जाको जैसो होय, जाके लिये कर्म कर रहे होय, वा बखत वो कर्म है, कर्मयोग नहीं है. ये बात समझनी चइये. याके लिये भगवान् यों कहें हैं **''कर्मिभ्यश्च अधिको योगी''** कर्मीके बजाय कर्मयोगी अच्छो है. ज्ञानीके बजाय ज्ञानयोगी बहोत अच्छो है. तुमने बहोत शास्त्र पढ़े और वो बुरी बात नहीं है पर वो शास्त्र यदि ब्रह्मकु जानवेके लिये पढ़े, परमात्माकु जानवेके लिये पढ़े, तो तुम्हारो ज्ञान ज्ञानयोग बन जायेगो. ब्रह्मके शास्त्र भी यदि तुमने ब्रह्मकु जानवेके लिये नहीं पढ़े, व्यर्थमें कोईके साथ खटपट करवेके लिये पढ़े, तो वो ब्रह्मशास्त्र भी केवल ज्ञान है, ज्ञानयोग नहीं है. ऐसो एक अन्तर है या बात समझनी चइये.

(भक्ति भी संकल्पभेदसु भिन्न बने है)

जैसे आज हम बता रहे थे के एक छोरा हमारे पास आयो. वाने कही ''सेवा करनी है महाराज, ब्रह्मसम्बन्ध दो'' मैंने कही ''भई अभी तू विद्यार्थी है. अभी क्यों उतावल करे है ब्रह्मसम्बन्ध लेवेकी? बोल्यो ''नहीं करूंगो सेवा.'' करेगो सेवा ये तो बात ठीक है पर अभी तू पढ़ रह्यो है. अभी तू संकल्प कर के तू या लिये पढ़ रह्यो है के तू योग्य बनेगो. अपने पैरपर खड़ो होयगो. अपने पैरपर खड़ो होके अपनो घर बसायेगो. ऐसो घर के जामे तू भगवत्सेवा कर सकेगो. यदि या संकल्प लेके तेने आज पढ़ाई शुरु करी तो तेरी पढ़ाई भी भगवत्सेवा है. नित्य ध्यानमें रखियो, यों मत समझियो के पढ़ाई भगवत्सेवा नहीं है. अगर तेंने या लिये पढ़ाई करी के मैं कमाउंगो, खाउंगो, मौज मारूंगो, तो ये पढ़ाई भी आसुरी हो

सके है. ये ही पढ़ाई कोइके लिये द्वेष भी हो सके है. जब तू यों सोच ले के वो मेरो भाई जो पढ़्यो वाकु मैं पढ़के पटक दउंगो. तो ये ही पढ़ाई द्वेष भी हो सके है. ये पढ़ाई सेवा भी हो सके है भगवान्की. ये पढ़ाई माताह्मपिताकी भी सेवा हो सके है. भले कछु काम नहीं करतो होय पर जो एक विद्यार्थी यों सोचे के नहीं मैं अपनी पढ़ाई या लिये कर रह्यो हुं के बड़ो होके मैं अपने माताह्मपिताकी सेवा करूंगो. भले ही पढ़ रह्यो है वा वखत कुछ भी सेवा न करतो होय, पर अच्छी तरहसु पढ़ रह्यो है, ये ही माताह्मपिताकी सेवा है. यदि शुभ संकल्प वाके हृदयमें है; और, शुभ संकल्प नहीं है, स्वार्थ संकल्प है तो वो जो सेवा कर रह्यो होयगो वा बखत भी वो सेवा नहीं है. क्योंके वाको संकल्प ये हो सकेगो के कोई तरहसु माताह्मपिताकु बेवकूफ बनाके पैसा जितने ऐंठे जायें उतनो ऐंठ लो. तो वो सेवा कर रह्यो है तब भी सेवा नहीं है; और, जब सेवा नहीं कर रह्यो है, तब भी सेवा हो सके है. सेवा कब शुरु होयगी? जा वखत आपने शुभ संकल्प कियो. **''यद्ह्मयत् कर्म करोमि तत्ह्मतद् अखिलं तव आराधनम्.''** ऐसे या न्यायसु प्रथम संकल्प आपने जब कियो ''मैं पढ़ या लिये रह्यो हूं के मोकु कमानो है कमानो या लिये के घर बसानो है. घर क्यों बसानो है क्योंके मोकु भगवत्सेवा करनी है.'' आज ये जो पढ़ाई कर रह्यो होय वो भी भगवत्सेवा हो सके है. थोड़ेसे संकल्पकी स्पष्टतासु कोई भी कर्म भगवत्सेवा हो सके है. **''कर्मापि एकं तस्य देवस्य सेवा''** (गीतामाहात्म्य). ये जो कह्यो है या न्यायसु वो कर्म भगवत्सेवा भी हो सके है. वो ही कर्म अपने पाडोसीके प्रति द्वेष भी हो सके है. कर्म तो एकको एक ही रहेगो पर वाके रूप अलग अलग प्रकट हो जायेंगे.

ऐसेही भक्ति भी जा बखत परमात्माकी इच्छासु अपन् करें तो 'भक्तियोग' कहलायेगो. जा बखत परमात्माकी इच्छासुं नहीं करें, वा बखत वो भक्तियोग नहीं है. केवल भक्ति है. भक्तिको मतलब थोड़ोसो यू.पी.की तरहसु बोलो तो भगति भी हो सके है. वो भक्ति नहीं है, वो भगति है. भागवेको चक्कर है. ये भक्ति नहीं है. भक्ति और भगति में थोड़ोही अन्तर है. वही भक्तियोग हो जायेगो जा क्षण अपन् परमात्माकी इच्छासु भक्ति करेंगे. काम कुछ भी करो पर इच्छा केवल परमात्माकी. हर बातमें इच्छा परमात्माकी, हर काम परमात्माकी इच्छासु कर रहे हैं. घर चला रहे हैं तो परमात्माकी इच्छासु कर रहे हैं. पढ़ रहे हैं तो परमात्माकी इच्छासु पढ़ रहे हैं. पढ़नो भी भक्ति हो जायेगो. आप सो रहे हो घरमें, ठीक बात

है. आप सो रहे हो तो परमात्माकी सेवामें सुबह उठनो है या लिये सो रहे हो, तो सोनो भी भक्ति हो रह्यो है. व्रत करके जग रहे हो वो भक्ति नहीं भी हो सके यदि आपकु परमात्माकी इच्छा नहीं है. भक्तिको स्वरूप पहचाननो बहोत जरूरी है. जा बखत **जानाति, इच्छति** और **यतते,** यामें जो इच्छति वालो पहलु है वामें आपके अन्दर इच्छा है. यदि परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छा है तो हर चीज भक्ति है और परमात्माकी इच्छा नहीं है तो कुछ भी करो ना, मने लोग पूजा करें, मन्दिरमें जाये दर्शन करें. मन्दिरमें जावें दर्शन करवेके लिये पर वा बखत परमात्माकी इच्छा नहीं होवे. मन्दिरमें जाके बात कौंनसी करें? फलानेके यहां ये भयो, ढ़ीकड़ेके यहां ये भयो, याके यहां ये भयो, वाके यहां वो भयो. अरे भई दर्शन करवे आये मन्दिरमें और अभी भी गांव सूझ रह्यो है क्योंके दर्शन करवे अपन् मन्दिरमें तो आ गये पर इच्छा परमात्माकी नहीं है अपनेकु, इच्छा तो उनही बातन्की है, बातें वही चलेंगी जो चल रही हैं. वो अपनेकु वैकुण्ठमें ले जायें, भगवान् सामने खड़े होंय, तब भी वोही बातें चलती रहेंगी के हम तो वैकुण्ठमें पहोंच गये पर फलानो देखो नरकमें पहोंच गयो और फलानो दुनियामें मोज मार रह्यो है वो वैकुण्ठ कैसे पहोंचेगो? ये बातें होयगी क्योंके इच्छा तो है ही नहीं अपनी. अपन् तो बस चले गये मन्दिरमें. ये चले जानो मन्दिरमें, वो एक दूसरो प्रकार है भक्तिको. कई लोग समझें के रोज मन्दिरमें दर्शन करें तो बड़े भक्त हैं. वो भक्त नहीं हैं वो भगत हैं वहांसु यहां, यहांसु वहां भाग रहे हैं. वो भक्त नहीं हैं क्योंके मन्दिरमें जाके भी वो भगवान्के तरफ नहीं है, मन्दिरसु दूसरी तरफ भाग रहे हैं.

चक्कर वामें ये है के वामें अपनेकु निश्चित करनो चइये के भक्तिकी पहचान क्या? जैसे बुखार आवे और अपन् थर्मामीटर् लगावें तो अपनेकु पता चले के कितनो बुखार आयो. ऐसे भक्ति है के नहीं वाको थर्मामीटर् क्या? **परमात्मा प्राप्तिकी इच्छा है के नहीं? यह भक्तिको थर्मामीटर् है.** बाहर क्या कर रहे हो के क्या नहीं कर रहे हो, शायद सो रहे होओगे, शायद जाग रहे होओगे, शायद खा रहे होओगे, शायद पी रहे होओगे, शायद रो रहे होओगे, शायद हंस रहे होओगे, कुछ भी कर रहे हो पर परमात्मप्राप्तिकी इच्छा है? थर्मामीटर् लगाके देखो, तो भक्ति है. परमात्मप्राप्तिकी इच्छा नहीं है, तो चाहे तुम फुल चढ़ा रहे हो, चाहे दिन भर सेवा कर रहे हो, यदि परमात्माकी इच्छा नहीं तो तुम कोल्हूके बैल हो. वामें और तुममें फर्क क्या? वाकु जोत दियो गयो है. वो कोल्हूमें चले, ऐसे अपन् भी जुत

गये हैं भगतिमें. भगतिमें जुत गये तो अपन् भी गोल गोल घूम रहे हैं. भक्ति नहीं कर रहे हैं. वा तरहकी भक्ति 'भक्तियोग' नहीं कहवावे. कोह्लूकी तरह जुत जानो एक दूसरी बात है, पर भक्तिको मतलब क्या? जुते नहीं, सो रहे हैं तो भी भक्ति हो रही है. क्यों भक्ति हो रही है? क्योंके सच्चाईसु हृदयमें परमात्मप्राप्तिकी इच्छा है. प्रयत्न ज्ञान, और इच्छा इनमें कर्म ज्ञान और भक्ति मार्गके मूल स्रोत रहे भये है. इनसु पहचानोगे तो पता चलेगो. कुछ लोग यों कहें के ये तीनों होने चइयें. जरूरी नहीं है के तीनों ही होने चइये.

(ध्यानको महत्व)

एक सामान्य बात आपकु बताऊं. जैसे अभी आप प्रवचन सुन रहे हो और आप देख भी रहे हो. अभी आपकु कोई एकाएक पूछे के क्या कर रहे हो? तो आप कहोगे के प्रवचन सुन रहे हैं. शायद कोई सोच रह्यो होयगो मनमें कोई और और बातें दुनियां भरकी, वाकु एकाएक जगाके कोई पूछे के बोल भई क्या कर रह्यो है? तो वो जो बात सोच रह्यो है वो बात कहेगो. ऐसे मैंने एक चुटकुला पढ़्यो के एक विद्यार्थी पढ़ रह्यो थो स्कूलमें. वाकु एकाएक मास्टर्ने पूछी ''क्यों दीमागमें बात घुसी?'' वो बोल्यो ''खाली पूंछ बाकी रह गई है'' क्यों बोल्यो? क्योंके स्कूलके बगीचामें एक सांप बिलमें घुस रह्यो थो. वाको ध्यान वापे हतो. ध्यान पढ़ाईपे नहीं हतो. मास्टर् साहब प्रवचन कर रहे थे. उनने एकाएक पूछी ''क्यों बात घुसी के नहीं?'' वाको ध्यान एकाग्र हतो सांपपें जो बिलमें घुस रह्यो थो, तो वाने कही ''सिर्फ पूंछ बाकी रह गई है बाकी सांप बिलमें घुस गयो थो'' तो पढ़ाईकी पूंछ तो बाकी रह जाय. अपन् पढ़ रहे हैं और ध्यान बगीचामें सांप क्या कर रह्यो है वहां है, तो वाकी पूंछ बाकी रह गई. पूंछ अन्दर नहीं जायेगी, पढ़ाईकी भी पूंछ बाहर ही रह जाये पूरी अन्दर नहीं जावे.

यासु अपन् क्या कर रहे हैं कैसे पता चले के अपनो ध्यान कहां है? कर क्या रहे हो ये महत्त्वपूर्ण नहीं है. ध्यान क्या बातपे है? सुन रहे होगे वा बखत आंख मिची होनी जरूरी नहीं है. वा बखत नाक बन्द होनी जरूरी नहीं है. वा बखत चमड़ीपे भान नहीं हो रह्यो है, ऐसी बात नहीं है. जा बखत ध्यान सुनवेमें है, अपनेकु कोई पुछे के क्या कर रहे हो? तो अपन् कहेंगे के सुन रहे हैं. देख रहे होंयगे तो कानपे अपनो ध्यान नहीं रहेगो. ध्यानको ऐसो विशिष्ट स्वरूप है के जा बातपे

है वा बातपे है वा बातपे ध्यान है. सब बातपे ध्यान नहीं है. ऐसे आदमीको ध्यान कर्मपे है तो वो कर्म है, भक्तिपे है तो वो भक्ति है. ज्ञानपे है तो वो ज्ञान है. निश्चित का बातसु होयगो के ध्यान कायपे है? ऐसो नही है के जाको ध्यान नहीं है भक्तिपे वाकी भक्तिको स्वरूपही नहीं होयगो. भक्तिको स्वरूप होयगो पर जा बखत वासु पूछोगे के क्या कर रहे हो? तो फटसु वो जो काम कर रह्यो होयगो सो बता देगो.

स्कूल्में प्रार्थना करावें ''हे प्रभु आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिये'' मने प्रभुकु आनन्ददाता मानके और वो आनन्द नहीं मांग रह्यो है पर मांग रह्यो है ज्ञान. आनन्ददाता होओगे वो तुम्हारो हैडेक् है. हमकु तो ज्ञान दो. जो आनन्द मांगनो चाहतो होयगो वो शायद यों कहेगो ''हे प्रभु ज्ञानदाता आनन्द हमको दीजिये.'' आदमीकी अपनी-अपनी मांग है. जहां जाको ध्यान है. प्रभुमें तो ज्ञान भी है. प्रभुमें तो आनन्द भी है. प्रभुमें तो कर्म भी है. प्रभुमें सुख भी है. सभी कुछ प्रभुके पास है. पर मांगवेवालेको अपनो एक रूप है हृदयसु जुड्यो वो कोई न कोई तरहसु प्रकट हो जाये. कहवे जाय कोई एक बात पर कही जाये कोई दूसरी बात. ऐन मौकापे जो बात निकलनी चइती थी वो नहीं निकले. ऐन मौकापे जो बात अन्दर होय वो बाहर छलक ही आवे. वो प्रभु आनन्ददाता हैं पर जाकु ज्ञानार्जनकी इच्छा है वो यों कहेगो ''हे प्रभुआनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिये'' वो आनन्द नहीं मांग रह्यो है. क्योंके ज्ञानार्जनको विद्यार्थी है वो. ऐसे जो आदमी भक्ति कर रह्यो है, वो कोई मूर्ख होयगो, अज्ञानी होयगो, निष्कर्म होयगो, निकम्मो होयगो, ये जरूरी नही है पर वाको ध्यान कर्म करते भये भी भक्तिपे है. वाको ध्यान ज्ञानार्जन करते भये भी भक्तिपे है. ऐसे ही ज्ञानयोगी भक्ति करतो होयगो पर वाको ध्यान भक्तिपे नही होयगो. एकाएक भगवान् प्रकट होके कहें ''बोल बेटा क्या चइये? '' तो कह देगो ''हे प्रभु आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिये'' क्योंके वो खुद ज्ञानी बननो चाहे है. खुद ज्ञानी है. ऐसे ही जो भक्त होयगो वाके सामने प्रभु एकाएक प्रकट होके कहें ''बोल भई क्या चइये?'' भक्त कहेगो ''हो गई बस खत्म बात. आपही तो चईते थे प्रकट. अब न तो ज्ञान चइये और न कुछ और. अब कुछ नहीं चइये जब आप मिल गये तो''. प्रभुमें तो हर चीज है. प्रभुके पास तो हर चीज है पर जाकु जो चइये सो मिलेगो. जैसे सागरमें तो अनेक रत्न हैं. कोई वामेंसु कुछ निकाले, कोई कुछ. कोई वामेंसु मच्छी पकड़े, कोई वामेंसु रत्न निकाले. कोई मूंगा निकाले. कोई रेत निकाले. आजकल पेट्रॉल् निकालें. सागरमें तो सभी चीज हैं पर निकालवेवालेकी अपनी अपनी ताकत

है, अपने-अपने माद्दायें हैं. अपनी-अपनी रुचि है. जाकु जो निकालनो होय सो निकाले. ऐसे ही शास्त्रमें भी सब रहस्य भरे हैं, जाकु जो निकालनो होय सो रहस्य निकले. वो शास्त्रार्थकी गम्भीरता और शास्त्रकी गहनता निकालवेवालेकी अपनी अधिकारितापे निर्भर करे है. भगवान् याही तरहसु आगे जाके बतायेंगे के तेरेकु कौंन कौंनसे स्टेज्पे क्या क्या चीजकी जरूरत है? ये तु समझ और समझके वा हिसाबसु तेरे मार्गको निर्धारण कर. तो कर्म ज्ञान भक्ति यामें कुछ लोग यों कहें के इन तीनोंको ही चोचोंको मुरब्बा बन नहीं सके.

(सब सम्प्रदायन्कु एक कर दो)

अभी हम बड़ौदा गये तो एक आदमीने कही ''महाराज श्रीशंकराचार्यसु लेकर श्रीवल्लभाचार्य तकने इतने साल इतनो प्रयत्न कियो तो भी मनुष्य तो कुछ सुधर्यो नहीं. अब एक काम करो के सब सम्प्रदायन्कु एक कर दो'' मैंने कही ''जब एक एक सम्प्रदाय हते तब तो सधे नहीं. अब सब सम्प्रदाय एक करके सबकी साधना शुरु करोगे तो क्या शुरु हो पायेगो? कुछ शुरु नहीं हो पायेगो. सब फ्लोप् हो जायेगो''. भगवान् गीतामें आज्ञा करे हैं **''एकमपि आस्थितः सम्यग् उभयोः विन्दते फलम्''** (गीता.५।४). एक मार्ग भी तुमने अच्छी तरहसु पकड़्यो तो वो तुमकु छेल्ले तक पहुंचा देगो. पर तुम एक मार्गमें तो चल नहीं सके. मने जासु एक रोटी पचती नहीं होय, वाकु तु घी भी खवा दो, वाकु तुम मलाई भी खवा दो, खिचड़ी भी खवा दो, अचार भी खवा दो, पापड़ भी खवा दो. अरे भई तोकु एक रोटी तो पचे नहीं है, पेटकी इतनी स्थिति खराब है जाकी, जासु खिचड़ी नहीं पचती होय, वाकु तुम घी भी खवाओ, मलाई भी खवाओ, क्योंके एक रोटी खावेसु फायदा नहीं भयो वाकु खिला दो सब वाकु, मर ही जायेगो बिचारो आदमी. आदमी कुछ सोचे नहीं वो कहे ''इतने आचार्यन्ने इतने साल तक सब लप्पन छप्पन कियो पर कोई सफल नहीं भयो. अब ये सब खतम करो. सब मार्ग एक कर दो'' एक करवेपे और ज्यादा गरिष्ठ हो जायेगो. छुट्टो रहेगो तो कुछ तो पाचकता रहेगी. आदमी अपनी पाचनशक्तिके अनुसार कुछ खायेगो तो कुछ पचेगो. सब मिला दियो एक साथ तो वो पदार्थ इतनो गरिष्ठ हो जायेगो के कोईकु भी नहीं पचेगो. सब बिचारे मर जायेंगे.

हमारे यहां बड़े मन्दिरमें एक शास्त्रीजी रहते थे. वो जब सत्तर अस्सी बरसके भये वा बखत उनकु एकाएक एक सूत्र याद आ गयो '' चरनसों न मरन.'' मने

चरे सो मरे नहीं. अब वो बचपनको, जवानीको सूत्र होयगो उनकु याद, जा बखत कसरत करते होंयगे. ''चरनसों न मरन'' उनकु याद आयो तो उनने मन्दिरमें जा जाके मलाई खानी शुरु की. एक दो दिन मलाई पची. अब सत्तर अस्सी बरसके बुढ़ापामें कब तक पचे? अब वो यहांसु चले तो वहां तक गन्दगी करते चले. सो सबन्ने हल्ला मचायो के कौंन गन्दो कर गयो, कौंन गन्दो कर गयो? अब उनके सूत्रके कारण मन्दिरमें बहोत परेशानी भई सबकु. पर उनकु जंच ही गई के ''चरनसों न मरन''. चरन सु ही मरन हो जायेगो बहोत करोगे तो. अति नहीं करनो चइये. ''अति सर्वत्र वर्जयेत्.'' ऐसे कह्यो है. पर आदमी ऐसी बात करे जो चले नहीं. बैठे बिठाये यों मान लें के सब धर्मन्सु फायदो नहीं भयो तो तुम सब धर्मन्कु एक कर दो. एक कर दोगे तो और ज्यादा गरिष्ठ पदार्थ हो जायेगो. एक धर्म तो सध्यो नहीं आदमीसु. एक आदमीकु कह दें के कर्म अच्छी तरहसु कर ले तो कर्म अच्छी तरहसु नहीं कर सके. भक्ति अच्छी तरहसु कर ले तो भक्ति अच्छी तरहसु नहीं कर सके. ज्ञान अच्छी तरहसु कर ले तो ज्ञान अच्छी तरहसु कर ले तो ज्ञान अच्छी तरहसु नहीं कर सके. वामें ये और कहे के कर्म ज्ञान और भक्ति तीनों करो. अरे तीनों कहांसु करेगो? चरनसों न मरन वाली स्थिति हो जायेगी. वो कुछ नहीं कर सकेगो. बीमार और पड़ जायेगो. चरन सों ही मरन हो जायेगो.

(सच्ची दिशामें कदम रखनो जरूरी)

व्यक्ति ये बात समझे नहीं. सब करवेकी जरूरत नहीं है. जरूरत है जो भगवान् आज्ञा करे हैं **''एकमपि आस्थितः सम्यग् उभयोः विन्दते फलम्''** एककु अच्छी तरहसु हासिल करो. मने अच्छी सच्ची दिशामें एक कदम भी आगे बढ़े तो वो अच्छी बात है और पचास दिशामें तुमने दस दस कदम रखे, तो पहुंचोगे कहां? कहीं नहीं पहुंचोगे. गोलह्गोल घूमते रहोगे. वहींके वहीं खड़े मिलोगे. पर सच्ची दिशामें एक कदम भी आगे बढ़े तो कुछ तो आगे बढ़े. पचास दिशान्में दस दस कदम रखे, तो न जाने कितने कदम होंयगे गणितके हिसाबसु काउन्ट् करके देखलो, तो कहां आगे बढ़ोगे? जहां खड़े हो वहींके वहीं खड़े रहोगे. कुछ आगे नहीं बढ़ पाओगे. याके लिये भगवान् कहे हैं ''आगे बढ़नो होय तो सच्ची दिशामें एक कदम भी बहोत पर्याप्त है. आगे नहीं बढ़नो होय और चक्कर मारते रहनो होय तो पचास दिशामें सो कदम भी रखो तब भी वहींके वहीं खड़े मिलोगे.'' **''पिपीलिकाऽपि गच्छेत योजनानां शतत्रयम् अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदम् एकं**

न गच्छति.'' यदि चेंटी भी चलनो शुरु कर दे तो एक योजन मने आठ माईल्, **योजनानां शतत्रयम्** तीनसो योजन चल सके. **अगच्छन् वैनतेयोऽपि** गरुड़जी यदि बैठे होंय तो बैठे ही रहें तो कहीं नहीं पहुंचे. याके लिये उचित है के अपने मार्गकी दिशामें अपन् एक कदम भी रखेंगे तो आगे बढ़ेंगे. अगर अगड़म बगड़म सब कुछ करते रहोगे, तो कोई दिशामें आगे बढ़ोगे नहीं. वहींके वहीं खड़े रहोगे. वासु कुछ लाभ होयगो नहीं.

(अर्जुनको प्रश्न)

याके लिये भगवान्कु अर्जुनने पूछ्यो है **''एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः''** (गीता.१२।१). ये जो आपने मोकु ज्ञानयोग समझायो, ये जो मोकु आपने विज्ञान समझायो, ये जो आपने कर्म ज्ञान और भक्ति की बात समझाई, अब मेरेकु ये समझाओ के **''एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते''** जो भक्त आपकी उपासना करे है, जो ज्ञानी अक्षरब्रह्म अव्यक्तकी उपासना करे है, भक्त साकारकी उपासना करे, ज्ञानी निराकारकी उपासना करे है. उन दोनोंमें आपकु योगवित्तम कौंन लगे है? मने सबसु अच्छो योगी कौंन लगे है? ज्ञानयोगी अच्छो लगे है, भक्तियोगी अच्छो लगे है? भगवान्सु ऐसी बात पूछ ली. भगवान्ने शुरुआतमें खुलासामें ये बात कही थी **''कर्मिभ्यश्च अधिको योगी तस्माद् योगी भव अर्जुन योगिनामपि सर्वाषां मद्गतेन अन्तरात्मना.''** अब अर्जुन पलटके ये स्पष्ट करनो चाह रह्यो है के भक्तियोग समाप्त होवे वाके पहले, ''ये ठीक है के ये बात आपने बताई थी के ज्ञानके बजाय ज्ञानयोगी अच्छो, कर्मके बजाय कर्मयोगी अच्छो, भक्तिके बजाय भक्तियोगी अच्छो. पर स्पष्टतया एक बखत अपने मुखारविन्दसु और कह दो के ज्ञानयोगी और भक्तियोगीमें आपकु कौंन अच्छो लगे है? तब बात आगे बढ़ेगी''.

. अभी तू संकल्प कर के तू या लिये पढ़ रह्यो है के तू योग्य बनेगो. अपने पैरपर खड़ो होयगो. अपने पैरपर खड़ो हाम

दूसरे दिनको प्रवचन

पूर्वप्रसंगमें कल अपन्ने देख्यो के भगवान्ने गीताको सार किन दो श्लोकन्में कह्यो :

तपस्विभ्यो अधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतो अधिकः।
कर्मिभ्यश्च अधिको योगी तस्माद् योगी भव अर्जुन।।
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।

(भजनकर्तान्के प्रकार)

मने कर्मी और कर्मयोगी, ज्ञानी और ज्ञानयोगी, तपस्वी और तपोयोगी, भक्त और भक्तियोगी, इनमें जो कुछ अन्तर है वो कहांसु समझमें आयेगो? अपनेकु बाहरसु नहीं समझनो है अपनेकु गीतासु ही समझनो है. यदि है तो अन्तर कहां है? वो अन्तर भगवान्ने समझायो है :

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो अर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभः।।
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिः विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनो अत्यर्थम् अहं स च मम प्रियः।।
उदारा सर्वएव एते ज्ञानी तु आत्मैव मे मतम्।

(गीता.७।१६-१८).

अनन्त महत्वाकांक्षायें अपने हृदयमें रहे हैं. अपन् उन् सारी महत्वाकांक्षान्कु, गतवर्ष अपन्ने यहां चतुःश्लोकी करी हती, सो आपकु याद होयगी के सारी महत्वाकांक्षान्को शास्त्रने चार वर्गन्में विभाजन बतायो. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष.

(एकही कार्य भिन्न भिन्न पुरुषार्थरूप)

अनेकविध अपनेकु महत्वाकांक्षायें होवे हैं, जैसे विद्यार्थीकु पढ़वेकी महत्वाकांक्षा है. अपनकु लगे के पढ़नो चाह रह्यो है. पर वा महत्त्वाकांक्षाके कई रूप हो सके है. यदि नौकरी हासिल करवेके लिये पढ़ाई करनो चाह रह्यो है तो वो कमावेके लिये पढ़ रह्यो है. याकु अपन् कहेंगे 'अर्थपुरुषार्थ', क्योंके पढ़नो चाह रह्यो है ज्ञानके लिये नहीं. पढ़नो चाह रह्यो है नौकरीके लिये. पढ़नो चाह रह्यो है धन्धा करवेके लिये. है विद्याध्ययन पर वो आयेगो अर्थपुरुषार्थके वर्गमें. विद्यार्थी पढ़ रह्यो है कोई लफड़ा नहीं है जीवनमें. कोई जीवनमें चिंता विचार नहीं है पढ़ रह्यो है. क्योंके वाने स्वधर्म समझ्यो है के मैं विद्यार्थी हूं. मोकु विद्याध्ययन करनो है. यासु आगे अर्थोपार्जन होयगो के नहीं होयगो, ज्ञानोपार्जन होयगो के नहीं होयगो, कुछ सिद्धि या सुख मिलेगो के दुःख मिलेगो, कौंन जाने क्या मिलेगो, वाकी चिंता अभी करवेकी क्या जरूरत पढ़ रह्यो हूं पढ़वेके लिये. पढ़ रह्यो हूं विद्याध्ययन कर रह्यो हूं धर्मबुद्धिसु. या हेतुसु विद्याध्ययन अपनो स्वधर्म समझके करे तो कर रह्यो है विद्याध्ययन पर कहवायेगो वो 'धर्म', क्योंके शास्त्रने वर्ण और आश्रम के विभाग बताये. वा विभागमें ये बतायो के कौंनसे आश्रममें क्या काम करनो चइये और जा आश्रममें जो भी वो काम कर रह्यो है, वो वाको धर्म है.

भगवान् आज्ञा करे हैं **''स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः''** (गीता.३।३५). अपने धर्ममें मर जानो बेहतर है बजाय दूसरे धर्मकी खटपट करवेसु. तो जा बखत एक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य अवस्थाके आचरणानुरूप विद्याध्ययन केवल विद्याप्राप्तिके लिये कर रह्यो है, तो वो ही विद्याध्ययन वाको धर्मपुरुषार्थके अन्तर्गत आयेगो. अध्ययन एक ही है पर वो यदि कमावेके लिये कर रह्यो है तो अर्थपुरुषार्थको चक्कर है.

यदि पहलेसु ही वाने सपनायें घड़ने शुरु कर दिये के मेट्रिक् करूंगो, मेट्रिक् करके बी.ए करूंगो, एम.ए. करूंगो, वाके बाद अमेरिका जाऊंगो, अमेरिका जाके एअरकन्डिशन्ड् मकानमें रहूंगो. नयीह्नयी कारन्में घूमुंगो. तो कर तो विद्याध्ययन रह्यो है तो वो वाको कामपुरुषार्थ हो गयो. वो ही विद्याध्ययन कामपुरुषार्थ हो गयो. अब वो ही विद्याध्ययन मोक्ष पुरुषार्थ भी हो सके है. जा बखत एक विद्यार्थी, ज्ञानप्राप्ति या मोक्षकी प्राप्तिके लिये विद्याध्ययन कर रह्यो है तो वो ही विद्याध्ययन

मोक्ष प्राप्तिकी साधना भी हो सके है. कार्य तो एकको एक है पर वाके रूप चार हो सके हैं.

ये तो मैंने आपकु विद्याध्ययनके रूपमें बतायो. या बातकु आप भोजनके रूपमें भी ले सको हो. एक ही भोजन अर्थ पुरुषार्थ भी हो सके है. वो ही भोजन धर्म पुरुषार्थ भी हो सके है. वो ही भोजन काम पुरुषार्थ भी हो सके है. वो ही भोजन करवेकी प्रक्रिया मोक्ष पुरुषार्थ भी हो सके है. ये तो अपनी **''तद् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु''** (शिवसं.उप.१) यों कहे हैं के मेरे मनमें शिव संकल्प होनो चइये. ऐसो संकल्प जा संकल्पके कारण जो काम मैं कर रह्यो हूं वो कोई न कोई पुरुषार्थको रूप ले लेवे.

जैसे आदमी भोजन करे, शास्त्रने भोजन करवेके भी नियम बताये हैं. कैसे भोजन करनो? बलि वैश्वदेव करनो. अभ्यागत अतिथिकु भोजन करानो. अभ्यागत अतिथिकु भोजन करावेके बाद **''ईशा वास्यम् इदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्'' (ईशा.उप.१) मने ''यावद् भ्रीयेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् अधिकं यो अभिमन्येत स स्तेनो दण्डम् अर्हति''** (भाग.७।१४।८) या न्यायसु अपन् धर्मके हेतु भोजन करे हैं और उदरभरणके हेतु भोजन करनो बुरी बात नहीं है. पर वा भोजनकी प्रक्रियामें अपने धर्मकु भूले नहीं. भोजन करवेकी प्रक्रियाकी गरिमा बताई है शास्त्रने. एक आखे यज्ञकी कल्पना करी है. ये अपनो मुंह, यह यज्ञवेदी है. यामें जिव्हा अग्निकी उठती भई लपटें हैं. इनमें अन्नकी आहुति दी जाये. यज्ञकी उदात्त भावनासु जो भोजन करे तो भोजन करनो भी एक धर्म है. ऐसी कोई बात नहीं है के भोजन करनो कोई बुरी ही बात होय या भोजन करनो कोई अच्छी ही बात होय. कैसी भावनासु, कौंनसे संकल्पसु तू भोजन कर रह्यो है? एक आदमी भोजन या लिये करे है के कमानो है. वाकु खबर ही नहीं पड़े के कमानो आखिर क्यों है? आदमी सोचेगो के कमानो या लिये के खानो है. पर खावेकी वाकु फुरसत नहीं है. खानो वाकु फावे नहीं. खावेमें वाकी रुचि नहीं है. हर बखत टेलीफोन्सु जुड़्यो रहे. हर बखत वो हायह्नहत्या चलती ही रहे. क्यों भोजन कर रहे हो? सिर्फ या लिये के दुकानपे बैठनो है. ऑफिस्में बैठनो है. ऑफिस् चलावेमें, दुकान चलावेमें, कहीं कमजोरी ना आ जाये, कथञ्चित रोटी एक आध मुंहमें डाली या नहीं डाली और दुकानपे हाजिर. यद्यपि भोजन कर

रह्यो है पर वाकु भोजनको स्वाद नहीं मिलेगो. वो यज्ञकी भावनासु नहीं कर पायेगो. क्योंके फुरसत ही नहीं वाके पास इतनी. हमारे बम्बईमें आप देखो तो लोग भागते भागते भी भोजन करें, क्योंके फुरसत नहीं है. क्यों फुरसत नहीं है? क्योंके कमावेको चक्कर, बड़ो भारी अर्थपुरुषार्थ है है वो भोजन ही पर वो अर्थपुरुषार्थके अंगभूत आयेगो.

एक ही भोजन धर्मपुरुषार्थ हो सके है. वो ही भोजन अर्थपुरुषार्थ हो सके है. एक आदमी बड़ो स्वाद लेके खा रह्यो है. ऐसे ही बम्बईमें कई जीव हैं जो रातकु बारह बजे उठके चाट खावे जावें. वो रातमें चाटको धन्धा चले. बारहसु दोके बीच. क्यों खावें लोग समझमें नहीं पड़े. घरमें खाना नहीं मिले है के क्या चक्कर है? है कोई कोई कामपुरुषार्थको चक्कर ''या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी. यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः'' (गीता.२।६९). मने बारह बजे उठके चाट खावे जावें. पंद्रहह्नपंद्रह मीलसु लोग खावे आवें. क्यों? वो भोजन न तो पुष्टिकर है, न वो कोई अच्छो भोजन है. एक कामपुरुषार्थकी सिद्धिके रूपमें भोजन है. जीभको चटकारा है. आदमी बारह बजे उठे. दो बजेके बीचमें जाके खावे रातकु तो या तरहको निशाचरण करे. वो ही भोजन कामपुरुषार्थ भी हो सके है. वो ही भोजन मोक्षपुरुषार्थ भी हो सके है. जब एक व्यक्ति भोजन करे तो या लिये भोजन करे इतनी दिव्य भावनासु के ये प्रसाद मैं ले रह्यो हूं. भगवत्प्रसाद ले रह्यो हूं. भोजन नहीं कर रह्यो हूं. ये प्रसाद ले रह्यो हूं. भोजन करते समय भगवत्प्रसादकी अनुभूति वाके लिये मुक्तिके बराबर होय. वाके लिये भोगके बराबर नहीं है. प्रसादको अनुभव वाके लिये मुक्तिके बराबर है. तो वो ही भोजन मुक्तिपुरुषार्थकी सिद्धि भी हो सके है. क्या कर रहे हो ये प्रश्न नहीं है. संकल्प कैसो है? ऐसो शिवसंकल्प अपने हृदयमें होय तो कोई भी काम धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूप हो सके है. कोई भी काम अधर्म, अनर्थ, अकाम, अकामको मतलब निकम्मो और भोगरूप भी हो सके है. आपको संकल्प ये बतायेगो के आप जो काम कर रहे हो वो काम आप कौंनसी केटेगरीमें कर रहे हो?

भगवान्ने याही लिये भक्तको वर्णन करते भये, चतुर्विध भक्तन्को निरूपण कियो. **''चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो अर्जुन. आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ''** (गीता.७।१६). ध्यानसु देखो तो पता चलेगो चतुर्विध

पुरुषार्थन्की बात प्रभु यहां कर रहे हैं. आर्त मने कामादि पुरुषार्थकी बात यहां भगवान् कर रहे हैं. **अर्थार्थी** अर्थपुरुषार्थकी बात भगवान् यहां कर रहे हैं. **जिज्ञासु** मोक्षपुरुषार्थकी बात भगवान् यहां कर रहे हैं. तीन तरहके पुरुषार्थ भगवान्ने पहले बताये. पहले **'आर्तः''** अर्थात् भक्ति कर रह्यो है, पर भक्ति क्यों कर रह्यो है? वासु अगर पूछो तो पता चलेगो के कोई काम, कोई न कोई तरहकी कामना वाकु पीड़ित कर रही है. आर्त बना रही है. **''कामार्ताः हि प्रकृतिकृपणाः''** न्यायसु कुछ न कुछ कामनाके कारण वो आर्त है, दुःखी है. कोई तरहसु कामनाकी पूर्ति नहीं भई है. पूर्ति नहीं हो रही है या लिये भगवान्को भजन कर रह्यो है. कल यदि कामना पूर्ण हो गई तो परसों भगवान्कु याद नहीं करेगो. ऐसे ही **जिज्ञासु** भी भगवान्को भजन करे है. पर क्यों करे? भगवान्कु जाननो है या लिये भगवान्को भजन करे. ज्ञान प्राप्त भयो नहीं के भगवान्कु 'गुड्बाय्' कह देगो. अब तो हम जान गये क्योंके **''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति''** (मुण्ड.उप.३।२।९) जो रहस्य हतो वो पता चल गयो. अब भजनकी आवश्यकता नहीं है. अब तो हम खुद ब्रह्मताको अनुभव करेंगे. **''ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति''** (गीता.१८।५४) न्यायसु. जिज्ञासु जा बखत भक्ति करेगो, तो वो कर रह्यो है जिज्ञासुतासु, ज्ञानप्राप्तिके लिये. ज्ञानप्राप्तिके लिये जा बखत भक्ति कर रह्यो है तो जा दिन ज्ञान प्राप्त भयो, वाके बाद भक्ति नहीं करेगो. वो ज्ञानको मजा लेगो. क्योंके वो मुक्त होवेके लिये भक्ति कर रह्यो है. भक्तिके लिये भक्ति नहीं कर रह्यो है. ऐसे ही अर्थार्थी अर्थ प्राप्तिके लिये भक्ति कर रह्यो है. भक्तिके लिये भक्ति नहीं कर रह्यो है. तो त्रिविध पुरुषार्थन्की गणना भगवान्ने यामें तीन तरहके भक्तन्में करी है. **''आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी''** और चोथो पुरुषार्थ बतायो **''ज्ञानी च भरतर्षभ''**. ज्ञानी जा बखत भजन करे परमात्माको, वो भजन कोई कामनाकी पूर्तिके लिये नहीं कर रह्यो है. ज्ञानी जा बखत भजन करे है, वो सिर्फ धर्म समझके कर रह्यो है. भक्ति मेरो धर्म है. ज्ञानी है वाको मतलब क्या? जाकु ये समझमें आ गई के भगवान्को भजन, भगवान्के भजनके लिये ही करनो है. अन्य कोई कामनाकी पूर्तिके लिये नहीं करनो है. जो या बातकु समझ पावे अच्छी तरहसु वाकु भगवान् 'ज्ञानी' कहें हैं. दूसरे कोईकु 'ज्ञानी' नहीं कह रहे हैं. या तरहसु **''ज्ञानी च भरतर्षभ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिः विशिष्यते''** वो ज्ञानी नित्ययुक्त है. नित्ययुक्तको मतलब क्या? टेम्परेरीली भजन नहीं कर रह्यो है. प्रोविजनली भजन नहीं कर रह्यो है. वो भजन कर रह्यो है भजनके लिये. वो सदा भजन करवेके लिये भजन कर रह्यो

है. कोई कामनाकी पूर्तिके लिये मने अर्थसम्बन्धी, कामसम्बन्धी, या मोक्षसम्बन्धी पुरुषार्थन्‌की पूर्तिके लिये वो भजन नहीं कर रह्यो है. केवल धर्म कर रह्यो है.

(नित्ययुक्तभक्ति)

महाप्रभुजी आज्ञा करे हैं **''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः स्वस्य अयमेव धर्मोहि नान्य क्वापि कदाचन''** (चतु.१) अपनो धर्मभाव सीखो. वाकु कुछ और नहीं लेनो है भक्तिके द्वारा. कुछ लेनो नहीं है, कुछ हासिल नहीं करनो है. भगवान् कहे हैं ''न अनवाप्तम् अवाप्तव्यं वर्तएव च कर्मणि (गीता.३।२२). न मोकु कुछ हासिल करनो है, न मेरे लिये हासिल करवे लायक कुछ है. पर मैं अपने कर्ममें लग्यो भयो हूं. भक्त या बातकु समझे है के ठीक है, भगवान्‌कु कुछ हासिल करनो नहीं है. भगवान्‌कु अपने पाससु हासिल करवे लायक कुछ है भी नहीं. फिर भी भगवान् अपने कर्ममें लगे भये हैं. ऐसे ही मोकु भी भगवान्‌के पाससु हासिल कुछ करनो नहीं है. भगवान्‌कु स्नेह करनो है. भगवान्‌की भक्ति करनी है. भक्तिके लिये जो भक्ति करे वाकु भगवान् कहे हैं के वो नित्ययुक्त है. क्योंके वो सर्वदा भक्ति कर पायेगो. जा दिन वाको अर्थपुरुषार्थ सिद्ध भयो, जा दिन ज्ञान सिद्ध भयो वाको, या जा दिन कामना पूर्ण भई वाके बादभी भक्ति ही करेगो. **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः''** वो नित्ययुक्त है और कैसो है? एकभक्तिः है. वाने जा बारेमें भक्ति स्थापित करी, वाने जा रूपमें भक्ति स्थापित करी, वा रूपमें वो एकभक्ति=अनन्यतासुं भक्ति कर रह्यो है. **''एकभक्तिः विशिष्यते''** ऐसे ज्ञानीके लिये प्रभु कहे हैं **''उदाराः सर्वएव एते ज्ञानी तु आत्मैव मे मतम्.''** ये सब उदार हैं पर ज्ञानी तो मेरी आत्मा है. क्यों आत्मा है?

(मोटर्‌के आगे घोड़ा)

वैसे सच्ची खोटी भगवान् जाने, पर जैसी सुनी है वो बात बता रह्यो हूं. लगे तो नहीं के सच्ची होयगी पर सुनी ऐसी है. जयपुर महाराजने एक बखत मोटर् खरीदी. जब मोटर्‌में पहली बार घूमवेकी उनकु इच्छा भई तो उनने कही के बिना घोड़ाके मोटर् नहीं चलेगी तो अपनी शान खत्म हो जायेगी. उनने कही के चार घोड़ा आगे जोड़ो. अरे भई जो मोटर् है वामें भीतर होर्सपॉवर् लगे भये हैं. वामें चार घोड़ा आगे जोड़ोगे तो घोड़ा बिचारो मोटर्‌सु परेशान. मोटर् बिचारी घोड़ासु परेशान. मोटर् बनानेवालो परेशान, घोड़ा बनानेबालो परेशान के क्या चक्कर भयो? घोड़ा

गाड़ीमें जुते तो घोड़ाकी शोभा है. पर मोटर्‌के आगे घोड़ा बांधो तो घोड़ा भी खींचह्नखींच पचिहारे. मोटर् बिचारी कहे के मेरे होर्सपावर्‌को क्या? मोटर्‌में भी तो होर्सपावर् है. वा होर्सपावर्‌की कोई गणना नहीं. अब ये बात सच्ची होय की खोटी भगवान् जाने पर समझवेकी बात यामें है के ऐसे आदमी भक्ति करे. भक्ति अपने आपमें एक सशक्त परमात्माके साथ सम्बन्ध स्थापित करवेकी प्रक्रिया है. अब हर आदमीके अपने-अपने घोड़ाये हैं, अर्थपुरुषार्थके, कामपुरुषार्थके या मोक्षपुरुषार्थके. मनके अस्तबलमें बांधे भये इन घोड़ान्‌कु भक्तिके आगे और बांधे अब घोड़ा भी परेशान और गाड़ी भी परेशान और गाड़ी चले नहीं अच्छी तरहसु. क्योंके वो गाड़ीको स्ट्रक्चर् ऐसो नहीं है के वाकु घोड़ा खींचे. वामें तो होर्सपॉवर्स्‌की बिल्ट्‌इन् केपेसिटी रखी भई है के बिना घोड़ाके चले. आदमी अपनी भ्रान्ति तोड़नो चाहे नहीं. क्योंके **''इन्द्रियाणि हयानि आहु''** (कठोप.१।३।४) कहें हैं अपन्‌ने जो मनके अस्तबलमें आशाह्नतृष्णाके घोड़ा पाल रखे हैं, उनकु हर गाड़ीके आगे बांधवेकी आदत छूटे नहीं ये परेशानी है. याके लिये भगवान् कहे हैं के उदार तो सभी हैं ठीक बात है पर **''ज्ञानी तु आत्मैव मे मतम्.''** पर ज्ञानी अपनी भक्तिकी गाड़ीके आगे या तरहके घोड़ाये नहीं बांधे. जो भक्ति स्वतः चलवेमें सक्षम है, वाके आगे जबरदस्ती अर्थ काम मोक्ष के पुरुषार्थके घोड़ा नहीं बांधे. वो निशंक गाड़ीमें बैठे. बैठके देखो भक्तिकी गाड़ीमें, वामें इनबिल्ट् केपेसीटी है, वामें इनबिल्ट् होर्सपॉवर् ऐसो है के वो स्वतः चलेगी. पर आदमीकु वो अपनी शानके खिलाफ लगे. आदमी बड़ो विचित्र प्राणी है. वाके लिये वाने अपनी शान बांध रखी है के हमारे चार घोड़ा चइयें तो वो चार घोड़ा बंधावे, जाके दो घोड़ा होवे वो दो घोड़ा बंधावे. जाके एक घोड़ा है वाके एक घोड़ा बंधे. वो सुने नहीं. वाने जो रुतबा बांध रख्यो है घोड़ाको के ये हमारे घोड़ा के ये हमारे घोड़ाको रुतबा, वो घोड़ा बांधे बिना चले नहीं, चाहे वाकु भक्तिकी गाड़ी चलावेके लिये कहो, चाहे मुक्तिकी गाड़ी चलावेके लिये कहो. आदमीकी खुराफत ही ऐसी कुछ है के वो एक बड़ो बुद्धिमान् प्राणी है. बुद्धिमान् होवेके कारण वाकु सब करतब मालूम हैं के घोडान्‌के आगे गाड़ी बांधनो के गाड़ीके आगे घोड़ा बांधनो. चक्कर वाकु खबर है तो चक्कर वो चलातो रहे.

(भक्तिपुरुषार्थ)

मूल बात क्या है? जैसे अपने यहां संस्कृतमें एक बहोत प्रसिद्ध उदाहरण है **शशविषाण** शशविषाण मने क्या? खरगोशके सींग. खरगोशके सींग होवें? दुनियांमें

सींग तो बहोतन्के होवें. गायके होवें, भैंसके होवें, हिरन्के होवें. सींग सबके होवें. दुनियामें खरगोश भी होवे है. भक्ति कर रह्यो है तो भक्तिके लिये भक्ति कर और सब भूल जा, कामकु भूल जा, मोक्षकु भूल जा. जो होयगी सो होयगी. वो खाता एक अलग खाता है जासु तोकु पुरुषार्थ सिद्ध करने हैं. भक्ति करनी है भक्तिके लिये. जब तक ये बात समझमें नहीं आवे तब तक भक्ति सद्विचारसु नहीं करे. भक्ति केवल भक्तिके लिये करे तो वो भक्ति है. अगर भक्ति ज्ञानप्राप्तिके लिये करे, भक्ति मुक्तिप्राप्तिके लिये करे, भक्ति धनप्राप्तिके लिये करे, तो भक्ति कर रह्यो है ये बात ठीक है पर वो भक्तियोगकी दृष्टिसु शशविषाणवत् मिथ्या भक्ति है. बात बस इतनीसी है. या लिये भगवान् कहे हैं **''उदारा सर्वएव एते ज्ञानी तु आत्मैव मे मतम् आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेव अनुत्तमां गतिम्''** (गीता.७।१८). ज्ञानी जा बखत भजन करेगो तो नित्ययुक्त होके एकभक्तिसु भजन करेगो. मने भक्ति वाके लिये सौदाबाजी नहीं है. भक्ति वाको लक्ष्य है. भक्ति वाको मार्ग है. भक्ति एक ऐसो मार्ग है जापे चलनो है, जा मार्गपे निरन्तर चलवेको मजा लेनो है तो भक्तिमार्गपे आओ. यदि कहीं पहुंचवेकी उतावल है तो कल नहीं आज पहुंच जाओ. आज नहीं अभी पहुंच जाओ, विदाईके बहोतसे साधन हैं अभी अपने पास. पर भक्तिसु कहीं पहुंचनो नहीं है. भक्तिमार्गपे सिर्फ चलनो है. चलवेकी मजा लेनी होय तो भक्तिमार्गपे आओ. यदि पहुंचवेकी उतावल होय तो सारे मार्ग अपने पास खुले भये हैं. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के मार्गन् द्वारा पहुंच जाओगे तुम कदाचित, पर भगवान् बतावे हैं के पहुंच जाओगे कहीं वो तो सच्ची बात है. पर भक्ति तो चलवेको मजा लेवेके लिये पुरुषार्थ है.

जैसे अपन् बगीचामें फिरें. शामकु लोग बगीचामें फिरें. लोग मोर्निंग् वॉक् करें. पहुंचनो कहां है? घूमवेकी फिरवेकी मजा लेनी है. पहुंचनो कहीं नहीं है. जिनकु पहुंचवेकी उतावल है, वो बराबर फिर नही पायेंगे. वो फिरवेमें भी कुछ न कुछ कौभाण्ड करेंगे.

(कामपुरुषार्थकी परिक्रमा)

हमारे यहां बम्बईके बड़े मन्दिरमें लोगबाग भोजन पचावेके लिये गिरिराजकी परिक्रमा करें. एक परिक्रमा, दो परिक्रमा. कोई कोइकु मैंने देख्यो हजार हजार परिक्रमा करें. अरे भई ठाकुरजीकु कायेकु ठग रहे हो? भगवानकु कायकु ठग रहे हो? भोजन

पचानो है, मरीन्ड्राईव्पे जाओ, समुद्रकिनारापे जाओ. वहां चलो. पर वो सोचे क्या? भोजन भी पच जायेगो और भक्ति भी हो जायेगी. या तरहको खरगोशके सींग उगानो बड़ी विचित्र बात है. वो यों कहें के भोजन खायो है रातकु तो कहां मरीन्ड्राईव् जायेंगे. दे गिरिराजकी एक हजार परिक्रमा गिरिराजजी तुमसु परेशान, तुम गिरिराजजीसु परेशान. पता चले नहीं के गिरिराजजीकु पचा जाओगे के भोजनकु पचा जाओगे क्या करोगे कुछ पता नहीं चले. पर ऐसे बहोत लोग आवें और परिक्रमा करें. अपनेकु लगे ओ हो एक हजार परिक्रमा कर रहें हैं, न जाने कितने बड़े भक्त होंयगे पर प्रोब्लेम् उनकी भोजन पचानो है. डॉक्टर्ने कही ''थोड़ो चलनो चइये. शामकु भोजनके बाद चल्यो करो फिर सोयो करो. नहीं तो तोंद बढ़ जायेगी. नहीं तो ब्लडप्रेशर् हो जायेगो''. उनने वाया मीडीया निकाल्यो के अब गिरिराजजीकी परिक्रमा करेंगे. या तरहके कौभाण्ड भक्ति नहीं हैं. लगे है भक्ति जैसो पर भक्ति नहीं है. इन बातन्को भेद अपनेकु समझनो चइये. **''उदारा सर्वएव एते ज्ञानी तु आत्मैव मे मतम्''** ये भोजन पचावेके लिये परिक्रमा करे हैं, वो परिक्रमा भक्तिमयी परिक्रमा नहीं है. वो कामपुरुषार्थकी परिक्रमा है. तुम कामके चक्कर काट रहे हो. तुमकु भोजन पचानो है पर भक्ति नहीं है.

(भगवान्की असूया)

याके लिये भगवान् कहे हैं **''चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो अर्जुन आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिः विशिष्यते''** नित्ययुक्त होनो चइये. नहीं तो क्या है ज्ञानप्राप्तिके लिये भक्ति करेगो. बहोतसे लोग पढ़वे आवें. पर पढ़वे पढ़वेमें भी अन्तर होवे. ये आजकल इन्डस्ट्री चलावें. ऐसे हमने सुनी के कोई इन्डस्ट्री सफल हो जाये. एक इन्डस्ट्रीवाले दूसरी इन्डस्ट्रीवालेके यहां अपनो आदमी भेजें लेबर्की तरह, सर्विस् करवेवालेकी तरह. क्यों सफल भई जाके देखके आओ. क्या टेक्नोलोजी वहां एडोप्ट् करी जा रही है, वो देखके आओ. अब वो सीखे वहां सब ऐपरेन्टिस् बनके. अब वो सीखवेमें बड़े विनीत होवें. जो साधारण लेबर् होवे वासु ज्यादा वो लेबर् विनीत होवें. जो साधारण आदमी सर्विस् देतो होय वासु ज्यादा वो सर्विस् दे. पर हेतु वाको ज्ञानप्राप्ति नहीं है. हेतु वाको है जहांसु वो फाइनेन्स्ड् भयो है, वहां जाके वाकु टेक्नीक् बतानी है के टेक्नीक् क्या है? इन्डस्ट्री चलावेकी. तो या तरहकी टेक्नीक् समझवेके लिये जो भक्ति कर रहें हैं, ज्ञानी सोचे है के भगवान्ने मोकु संसारबंधनमें फंसायो है

तो मैं भी वो भगवान्‌की टेक्नीक् समझ लउं के भगवान् कौंनसी टेक्नीक् वापरे हैं कौंनसी टेक्नीक्सु भगवान्‌ने हमकु संसारबंधनमें बांध्यो. वो ब्रह्मकु जाननो चाहे. जा बखत वो ब्रह्मकु जान जाये के या टेक्नीक्सु प्रभु बांध रह्यो है तो वा बखत वो घोषणा कर दे के लो अब हम टेक्नीक् समझ गये. अब हम ब्रह्मकी ब्रह्मताकी इन्डस्ट्री चला लेंगे. वा बखत भक्तिकी उपयोगिता समझमें नहीं आवे. वासु कहें के भई भजन कर. तो वो कहे ''भजन करनो तो अज्ञानीको काम है. हम तो ज्ञानी हैं'' ज्ञानी या तरहकी मुक्ति पावेके लिये भक्ति करे है. वो भक्ति कर रह्यो है पर भगवान्‌की भक्तिमें वाकी असूया काम कर रही है. याही लिये नवमें अध्यायके प्रारम्भमें जहां भक्तिको निरूपण भगवान्‌ने राजविद्याराजगुह्ययोगके रूपमें कियो वहां पहलेही श्लोकमें भगवान्‌ने ये बात बताई **''इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्यामि अनसूयवे ज्ञानं विज्ञानसहितं यद् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे अशुभात्. राजविद्या राजगुह्यं पवित्रम् इदम् उत्तमम्''** (गीता.९।१-२). तोकु मेरेमें असूया नहीं है या लिये मैं तोकु राजविद्या राजगुह्ययोग भक्ति समझा रह्यो हूं. असूया करवेको मतलब क्या? परमात्मासु असूया कैसे होवे है? परमात्मासु असूयाको मतलब ये के परमात्माके पास कुछ टेक्नीक् ऐसी हैं जैसे के मायाकी टेक्नीक् है, ज्ञानकी टेक्नीक् है. ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य आदिकी कई टेक्नीक् परमात्माके पास हैं जगत्‌के संचालनमें. उन टेक्नीकन्‌कु जानवेके लिये आदमी परमात्माकी भक्ति करे. जा बखत टेक्नीक् समझवेके बाद भगवान्‌के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री ज्ञान, वैराग्यकी, वो आजकल कई लोग भगवान् बन जायें. कोईकु पूछो कोई जमानामें एकह्नआध कोई भगवान् होते होंयगे. पर अब शहरह्नशहरमें लोग भगवान् बन जायें. एक भगवान्‌सु एकने पूछी ''महाराज तुम कहो हो 'हम भगवान् हैं' तो क्या ये सच्ची बात है? जगत् क्या तुमने बनायो है?'' तो उनने कही ''यहां आओ कानमें समझाऊंगो.'' वाने पूछी पास आके ''बताओ क्या बात है?'' तो उनने कही ''सच्ची बात है. मैंने ही बनायो है. पर बताईयो मत कोईकु. तू दूसरे कोईकु कहेगो तो मैं नट जाऊंगो''. या तरहके भगवान् भगवान्‌को लबादा पहने भये भगवान् हैं. अन्दर भगवान् नहीं है, बहारी लबादा थोड़ो थोड़ो ऐश्वर्य, थोड़ो थोड़ो यश, थोड़ी थोड़ी शोभा, थोड़ो ज्ञान. थोड़ोसो शास्त्रीय ज्ञान हासिल कर लियो, थोड़ोसो भगवा कपड़ा पहर लियो. वा थोड़ेसे वैराग्यसु, थोड़ेसे ऐश्वर्यसु, थोड़ीसी श्री, इन थोड़े थोड़े अंशन्‌के कारण जो भगवान् बन जाये, वाकु सच्चे भगवान्‌पे अनास्था होवे.

(भजनीयविनाशयोग)

एक ऐसे बहोत प्रसिद्ध प्रवचनकार भगवान्‌ने द्वादशाध्यायपे व्याख्या करी है. हमने सोची ''एक बार पढ़के देखें तो सही क्या है?'' हमने पढ़्यो तो उनने बहोत सुन्दर भक्तिकी व्याख्या करी. उनने समझायो ''देहको देहके प्रति आकर्षण काम है'' हमकु ये बात भा गई. बहोत सुन्दर बात कही. दूसरी एक और बात एक कदम आगे बढ़के उननें समझाई ''मनको मनके प्रति आकर्षण प्रेम है'' ये भी सुन्दर बात कही. जहां देहको कोई विचार नहीं है. एक मनको दूसरेके मनके प्रति आकर्षण हो रह्यो है, दो मनको जहां मेल है वो कहे हैं प्रेम है. बहोत सुन्दर बात है ये. तीसरी बात उननें कही ''आत्माको परमात्माके प्रति आकर्षण भक्ति है.'' हमने कही ''बड़ी उत्तम व्याख्या दी'' हमने कही और आगे पढ़ो, बड़ो रस जाग्यो. आगे पढ़यो तो वामें लिख्यो थो परमात्मा नामकी कोई चीज है ही नहीं. परमात्मा शून्य है. शून्यमें भक्ति करो तो वो भक्ति है. देखो ये असूया है. क्यों जागे ऐसी असूया परमात्माके प्रति? बात लफ्फाजीकी बड़ी भारी है. सुनें तो बड़ी रोचक लगे. एक देहको दूसरी देहके प्रति आकर्षण काम है. एक मनको दूसरे मनके प्रति आकर्षण प्रेम है. आत्माको परमात्माके प्रति आकर्षण भक्ति है. बात सुनवेमें बड़ी आकर्षक लगे. पर जब अपन् दो पन्ना आगे पढ़े तो पता चले के परमात्मा नामकी चीज ही नहीं है. परमात्मा तो तुम खुद हो. तुम्हारे अलावा परमात्मा नामकी कोई चीज है ही नहीं. तब मैंने कही ''जब खुद ही परमात्मा है तो आत्मा और परमात्माके स्नेहकी बात कहां रही? अपने आपमें स्नेह करनो भक्ति है. यों कहनो चइये'' वो यों कहे ''नहीं, परमात्मा अपने आपमें शून्यताकी जो अनुभूति है, मैं नहीं हुं. ये अनुभूति परमात्मा है'' मैंने कही भारी कौभाण्ड निकल्यो अन्दरसु. हमने वापे एक श्लोक लिख्यो :

भजनीयविनाशार्थं यतन्तं भक्तम् ईदृशम्।
दृष्ट्वा हि अपसरेद् ईशो भक्तिप्रस्तावगन्धतः।।

जैसे स्कूलमें एडमीशन्‌के लिये एप्लीकेशन् दियो जावे वैसे भगवान्‌कु एप्लीकेशन्‌में दें अपन् के ''महाराज भक्ति करनी है'' वो कहे ''भक्ति करवेको मतलब क्या?'' वाके जवाबमें कहें ''भजनीयविनाशनं भक्तिः'' क्योंकि वो प्रसिद्ध व्याख्याकार कहे जब तक भक्त और भगवान् या तरहके दो अस्तित्व कायम रहे, तब तक

भक्ति नहीं हो सके. भक्ति तब हो सके के जब भगवान् और भगवान् को प्रभेद यानि के खुदकु और भगवानकु भी जब तुम खत्म कर दो.

एक ज़ेनह्मसाधना है वामें ऐसे कह्यो जाय है ''किल बुद्ध इफ् बुद्ध डिस्टर्बस् यू इन् यौर् मेडिटेशन्'' मतलब बुद्धकी भक्ति करते बखत तुमकु यदि कहीं बुद्ध घड़ीह्मघड़ी दीखतो होये तो वाकु मार दो, वाकु खत्म कर दो. अब कई लोगनकु जंच गई बात. उनने कही ''किल् क्राईस्ट् इफ् क्राईस्ट् कम् अक्रोस् यौर् मेडिटेशन्'' कुछ लोग कहें ''किल् कृष्णा इफ् कृष्णा कम् अक्रोस् मेडिटेशन्''. अरे भई ये मरवेह्ममारवेकी कौंनसी भक्ति है? ये तो भजनीय-विनाशयोग हो गयो भक्तियोग नहीं रह्यो. भक्तियोग और भजनीयविनाशयोग में थोड़ोसो अन्तर है. भक्ति स्नेहको मार्ग है. भजनीयकु खत्म करवेको मार्ग नहीं है. वो लोग यों कहें के भजनीय तो जैसे स्वीमिंगपूलमें एक जम्पिंग् बोर्ड् जैसो होवे है. जब डाईव् लगानी होय तो स्वीमिंगपूलमें तो एक पाटियापे खड़े होके थोड़ी देर कूदें और फिर स्वीमिंगपूलमें डाईव् लगावें. वो कहें हैं ''भगवान् पाटियाके अलावा और कुछ नहीं हैं. कूदनो तो कुण्डमें है. पर थोड़ी देर पाटियापे जम्प् लगानी चइये, ऐसे थोड़ी देर भगवान्के नामपे जम्प् लगाओ और फिर कूद पड़ो शून्यतामें.'' तो ये भजनीय-विनाशयोग. भगवान्के माथेपेसे कूदवेको योग, ऐसो ये भक्तियोग कमसु कम गीताके अनुसार सच्चो भक्तियोग नहीं है.

आदमीकी अपनी अपनी परिभाषायें हैं. परिभाषामें अपन् विवाद नहीं करें. **जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत तिन देखी तैसी**... तुम प्रभुपे कूदनो चाह रहे हो. प्रभु तुमपे कूदनो चाहते होंयगे. वामें अपनेकु कोई आपत्ति नहीं है. अपने अपने सम्बन्ध हैं. अपने अपने भक्तिके प्रकार हैं. उन् भक्तिके प्रकारन्पे अपनेकु आपत्ति नहीं है. प्रश्न यहां ये है के भगवान् कौंनसी तरहकी भक्तिकु या कौंनसी तरहकी वृत्तिकु 'भक्तियोग' कह रहे हैं. याकु समझवेको प्रयास करनो चइये. भगवान् कोई जम्पिंग बोर्ड् नहीं है क्योंके तुमकु शून्यतामें कूदनो है. हमने कही ''शून्यतामें ध्यान कौंनको धरोगे?'' वो कहेंगे ''शून्यको'' हम पूछें ''शून्य क्या?'' वो कहेंगे ''कुछ नहीं''. हम पूछनो चाहें के ''तो फिर ध्यान धरनो ही क्यों?'' वो कह देंगे ''लेट् अस् चेन्ज् द् टोपिक्'' अरे भाई पहले बात ही ऐसी क्यों करनी के जो आगे चले नहीं. बात बदल दी उननें. चलो बात छोड़ो, दूसरी बात करो.

अब छोड़वेकी बात भक्ति नहीं है. भगवान् कहे हैं ''**उदारा सर्वएव एते ज्ञानी तु आत्मैव मे मतम् तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिः विशिष्यते.**'' यदि नित्ययोग तोकु नहीं है, यदि तू मेरो नित्य भजन नहीं करनो चाहे है, कोई कामनाकी पूर्तिके लिये, मेरेसु कोई टेक्नीक् हासिल करवेके लिये मेरो भजन करनो चाहे है, तो तू समझले के ये भजन नहीं हैं. ये कुछ और बात है. ये कुछ सौदेबाजी है. सौदेबाजीमें भगवान् कभी पीछे नहीं पड़ेगो निश्चित समझो. जाकु अर्थ चइये वाकु अर्थ देगो, जाकु काम चइये वाकु काम देगो, जाकु मोक्ष चइये वाकु मोक्ष देगो. भगवान् सब कुछ देवेंमें समर्थ है ''**फलमतः उपपत्तेः**'' (ब्र.सू.३।२।३८). प्रश्न भगवान्के देवेके सामर्थ्यको नहीं है. प्रश्न अपनी सच्चाईको है. अपन् भक्तिकु, भक्ति करवेके लिये चाहें है के धर्म अर्थ काम मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धि करवेके लिये चाहें है? वाके लिये भगवान् कह रहें है ''**चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो अर्जुन आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ**'' चार तरहके लोग मेरो भजन करे हैं.

(भगवान् क्या बहरा है?)

आर्त मने जो अपनी कामना पूर्तिके लिये भगवान्को भजन करे हैं. हमकु अभी थोड़े दिन पहले एक टेक्सीड्राईवर् मिल्यो. टेक्सीड्राईवरने हमसु कही ''पंडितजी क्या करो हो?'' अब हमने कही ''जब पंडितजी कह रह्यो है तो कबूल कर लो के पंडिताई करें'' वो बोल्यो ''कुंडलीह्मवुंडली जन्मपत्री देखते हौगे न'' हमने कही ''ये तो हमकु देखनी नहीं आवे'' तो बोल्यो ''फिर क्या करो हो पंडिताईमें?'' मैंने कही ''और कई काम हैं पंडिताईके. कोई जन्मपत्री देखनो ही एक काम थोड़े ही है'' मैंने पूछी ''तुमकु क्या काम है ये तो बताओ?'' तो बोल्यो ''हमकु ये पूछनो है के हमारो बाप भी तुम्हारे जैसो पंडित हतो. पर वाकी कोई पुन्याई हमारे काम नहीं आई'' हमने मनमें कही ''गनीमत है के हमारे कोई बेटा ही नहीं है''. वाने कही ''हमकु ये बात समझाओ, हमारे बापकी पंडिताईकी कोई पुन्याई हमारे कोई काम क्यों नहीं आई. हमारे तीन बहन ब्याहनी हैं. उनके ब्याहके लिये पैसा नहीं है. टेक्सी चलाऊं, दिन रात मजूरी करूं. पैसा मिले नहीं है. इतनो कमा नहीं पाउं हुं के बहनन्को ब्याह कर सकुं और बापने समझा रख्यो है, ये कर वो कर'' याके लिये न जाने रामायण आदि कौंनह्मकौंनसे ग्रन्थन्के कौंनह्मकौंनसे अध्यायन्को पाठ करतो थो वो मोकु अब याद नहीं रह्यो. हनुमानजीके यहां फल-फुल चढ़ातो

हतो. मुम्बादेवीके दर्शन करतो हतो नियमसु. मैं वाकी हां में हां मिलातो रह्यो के हां ये तो अच्छी बात है. तो बोल्यो ''ठीक है ये सब अच्छी बात है पर, भगवान् क्या बहरा है?'' मैंने कही ''शायद बहरा भी हो. भई क्या करे, सुन नहीं रह्यो है तुम्हारी बात''

मने थोड़ी देर अपन् भक्ति करें, भक्ति करें पर अपन्ने बहनके ब्याह करवेके लिये पैसा नहीं कमा सके, तो अपन् जाकी भक्ति करें तो वाकु ये कहें के क्या वो बहरा है? अरे जब बहरा होय तो वाकी भक्ति करो ही क्यों हो? मैंने वाकु कही ''भाई एक काम कियो करो. व्यर्थमें समय क्यों बरबाद करो हो? रामायणके इतने अध्यायन्को पाठ करनो, हनुमानजीके मन्दिरमें इतने चक्कर काटने, मुम्बादेवीके भी दर्शनके लिये जानो इनमें कितनो समय बरबाद हो जावे. उतनी देर टेक्सी और ज्यादा चला ले तो पैसा तो ज्यादा आयेगो. बहरे भगवान्की भक्ति तू करे है क्यों?'' भगवान् बहरो है के नहीं प्रश्न ये नहीं है. प्रश्न ये है के अपन् सच्चाईसुं भक्ति कर रहे है के नहीं? यदि सच्चाईसुं भक्ति करें तो भगवान् बहरो नहीं लगे. क्यों बहरो नहीं लगे? क्योंके अपन् भक्तिके लिये भक्ति कर रहे हैं. पर जब पैसामें थोड़ी भी कमी आवे, तो फिर साथ ही साथ भक्तिमें भी कमी आवे लग जाये. जाकी भक्ति अपन् करें वो अपनेकु बहरो लगवे लगे ऐसी भक्ति मत करो. भगवान् या लिये कहे हैं **''चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो अर्जुन आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ''**

यामें एक सावधानी बरतवेकी है. कुछ लोग बिना सोचे समझे निन्दा करवे लग जायें पर निन्दा करवेके पहले थोड़ी सावधानी बरतनी चइये. एक अर्थार्थी है. वामें कोइ निन्दनीय बात नहीं है क्योंके जो आदमी अर्थार्थिता खतम कर देगो, वामें भी कोई न कोई तरहकी अर्थार्थिता तो बनी ही रहेगी. जो आदमी कामार्थी है, वो सारे काम छोड़ देगो तो भी कोई न कोई तरहके काम तो वाके अन्दर बने रहेंगे. जो आदमी मोक्षार्थी है, वो मोक्षकी कामना छोड़ देगो तो भी कोई न कोई तरहसु मुक्तिकी कामना तो वाके अन्दर बनी ही रहेगी. कामना अपने अन्दरकी एक ऐसी वृत्ति है, जा वृत्तिपे जब तक अपनो नियन्त्रण नहीं आवे, तब तक आपने कुछ भी विषय बदल दिये वा वृत्तिके तो वासु कुछ फरक नहीं पड़ेगो. प्रश्न ये नहीं है के अर्थार्थिता बुरी है. प्रश्न ये नहीं है के भक्ति बुरी है. प्रश्न बुरे होवेको

कब आवे? जब अर्थार्थी अर्थकी पूर्तिके लिये, अर्थाजनके लिये भक्ति कर रह्यो है, गड़बड़ी तब आ रही है. जो कामार्थी है, वो कामपूर्तिके लिये भक्ति कर रह्यो है, तब गड़बड़ी आ रही है. मोक्षार्थी होवेमें कोई बुरी बात नहीं है. पर बुरी बात कब हो जाये जब आदमी भक्ति या लिये करे के मोकु मुक्त होनो है. वो मुक्त होवेके लिये करी जाती भक्ति, भक्ति नहीं है, वो तो सौदेबाजी है. भक्ति करी जाये मात्र भक्तिके लिये.

आपके घरमें समझो आपके कोई परिचित आवे और आके कहे के बहोत दिनसु मिल्यो नहीं सो आपसु मिलवे आयो हुं. बड़ी प्रसन्नता होय अपनेकु. थोड़ी देर बातचीत करके कहे ''आयो हूं तो जरा सौ रुपया उधार दे दो?'' एसी बात याने इतनी देर तक क्यों नहीं कही? इतने दिनसु मिल ही नहीं सके सो मिलने आयो और पांचह्नदस मिनट् जब बात आगे चली तो ''जरा सौ रुपया उधार दीजियो तो'' अरे मिलवे नहीं आयो थो दुष्ट पैसा मांगवे आयो थो. बस पैसा मांगवेके लिये इतनी बड़ी बड़ी भूमिका बांधे स्नेहकी. तो वो स्नेह नहीं है, वो तो उधार मांगवेको चक्कर है. भूमिका मत बांधो स्नेहकी. उधार चइये मांग लो, बुरी बात नहीं है. अर्थ या काम चइये, मांग लो बुरी बात नहीं है. मुक्ति चइये, मांग लो, बुरी बात नहीं है पर वाकी भूमिका भक्तिकी मत बांधो. भक्तिकी भूमिका आदमी जब बांधे है तब गड़बड़ हो जाये. भगवान् जो आज्ञा करें हैं **''उदारा सर्वएव एते ज्ञानी तु आत्मैव मे मतम्,''** वाको हेतु भगवान् कोई अर्थार्थीकी निन्दा नहीं कर रहें हैं. क्योंके अर्थार्थीकी निन्दा करते होते तो भगवान् अर्जुनकु ऐसे कैसे कहते **''तस्मात् त्वम् उत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्''** (गीता.११।३३). तेरे सामने समृद्ध राज्य है. शत्रूनकु मारके वाको तू उपभोग कर. अर्थार्थीकी यदि निन्दा होती तो राज्यभोगको आदेश भगवान् नहीं देते. कामार्थीकी यदि निन्दा होती, तो भगवान् ये नहीं कहते **''तस्मात् त्वम् उत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्''** कामकी यदि निन्दा करनी होती तो भगवान् अर्जुनकु क्या चढ़ जा बेटा सूलीपे खुदा भला करेगा, तो नहीं कह रहे हैं जब भगवान् अपनो एक आदेश अर्जुनकु दे रहे हैं, तो वाको हित करवे ही आदेश दे रहे हैं, पर जब भगवान् ये बात समझ रहे हैं, तब दो बात छुट्टी करके समझानो चाह रहे हैं.

जैसे आदमी अचार खावे केरीको, नींबुको, कोई बुरी बात नहीं है. आदमी खीर बासोंधी खावे, तो भी कोई बुरी बात नहीं है. पर खीरमें यदि अचार मिलाके खावे तो? तो कहनो पड़ेगो ''अरे भाई अचार खावेकी रीति दूसरी है. भुजैनाके साथ अचार खा, पूरीके साथ अचार खा, नमकीनके साथ अचार खा, बासोंधीमें अचार मिलाके खावे'' परोसवेवालेकु चिंता हो जाये के क्या करनो? ऐसे ही भगवान् कई तरहकी चीज स्वादिष्ट अपने सामने परोसें हैं. भगवान् कह रहे हैं के अलगह्नअलग स्वाद परोसे हैं मैंने तुम्हारी थालीमें, थोड़ी तहजीबसु तो खाओ. खावेकी कुछ तो डीसेन्सी होनी चइये. खाओ, खावेमें कोई हरकत नहीं है. जो चीज रुचे सो खाओ. कई तरहके स्वादिष्ट पकवान् तुम्हारे सामने धरे हैं. स्वादिष्ट पकवान् बनाके तुम्हारी साधनाकी थालीमें परोसे हैं. खावेमें कोई एक जातकी सुरुचि तो प्रकट होवे के नहीं आदमीकी? गौग्रासकी तरह सब मिलाके खावे आदमी घंटा भर मेहनत करे. समझो ढ़ोकला बनावे, पापड़ बनावे, मौनथाल बनावे, सबकु मींड मसलके खा जाये आदमी, तो चिंता हो जाये के घंटा भर मेहनत क्यों करी मैंने? मैंने तो इतनी तरतीबसु बनाई. पहलेही सु पंचामृत बनाके रख दियो होतो, भेले रख दियो होतो तो समय तो बरबाद नहीं होतो.

वैसे भगवान् कहें इतने इतने मार्ग, इतने इतने रूप, इतनी इतनी साधना पद्धतियें, अलग अलग आदमीके हृदयकु संतोष देवेके लिये, तुम्हारी अलग अलग स्वादकी वृत्तिन्कु संतोष देवेके लिये, ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग, शिव, विष्णु, राम, अल्लाह, भगवान् गोड्, खुदा न जाने कितने कितने रूप प्रभुने धारण किये, कितने कितने सम्प्रदाय प्रभुने चलाये पर आदमी माने ही नहीं. वो कहे ईश्वर अल्लाह तेरो नाम सबको सन्मति दे भगवान्. सबकु एकमेक करके खा जाये. अब वामें स्वाद क्या आयेगो? ये तो सोचो? सब बिगाड़ दियो. **पहले तो कुछ था भी सही अब और वीराना किया.** अरे कुछ तो हतो. एक एक स्वाद तो हतो. अरे सोचो कभी ध्यानसु. रामको ध्यान धरो. कितनो स्वाद है रामके स्वरूपमें, रामके चरित्रमें, रामकी लीलामें. कृष्णको ध्यान धरो, कृष्णके स्वरूपमें, कृष्णके नाममें, कृष्णके चरित्रमें एक अलग स्वाद है. शिवको ध्यान धरो. वाके नाममें वाके चरित्रमें एक अलग स्वाद है. खुदाको ध्यान धरो. वाके कुछ गुणधर्म, वाको एक स्वरूप, वामें एक अलग स्वाद है. यहोबाको ध्यान धरो. वामें एक अलग स्वाद है. रूप नाम गुणन्की एक अलग महिमा है. आदमी मानें ही नहीं, सबकु मिलाओ.

(सब सम्प्रदाय और सब धर्म के भेद मिथ्या)

एक आदमीने हमकुं कही ''महाराज सब सम्प्रदाय सब धर्मके भेद मिथ्या'' मैंने कही ''तो करनो क्या?'' बोल्यो ''सब एक हो जाओ'' मैंने कही ''तुम दुकान तो एक नहीं कर रहे हो अपनी? अपनी इंडस्ट्री तो एक नहीं करो'' बोल्यो ''इंडस्ट्रीके साथ धर्मकी तुलना मत करो'' मैंने कही ''तुमकु अपनी इंडस्ट्री अलग चलानी है. धर्म अलग चले तो तुमकु वामें आपत्ति है?'' असलमें आपत्ति या लिये है के आदमीकु कुछ करनो है नहीं, याके लिये सबकु एकमेक कर देनो चाहे. क्योंके अलग अलग रहे तो अलग अलग रुचिके अनुसार कुछ करवेको अवसर आयेगो. सब एकमेक कर दें तो कुछ करवे धरवेको रह नहीं जायेगो. गौग्रास जैसो खानो है तो पहले तो अपनी मांकु या अपनी पत्नीकु या बेटीकु सूचित करो के हम गौग्रास जैसो ही खायेंगे तो वो बिचारी घंटा भर रसोई बनाके अपनो समय तो बरबाद नहीं करे यासु भगवान्कु सूचित कर दो पहलेसु के हम सब धर्मन्को कबाड़ा खायेंगे. हमारेमें वो माद्दा नहीं है **''स्वाधर्माचरणं शक्त्या विधर्मात् च निवर्तनम्''** (भाग.पुरा.३।२८।२, त.दी.नि.२।२३८). अपने अपने धर्मकु निष्ठासु आचरण करनो, अपने अपने धर्मकु निष्ठासु पालन करनो. अपने अपने भजनीय रूपकी एकान्तभक्ति करनी. याको जब माद्दा आदमीमें नहीं होवे, तब ऐसी अगड़म बगड़म बात करे. क्योंके भजनीय-विनाशयोगको ही वो प्रवर्तित करनो चाहे है भक्तिके नामपे. ये सब कुछ शून्य है. वाके लिये सब खोटे हैं. अरे सब कुछ शून्य है वाके लिये सब खोटे नहीं हैं. आदमी ऐसे क्यों नहीं सोच सके, विधायक रूपसु, के जो कुछ है वो सब कुछ सच है. राम भी सत्य है. कृष्ण भी सत्य है. अल्लाह भी सत्य है. गोड् भी सत्य है और शून्य भी सत्य है. ये नहीं सोचे पर आदमी सोचे के सब कुछ गलत है. सब कुछ मिथ्या है. ये आदमीके मनकी खुराफात है हर चीजकु मिथ्या सोचवेकी. ये परमात्माकी सामर्थ्यके साथ अपरिचय है. परमात्मा सब कुछ है. वाके अन्तर्गत परमात्मा आपको कुछ भी हो सके है. आपकु जा रूपसु भक्ति करनी है, **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिः विशिष्यते''** एककु पकड़ो. एक पकड़ोगे तो तुम्हारी भक्ति होयगी.

अभी हमने छापामें एक कथा पढ़ी. एक शेख हतो वाके छप्पन बेगम हती. वो घूमवे गये तो वहां वाकु एक लड़की दीखी. वाने लड़कीकु कही ''हमारे छप्पन

तो बेगम हैं, अब यदि तुमकु रनिवासमें आनो होय तो तुम भी आ जाओ'' वाने कही ''मैं आ जाऊं पर तुम मेरे ताज्झी हो. मने दादा लगो'' इतनी बेगम घरमें रख लीं के घरकी छोकरीको ही पता नहीं चले. एक भक्ति होवेसु कमसु कम एक लाभ है के अपनेकु निश्चित तो होय के कौंनकी भक्ति करनी है. बहोत बेगम घरमें भर लो तो पता ही नहीं चले के कौंन भजनीय है, कौंन अभजनीय है. आवश्यकता है के एकभक्ति करो. पूजा सबकी हो सके है, आदर सबको हो सके है, पर भक्ति सबकी नहीं हो सके. क्योंके भक्तिके लिये पहली शर्त भगवान् ये कह रहे हैं **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिः विशिष्यते,''** भक्तिके लिये एक नित्ययोग होनो चइये. नित्ययोगको मतलब क्या? आज भक्ति कर रहे हैं और कल नहीं करेंगे. ऐसी बात नहीं. भक्ति कर रहे हैं सदाके लिये कर रहे हैं. सदा करते रहेंगे. भक्तिको भवन अपने हृदयमें अपन् सदाके लिये बनावें. याकु सदा बनाते रहनो पड़ेगो. ऐसे नहीं के आज बनायो और कल ढहा दियो. भक्तिको भवन ऐसो कच्चो बनाओगे तो काम नहीं चलेगो. भक्तिकु बहोत सुदृढ़ताकी आवश्यकता है. **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त''** नित्ययोग होनो चइये. जब तक नित्ययोग भक्तिको नहीं है, वो टेम्परारी भक्ति है.

(भक्ति डेटिंग् नहीं. भक्ति तो एक धर्म एक व्रत एक नेमा)

अपने यहां जैसे सगाई करें और शादी करें. ऐसे अमेरिकामें एक अलग पद्धति चले डेटिंग्की. डेटिंग्को मतलब क्या? लड़का लड़की दोनों छूटसु पिकनिक्पे फिरवे जावे. उनमें शादीह्नसगाईको कोई प्रश्न नहीं है. खूब खूब फिरवें जावें और उनकु सब कामकी छूट है. शादी सगाईको कोई प्रश्न नहीं है. याकु 'डेटिंग्' कह्यो जाय है. ऐसे जो आदमी भजन सबको करे वो भगवान्के रूपके साथ डेटिंग् करे. शादी सगाईकी कोई बात नहीं है. जब शादी सगाईकी कोई बात नहीं है तो वैसी डेटिंग् भगवान्के साथ भक्ति नहीं है, वो डेटिंग् हो सके है. तुमने आज इनकु डेट् कियो है. डेट् मने आजके दिन याके साथ. वाको मतलब डेटिंग्. जो करे वाकु डेटर् कहे हैं वहां. तो डेटर्स नित्य नयेह्ननये रूप खोज निकाले के आज याके साथ डेटिंग् है, कल वाके साथ डेटिंग् है. डायरीमें लिखे भये होवें, महीनाके तीस दिनकी डेटिंग्. करे क्या गरीबनकु बत्तीस दिन होते तो बत्तीस डेटिंग् करते पर महीनामें तीस ही डेट् होवें हैं उनके दुर्भाग्यसु. नित्य नई डेटिंग् करवेकी वृत्ति कुछ भी हो सके है. वाकी अच्छाई बुराईको प्रश्न नहीं है. प्रश्न सिर्फ इतनो है के नित्य नई

डेटिंग् भक्ति नहीं है. चाहे और कुछ हो सके है, वाकी अच्छाई बुराई कुछ भी हो सके है, पर भक्ति नहीं है **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिः विशिष्यते''** भक्ति भगवान्के कोई न कोई एक रूपके साथ विवाहित हो जावेकी प्रक्रिया है. जब तुम विवाहित हो जा रहे हो, तो वामें डेटिंग्को प्रश्न नहीं है. वो विवाहको प्रश्न है. वाके बाद **''एक धर्म, एक व्रत, एक नेमा, काय वचन मन पतिपदप्रेमा''** वा न्यायसु. प्रश्न यहां रूपको नहीं है, प्रश्न यहां है तुम्हारी भक्तिकी वृत्तिको. भक्ति कायकु कहें? **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिः विशिष्यते. प्रियो हि ज्ञानिनो अत्यर्थम् अहं स च मम प्रियः''** या तरहको ज्ञानी परमात्माके स्वरूपकु पहचाने है अच्छी तरहसु के परमात्माको स्वरूप मोकु कोई सौदाबाजीके रूपमें नहीं चइये. अर्थपुरुषार्थकी सिद्धिके लिये नहीं चइये. कामपुरुषार्थकी सिद्धिके लिये नहीं चइये. परमात्माके साथ डेटिंग्, मैं मोक्षप्राप्तिके लिये नहीं कर रह्यो हूं. परमात्माके रूपकी उपासना सिर्फ स्नेहके वश होके कर रह्यो हूं. स्नेहके लिये कर रह्यो हूं. स्नेहके वश भी नहीं पर विवश होके कर रह्यो हूं. ये जा बखत बात समझमें आवे, तब भक्तिको स्वरूप समझमें आयेगो.

पर जा बखत अपन् भजनीयविनाशयोग करेंगे, कहेंगे ''आत्मा और परमात्माके बीचको आकर्षण भक्ति है. परमात्मा माने क्या? वो कहें परमात्मा माने कुछ भी नहीं. परमात्मा माने तुम्हारे अन्दर रह्यो भयो शून्य'' वो तुम्हारे अन्दर रहे भये शून्यमें छलांग लगावेके लिये, कोई उपास्यके रूपकी कल्पना करो. वो रूपकी कल्पना कोई जम्पिंग् बोर्डकी तरह होयगी. या तरहकी धारणा भक्ति नहीं है. हमने वाको नाम धर्‌यो है भजनीयविनाशयोग. भजनीयकु खतम करवेको योग. हमने वो श्लोक कह्यो है **''भजनीयविनाशार्थं यतन्तं भक्तम् इदृशम् दृष्ट्वा हि अपसरेद् ईशः भक्तिप्रस्तावगन्धतः.** वामें एप्लीकेशन् दो भगवानकु, के भक्ति करनी है. वाकु देखके भगवान् आगे आगे भागेगो और पीछे कालयवनकी तरह तुम भागोगे. हम कहें ठहर ठहर भक्ति करनी है. भगवान् कहे के आज तो छोड़, कल भक्ति करियो. मैंने तेरो क्या बिगाड्यो के तू मोकु खतम करनो चाहे है मैंने तेरो कुछ बिगाड्यो नहीं. मैं तोकु खतम नहीं करनो चाहुं फिर भी तू मोकु क्यों खतम करनो चाहे? याके लिये पहली शर्त है **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिः विशिष्यते''** मने इष्टपूर्तिके लिये नहीं, कामपूर्तिके लिये नहीं, मुक्तिके लिये नहीं, भक्ति केवल भक्तिके लिये. भक्ति कोई तत्कालकी घूमवे फिरवेकी पिकनिक्की

वृत्ति नहीं है. भक्ति एक स्थायी वृत्ति है. एक रूपके बारेमें है, ये जब समझमें आवे तो भक्ति समझमें आयेगी.

(निर्गुणभक्तियोग)

वाके लिये अर्जुन पूछ रह्यो है **''एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते. ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः''** (गीता.१२।१). या तरहसु जो भक्त तुम्हारी उपासना करनो चाह रहे हैं और जो ज्ञानी मुक्ति प्राप्तिके लिये अव्यक्तकी उपासना करनो चाह रह्यो है, उनमेंसु योगवित्तम कौन है? ये समझाओ. ये बात ध्यानसुं समझो के भक्तिकी प्रशंसाके लिये अपन् जिज्ञासुकी निन्दा कर रहे हैं, पर जिज्ञासुकी निन्दा नहीं कर रहे हैं. जिज्ञासु जब जिज्ञासाकी पूर्तिके लिये भक्ति करनो चाह रह्यो है, वा बातकी निन्दा कर रहे हैं. जिज्ञासाकी निन्दा नहीं हो सके. अर्थार्थीकी वृत्तिकी निन्दा नहीं करें, अपन् कामार्थी वृत्तिकी निन्दा नहीं करें, तो जिज्ञासाकी निन्दा कैसे हो सके? पर जब जानवेके लिये भगवान्कु भज रह्यो है, तो सचमुचमें भज नहीं रह्यो है. भगवान्कु जाननो चाह रह्यो है. अगर जाननो चाह रह्यो है तो अच्छी तरहसु जान ले. खोटी भक्तिकी भूमिकायें मत बांध. ये भगवान् वाकु समझा रहे हैं. **''आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ''** भक्ति कर रह्यो है याकी निन्दा नहीं होयगी, निन्दा जिज्ञासुकी भी नहीं हो सके है. निन्दा अगर कुछ है तो याकी के रबड़ीके साथ तुमने अचार क्यों मिलायो? अचारकी निन्दा नहीं है, रबड़ीकी निन्दा नहीं है. रबड़ीकु रबड़ीकी तरह खाओ, अचारकु अचारकी तरह खाओ. यदि तुम रबड़ीमें अचार मिलाके खा रहे हो, रबड़ीमें तुमने लालमिर्चको बूका मिला दियो, तो स्वाद क्या आयेगो? तुम्हारे खावेकी सुरुचिपे प्रश्न उठ रह्यो है. स्वादकी निन्दा नहीं है पर जा तरहसु सुरुचिसु तुम स्वाद ले रहे हो, वाकी निन्दा है. ये दो बात स्पष्टतया समझनी. जिज्ञासु ब्रह्मकु जानवेकी इच्छा रखे है. ब्रह्मकु जानके वो मुक्त हो जाये, वामें जरा भी लेशमात्र बुरी बात नहीं है, अच्छी बात है. मुक्त होनो अच्छी बात है पर मुक्त होवेके लिये ज्ञानसाधना करनी चइये, भक्तिके बहाना नहीं करने चइये. भगवान् वाकु कहे हैं के भक्ति कर रह्यो है वो ठीक है, जिज्ञासुता भी ठीक है, ''उदारा ये सर्वे एते'' उदार हो तुम के जिज्ञासुताके लिये भक्ति कर रहे हो. नहीं करते तो क्या बिगड़ जातो तुम्हारो? उदार हो तुम पर **''ज्ञानी तु आत्मैव मे मतम्''** याई लिये महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य कहे हैं **''ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं तस्मात् नास्ति अधिकः परः''** ज्ञानी यदि

भगवद्भजनमें प्रवृत्त होवे, तो वासु अधिक बड़ी बात और कोई नहीं है. क्योंके ज्ञानी या बातकु समझ गयो के अर्थपुरुषार्थके लिये नहीं भज रह्यो हूं, काम पुरुषार्थके लिये नहीं भज रह्यो हूं, मुक्तिके लिये नहीं भज रह्यो हूं. भजन मोकु यदि करनो है तो परमात्माके भजनके लिये. परमात्माके भजनीय स्वरूपमें कुछ एक ऐसी बात है, कुछ एक ऐसो आकर्षण है के जा आकर्षणके लिये भगवान्कु भज रह्यो हूं. अपनी कोई भी कामनाके लिये मैं भगवान्को नहीं भज रह्यो हूं. या तरहसु जा बखत आदमी समझे तो सच्ची भक्ति कहावे. नहीं तो भक्ति नहीं कहवावे. ये भक्तिकी पहली शर्त है.

याके लिये अर्जुन पूछ रह्यो है **''एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः''** (गीता.१२।१). यहां भी देखो **सततयुक्ता** ये. ये बात मैंने क्यों समझाई **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिः विशिष्यते''** सततयुक्तताकी व्याख्याके लिये मैंने समझाई थी. अर्जुन पूछ रह्यो है **सततयुक्त** मने आज भक्ति कर रहें हैं और कल छोड़ देंगे, ऐसी बात नहीं है पर सततयुक्त है. सतत तुम्हारो ध्यान है और सतत ध्यान रखनो चाह रहे हैं. सतत भक्ति करनी है तो भक्त है. यदि सतत भक्ति नहीं करनी है, टेम्पररी भक्ति करनी है, ओफिस्में अपन् जावें, क्लर्ककु अपन् कहें ''तु माई बाप है, तु ईश्वर है, तु तो महान् अच्छो आदमी है'' पर वो काम निकालवेकी भक्ति है. वो कोई भक्ति नहीं है. वो भी जाने है और कहे ''ठीक है, प्रशंसा कर रहे हो पर पेपरवेट् कुछ धर्‍यो है के नहीं?'' पेपरवेट् धरनो और जो प्रशंसा वाकी करनी काम निकालवेके लिये, यामें एक सौदाबाजी रही भई है. वो सौदाबाजी अच्छी तरहसु परमात्मा आपके साथ करेगो. जो चीज तुमकु चहती होय वो देवेकु तैयार है. जो चीज आप दे रहे हो वो लेवेकु तैयार है. परमात्माके यहां, गालिबने एक बहोत सुन्दर बात कही, **''अलावा ईदके मिलती है और दिन भी शराब गदाए कूचए मयखाना नामुराद नहीं''** यदि आप परमात्माके भिक्षुक, यदि आप वाके याचक बनके बैठो आप कभी निराश नहीं होओगे. जो भी मांग रहे हो वो मिलेगो. प्रश्न ये है के आप भक्ति सततयुक्त होके कर रहे हो के नहीं? सततयुक्त कर रहे हो तो भक्ति है. पर कोई बखतके लिये कर रहे हो, कोई कारणसु कर रहे हो तो वह भक्ति, भक्ति नहीं है. **''मनोगतिः अविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसो अम्बुधौ लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य उदाहृतम्''** (भाग.पुरा.३।२९।११). जैसे गंगाकी अनवरत गति सागरकी

तरफ बहती रहे, ऐसे मनभी अनवरत जा बखत परमात्माकी तरफ बहे तो वाकु निर्गुण भक्तियोग कहें. जा बखत कोई कामना रखके अर्थपुरुषार्थकी कामना, चाहे मोक्षपुरुषार्थकी कामना, चाहे कामपुरुषार्थकी कामना रखके, जा बखत अपन् भक्ति करे हैं, वो भक्ति 'सगुणभक्ति' कहवावे 'निर्गुणभक्ति' नहीं. क्योंके अपने हृदयमें रहे भये सात्विक राजस तामस गुणन्के साथ मिश्रित भई वो भक्ति है. वामें शुद्ध निर्गुण भक्ति नहीं है. निर्गुणभक्तिको मतलब कुछ लोग समझें के निराकारकी भक्ति. पर निराकारकी भक्ति हो ही नहीं सके है. निराकारको ज्ञान होवे. निराकारकी भक्ति नहीं होवे. भक्ति अपने आपमें साकारकी ही होवे है. निर्गुणभक्ति जा बखत कह्यो जाय है, और जो निर्गुणभक्ति हिन्दी साहित्यवाले सब स्वीकारें वो बात दूसरी है. पर प्राचीन शास्त्रीय अर्थ निर्गुणभक्तिको ये है **''मनोगतिः अविच्छिन्ना... लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य उदाहृतः''** है. अपने हृदयमें रहे भये जो मोक्षकामनाके सात्विक भाव हैं, या अर्थ या विषयसुख की कामनान्के जो राजस तामस भाव हैं, उन सात्विक राजस तामस भावन्के साथ जा बखत भगवान्के स्नेहकु मिश्रित करो तो वो सगुणभक्ति हैं. ये सगुण और निर्गुण भक्तिको एक भेद है. गंगा सागरकी तरफ बहे है तो कोई हेतुसु नहीं बहे है. अपनी मस्तीसु बहे है. **''मनोगतिः अविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसो अम्बुधौ लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य उदाहृतः''** या न्यायसु जो अवछिन्न गति. आज बहे, कल नहीं बहे, वो बात नहीं, कोई हेतुसु बहे ये बात नहीं. निर्हेतुक अविच्छिन्न सतत **''एवं सतत युक्ता ये भक्ता त्वां पर्युपासते ये चापि अक्षरम् अव्यक्तम्''** और जो तेरी अक्षरब्रह्मकी तरह उपासना करे हैं, उनमेंसु हमकु ये समझाओ, अर्जुन ये पूछ रह्यो है, **''तेषां के योगवित्तमाः''**. तुमने जो ज्ञानयोगकी बात बताई, तुमने जो भक्तियोगकी बात बताई, अर्जुन पूछ रह्यो है, ये अब हमकु बताओ के ज्ञानयोगी और भक्तियोगी मेंसु प्रभु आपकु उत्तम कौंन लग रह्यो है?

तीसरे दिनको प्रवचन

(उपनिषदन्में लगते विरोधाभासको निराकरण गीतासु)

कलके प्रसंगमें अपन्ने **सततयुक्तकु** समझवेको प्रयास कियो. यहां देखो अर्जुन केवल **सततयुक्ता** नहीं कह रह्यो है. **एवम्** माने या तरहसु. कौंन तरहसु? ये बारहवों अध्याय है. बारहवें अध्यायसु पहले, सातवें अध्यायसु शुरु करके बारहवें अध्याय तक भक्तिको प्रकरण कह्यो गयो है. या भक्तिके प्रकरणके साथह्नसाथ, कई बातन्के खुलासा भगवान्ने किये. तो ऐसे-ऐसे प्रश्न अर्जुनने भगवान्सु किये हैं. यदि ये प्रश्न नहीं भये होते, तो उपनिषद् सब पढ़ें है और उपनिषदन्में सब बातें हैं. उपनिषदन्में बत्तीस विद्यायें है. उन् विद्यान्में जो कछु समझायो गयो है वाको सार समझमें नहीं आवे. चक्कर यहां पड़ गयो है. आजके नये विचारक लोग उपनिषद्कु जब हाथमें लेके देखें हैं और जो बत्तीस विद्यायें उपनिषदन्में बताई गई हैं, उनको आपसमें जो विरोधाभास देखें हैं. मैं सावधानीसु शब्दप्रयोग कर रह्यो हूं 'विरोधाभास', मूलमें उनमें कोई विरोध नहीं है. विरोधको आभास अपनेकु होवे है के ये विद्या और ये विद्या आपसमें विरुद्ध हैं. या विद्यामें और दूसरी विद्यामें परस्पर विरोध है. उन विरोधाभासन्कु देखके उनकी अक्कल चकरा जाये और वो कहें के ये अलगह्नअलग कालमें और अलगह्नअलग वेदन्में जाकु जैसे जची वैसे वाने कह दियो है. उपनिषदन्में केवल एक सिद्धान्त खोजनो, इन आलोचकन्के अनुसार, एक गलती है. क्योंके जाके मुंहमें जैसी बात आई वाने वैसी कह दी. वेदोपनिषद्ने याई लिये बहोत सुन्दर खुलासा दियो **''अजायमानो बहुधा विजायते''** (तैत्ति.आर.३।१३।२।२१) जो परमात्मा अज है, वो ही बहोत प्रकारसु प्रकट होवे है : **''बहुधा विजायते''**. इतनी तरहसु के आदमीकी अक्कल चकरा जाये.

मैं अपने बचपनकी बात बताऊं. हमारे फुफेरे भाईने स्कूल जानो शुरु कियो और वो स्कूलसु आयो तब वाने मोकु एक नयी बात बताई के पृथ्वी गोल है. वाने एक ग्लोब् लेके बतायो ''देख ये अपनी बम्बई है, ये अपनो हिन्दुस्तान है''. अब हमने देख्यो के हिन्दुस्तानके नीचे अमरीका आयो. तो मैंने कही ''हम हिन्दुस्तानमें अगर ऐसे खड़े होंय तो अमरीकामें तो लोग ऐसे चलते होंयगे जैसे छतपे छिपकली चले है?'' अब वो मोकु समझाये ''पृथ्वी गोल है पर अमरीकामें भी लोग ऐसे चले हैं जैसे हम यहां चले हैं.'' मैंने कही ''जब हम ऐसे खड़े हैं तो अमरीकामें

उलटे ही लटकते होंयगें न?'' अब वो बहोत समझावे पर मैं कहुं के जब हम यहां सीधे खड़ें है तो अमरीका हिन्दुस्तानके नीचे है तो वहां तो उलटे ही लटकते होंगे. वा समय मोकु अमरीका जावेकी बड़ी तीव्र इच्छा हती के वहां जाके देखुं के लोग वहां कैसे चले हैं, उलटे होके सिरके बल? बड़ो आनन्द हो जायेगो ऐसो दृश्य देखके. अब हमने ये नहीं सोची के हम वहां जाके कैसे खड़े होंयगे? बस जब हिन्दुस्तानमें पैरके बल खड़े होंवे तो अमरीकामें सब सिरके बल जैसे छिपकली छतपे चले वैसे चलते होंयगे, पर इतनो होवेके उपरान्त भी वा समय या समस्याको समाधान नहीं भयो. ऐसे हमने अपने दीमागमें वहांके खाका बनाये के वहां लोग कैसे उलटे छिपकलीकी तरह चलते होंयगे. ऐसे ही हर आदमी अपने दीमागमें खाका बनावे और वहां जाके देखे नहीं के वहांकी क्या हकीकत है सोचे तो समझमें आ जाये के वहां भी आदमी सीधे पैरके बल चल रहे हैं जैसे हम चल रहें हैं. अब अमरीकामें होते तो हमकु हिन्दुस्तानके आदमी उलटे लटके भये लगते. या तरहसु अपने भीतर चक्कर पड़ जाये सोचवेमें. ये चक्कर या लिये पड़े के दूसरो कोई खाका अपनेकु समझमें ही नहीं आवें.

(महाप्रभुको स्थायी भाव)

भगवान् गीतामें आरंभसु यही समझाते आये हैं, जो उपनिषदनमें है. पर अपन् तो अपने मनमें घड़े खाकामें ही समझनो चाहें और कहें के ये बात सच है और ये बात खोटी है. महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनको सबसु ज्यादा रोचक ये पक्ष मोकु लगे है. अब क्योंके मैं हिन्दुस्तानमें पैदा भयो हूं तो मोकु तो यों ही लगे है और महाप्रभुके वंशमें हूं यासु बुद्धि भी ऐसी ही हो गई है **''बुद्धिप्रेरककृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''** (त.दी.नि.३।५।१). तो जा तरहसु मेरी बुद्धि चले है और जो बात मोकु सबसु ज्यादा रोचक लगे है वो शुद्धाद्वैत दर्शनकी एक बात ये है के शुद्धाद्वैतवादकी जा बखत व्याख्या उननें प्रस्तुत करी वा बखत महाप्रभु यों नहीं कहें है के सारे को सारे ब्रह्मकी परिपूर्ण व्याख्या शुद्धाद्वैतवाकी चौखटमें हो जाये है. महाप्रभु निरन्तर यों कहें **''सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तद्''** (त.दी.नि.१।७०). जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के बारेमें जोह्मजो वाद चल पड़े हैं, एकह्मएक वादकु अपन् ब्रह्मकी परम परिच्छित्ति मानें तो महाप्रभु कहें है के अपन् ब्रह्मके साथ अपनो मदह्ममात्सर्य प्रकट कर रहे हैं. कोई वाद ऐसो नहीं है के जा वादमें ब्रह्मकु पूरेको पूरो फिट् कियो जा सके, कोई वाद ऐसो नहीं है

जो ब्रह्मकु नापवेके लिये समर्थ बन पातो होय या लिये ब्रह्म सर्ववादानवसरम् है. अब ये बात दूसरी है के कोई वाद ब्रह्मकु फूटके नापसु मापनो चाहे तो, कुछ इंचसु नापे, कुछ हाथ, गज या मीटर सु नापे हर वाद ब्रह्मकु ही नापवेके लिये बन्यो है. जब भी कोई वादसु नापोगे तो ब्रह्म ही नाप्यो जायगो. दूसरी कोई भी वस्तु नापी नहीं जा सके है. कोई भी वाद है तो वो नाप तो रह्यो है ब्रह्मकु ही यासु वो **नानावादानुरोधि** है. **सर्ववादानवसर** मने सर्ववादसु ब्रह्म अनवसर है. मने पूरो नाप्यो नहीं जा सके है. और **नानावादानुरोधि** मने जितने वाद हैं उन सभी वादनके अनुरोधी वाके अनन्त रूप हैं. मने नापनो है तो वो ही नपेगो, दूसरी कोई वस्तु नापी नहीं जा सके है. चाहे वाकु 'साकार' कहो अथवा 'निराकार' कह दो, चाहे वाकु 'सर्वाकार' कह दो. कोई भी वाद ब्रह्मके कोई न कोई पहलुकु ही नाप रह्यो है. 'निराकार' कहे रहे हो तो वासु ब्रह्मको एक पहलु नाप्यो जा रह्यो है. साकार ले रहे हो तो वो ही ब्रह्म नाप्यो जा रह्यो है. सर्वाकार ले रहे हो तो भी वा ही ब्रह्मको कोई पहलु नाप्यो जा सके है. महाप्रभु तो वहां तक हिम्मत करके कह देवें हैं के शून्यवाद मानते हो तो वामें भी ब्रह्मके ही कोई न कोई पहलुकु नाप्यो जा सके है. क्योंके **''ब्रह्म शून्यवद् भवति''** ऐसो कहे हैं. पर शून्य ब्रह्म नहीं हो सके है, क्योंके ब्रह्म **''सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तद्, अनन्तमूर्ति ब्रह्म''** है. वाकु नाप्यो नहीं जा सके है पर हर वादसु वो ही नाप्यो जा रह्यो है ये बात महाप्रभुकी मोकु बड़ी अच्छी लगे है. शुद्धाद्वैतकी कोई भी बारीकी महाप्रभु घड़े हैं, या निरूपण करें हैं वामें महाप्रभुको ये भाव एक स्थायी भाव है.

स्थायी भाव क्यों कहे हैं? जैसे समझ लो अपन् कहानी पढ़ रहे हैं. वो प्रेमकी कहानी है. तो जरूरी नहीं है के वामें झगड़ा नहीं होयगो. प्रेमकी कहानीमें भी झगड़ा तो हो सके है पर प्रेमकी कहानीमें प्रेम स्थायी भाव है. प्रेमके अन्तर्गत द्वेषको वर्णन आयेगो. प्रेमके अन्तर्गत कलहको वर्णन आयेगो. अगर कलहकी कहानी है तो वामें भी कोई प्रेमकी बात आ सके है पर आयेगी वो कलहके अन्तर्गत ही. एक स्थायी भाव होवे है और वा स्थायी भावके अन्तर्गत बहोतसे संचारी भाव होवें हैं. ऐसे महाप्रभुको स्थायी भाव है **''सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तद्''** (त.दी.नि.१।७०), **''अनन्तमूर्ति तद् ब्रह्म हि अविभक्तं विभक्तिमत्''** (त.दी.नि.१।२६). वो अनन्तमूर्ति है, वो बांट्यो नहीं जा सके है पर वो निरन्तर

बट भी रह्यो है. अपन् अपनी सामर्थ्यसु बांटके देखनो चाहें, पर बंटतो भयो दिखाई नहीं दे है. क्योंके वाके अलावा और कोई बात है ही नहीं. ये महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनको स्थायी भाव है. बाकी सारे सिद्धान्त, सारी बारीकियें या भावके संचारी भाव तरीके हैं. दर्शनके नामपे महाप्रभुको कोई प्रमुख तात्पर्य है तो इतनो ही. या बातके आधारपे अपन् देखें तो जगत् ब्रह्ममेंसु कैसे पैदा भयो? बड़ेह्नबड़े वाद चले. ब्रह्म निराकार है, निर्गुण है, वामेंसु साकार जगत् कैसे पैदा हो सके है? पैदा हो ही नहीं सके है. या लिये मायाकु उपस्थित करो. महाप्रभु कहे हैं अच्छी बात है **''सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तद्''** ब्रह्मकी ही माया भी कोई खुराफात हो सके है. ब्रह्मके नानावादानुरोधि होवेके कारण मायाकी कोई खुराफात जरूर हो सके है पर वो माया भी होयगी तो ब्रह्मकी ही कोई शक्ति, ब्रह्मको ही एक पहलु है. माया कोई बाहरसु आवेवालो पदार्थ नहीं है. यदि माया है तो ब्रह्मकी हो सके है. क्योंके उपनिषद्में ऐसे कह्यो है **''इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते''** (बृह.उप.२।५।१९). वो परमात्मा मायासु ही अनेक रूप धारण करे है. ठीक है. अपनेकु समझमें नहीं आतो होयतो ब्रह्म अपनेकु निराकार निर्गुण नीरूप लगेगो क्योंके ऐसे ब्रह्मसु साकार जगत् कैसे पैदा हो सके बिना मायाकु बीचमें लाये? माया लानी पड़ेगी बीचमें. माया नहीं लायेंगे तो बात समझमें नहीं आयेगी. महाप्रभु कहें हैं ''चलो ठीक है. अपन् मान लें **सर्ववादानवसर नानावादानुरोधि** ब्रह्मकु पूरोह्नपूरो माप्यो नहीं जा सके ये वाकी माया है. माया एक पहलु है ब्रह्मको. ऐसे तो ब्रह्ममें अनन्त पहलु हैं **अनन्तमूर्ति तद् ब्रह्म** अनन्तमूर्ति ब्रह्मकी एक मूर्ति माया भी है और एक मूर्ति मायाकी होवेके कारण वो ब्रह्म मायासु अनेक रूप धारण कर सके है'' ये महाप्रभुको खुलासा है. क्योंके माया भी अन्तमें तो बाहरसु आई भई नहीं है.

(‘माया’ नहीं ‘लीला’ कहो)

देखो बड़ी साधारण बात बताऊं आपकु. भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य मायावाद माने हैं. महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यको वाके बजाय दूसरो शब्द है **‘लीलावाद’**. वो कहें जगत् मायासु पैदा भयो होय तोभी लीलाके रूपमें ही जगत् पैदा भयो है. अन्तर दोनोंमें क्या पड़्यो? अन्तर एक ही है. जो बात समझमें नहीं आवे वाकु ‘माया’ कह दी जाये. अपनकु कोई बात समझमें नहीं आवे तो अपन् क्या कहें ''अरे भाई बड़ी भारी माया है'', समझमें नहीं आवे. ऐसे ही जो बात समझमें नहीं आवे वाईकु

अपन् ‘लीला’ भी कहें हैं. बात वोईकी वोई है. नहीं समझमें आई तो अपन् वाकु ‘माया’ भी कहें और ‘लीला’ भी कहें. लीला कहवेमें अपनेकु मजा आवे है. माया कहवेमें अपनी ग्लानि प्रकट होवे. ग्लानिके रूपमें कहनो है तो ‘माया’ कह्यो जायेगो और प्रसन्नताके रूपमें कहनो है तो ‘लीला’ कह्यो जायेगो. जैसे अपन् अपने पिताकी पत्नीकु ‘बापकी औरत’ कहें तो? अरे पर ‘मां’ क्यों नहीं कहो? पर ‘बापकी औरत’ कहवेमें क्या गड़बड़ी है? गड़बड़ी तो कुछ भी नहीं है. बापकी औरत है तभी तो मां भई नहीं तो मां कहांसु होती? पर एक विनय है के बापकी औरतकु ‘मां’ कहनो. प्रसन्नता है तो ‘मां’ कहेगो और गुस्सा आ गयो तो ‘बापकी औरत’ कहेगो. अक्सर ऐसो ही होवे है. बाकी कोई भी गड़बड़ी नहीं है. पर जब जगत्कु ‘माया’ कहो हो तो वो मांकु बापकी औरत कहो हो. अथवा यों सोचो के जैसे दूसरो बच्चा आयो और वाके पास कोई एक खिलौना है अब अपनो बच्चा जिद करे के मोकु वो खिलौना चइये और वो दूसरो बच्चा खिलौना दे नहीं. तो अपने बच्चाकु कैसे समझानो पड़ेगो? ''अरे वो तो गन्दो है, वो अपन् नहीं लेवें. तेरे लिये तो अच्छो खिलोना लायेंगे'' अब ये वा दूसरे खिलौनाकी खराबी नहीं है पर अपने बच्चाको मन वामेंसु हटावेके लिये वाकु ‘गन्दो’ कह्यो जा रह्यो है. अब अपने बच्चाकु ये कैसे समझानो के तू दूसरेको खिलौना काहेकु लेनो चाहे है? वाके लिये अपन् दूसरेके बच्चाके खिलौनेकु ‘गन्दो’ कहे हैं. तो बच्चाकु समझमें आ जावे और बच्चा वा दूसरे खिलौनाकी जिद छोड़ दे. ऐसे ही जीव जगत्के विषयन्में आसक्त है. वासु संसार छुड़वानो है तो अपन् कहें हैं के वो ‘माया’ है, गन्दो है, छोड़ दे, फैंक दे. तो वाकु समझमें आ जाये तो छोड़ देगो. ‘माया’ कहेवेमें तात्पर्य विषयन्में आसक्ति छुड़वावेके लिये है, जगत्की निन्दा करवेमें नहीं है. तुमने विषयन्में अपनी आसक्ति इतनी बढ़ा ली है के यदि तुमकु ये समझा दियो जाय के ये विषय साक्षात् ब्रह्मरूप है तो तुम विषयकु पकड़के बैठ जाओगे. याके लिये महाप्रभु कहे हैं के ब्रह्मकु जगद्रूप जाननो चइये पर जगत्में आसक्ति नहीं करनी चइये. आसक्तितो ब्रह्ममें ही करनी है. ब्रह्म तरीके जगत्कु जानो पर आसक्ति करनी ब्रह्ममें. **''ब्रह्मरूपं जगद् ज्ञातव्यं ब्रह्म जगतो व्यतिरिच्यतइति न तत्र आसक्तिः कर्तव्या''** (सुबो.२।९।३५). ब्रह्म जगत्सु ज्यादा है. आसक्ति करनी है तो ब्रह्ममें करो. पर जगत्कु जाननो तो है ब्रह्मके रूपमें ही. क्यों?

(परमात्मा एक कलाकार है और जगत् वाकी कला है)

एक सामान्य बात बताऊं. समझो कोई बहोत अच्छो कलाकार है. बहोत सुन्दर गा रह्यो है. अब आप वाकु कैसे छुट्टो पाड़ोगे? अब कोई कहे के मैं कलाकारकुं तो पसन्द करु ही हूं पर कलाकुं नहीं. अब ऐसे कैसे हो सके? यदि तुमकु गाना पसन्द आ रह्यो है तो गायक कलाकार भी पसन्द आ रह्यो है. अब गानो क्या है? वो ही तो गायककी खासियत है. अब कोई आदमी कहे के हम कलाकारकु तो पसन्द करें पर कलाकु पसन्द नहीं करें. ऐसे ही कोई दूसरो आदमी कहे के हम कलाकु तो पसन्द करें पर कलाकारकु पसन्द नहीं करें. अब ये बात बनेगी कैसे? क्योंके कला और कलाकार एक ही सिक्काके दो पहलु हैं. मने कला और कलाकारमें भेद कियो नहीं जा सके है. ब्रह्मके दो रूप हैं : एक मर्त्यरूप है दूसरो अमर्त्यरूप है. एक स्थिररूप है दूसरो गतिशीलरूप है. आखिर ब्रह्मके ही दोनों रूप हैं चाहे वो कोई भी रूपमें होय.

ऐसे ही जगत् परमात्माकी एक कला है. परमात्मा जगत् सृष्टिको कलाकार है. या तरह हम जगत् और जगदीश में भेद नहीं करेंगे. जगत् और जगदीश एक सिक्काके दो पहलु हैं. एक जगह जगदीश दिखलाई दे रह्यो है. दूसरी जगह जगत् दिखलाई दे रह्यो है. दो पहलु हैं. कोई भी आदमी सरल काम करवेकु तैयार नहीं होवे है. कठिनसु कठिन काम करवे जाये पर सहज काम नहीं करे.

कोई महाराजके चरणस्पर्श करवेकी सूचना वैष्णवनकु दी गई. अब चरणस्पर्श करवेकु जो भीड़ उमड़ी तो धक्कामुक्कीमें महाराज कुआके किनारापे बैठे हते सो वामेंमें गिर गये. अब भीड़ने कही ''अरे रे रे कुआको जल गुरुचरणामृत हो गयो. चरणामृत लो'' अब महाराज हल्ला मचावें के ''अरे कोई मोकु काढ़ो तो सही'' लोग कहें ''चरणामृत लेवे दो पहले'' आदमीसु सहज बात नहीं होवे पर असहज सारी बातें करे. तुम चरणामृतकी बात कर रहे हो पर महाराज तो मर जायेगो. उनकु महाराजके चरणामृतकी चिन्ता है पर महाराज मर रह्यो है वाकी चिन्ता नहीं है. आदमी असहज सारी बातें करवे तैयार होवे पर एक सहज बात नहीं करे.

(सारे नाम–रूपह्नकर्म वाने धारण किये हैं)

दरअसल जगत् और जगदीश में कोई मौलिक भेद नहीं है. एक ही सिक्काके दो पहलू हैं. वाकु कहें हैं के जगतकु तू ब्रह्मके रूपमें जान. जगदीशको ही रूप जान. अब कोइकु ये रहस्य बतायो नहीं के वो जगदीशकु याद ही नहीं करेगो.

वाकु कहे हैं के जगदीशकु याद कर तो जगत्कु घृणासु देखवे लगेगो. महाप्रभु कहे हैं आदमी अन्तरसु खुराफाती है. एक बखत वाकु रहस्य बता दो तो ऐसेह्नऐसे काम करवेके अतिवादपे चल्यो जाय के एक ही कर्मके कारण सारे जगत्को ही नाश हो जाये. ऐसे ही बैठेह्नबैठे खुराफातकी मनमें आ जाये तो फोड़ एटम् बम्, सारो जगत् जला दे. आवश्यकता क्या है के जगत् और जगदीश के बीच अभेद माननो चइये. पर अभेद मानके भी भक्तिभावपूर्वक चाहनो तो जगदीशकु ही. तभी बेलेन्स् निभेगो. बुद्धिसुं या बातकु समझो के जगत् और जगदीश एक हैं. जगत् और जगदीश एक हैं तो समझो के जगदीशकी चाहना हृदयमें पैदा करो. जगदीशकु भूल मत जाओ. जगत्में इतने रच पच मत जाओ के जगदीशकु ही भूल जाओ. जगदीशमें भी या तरहसु ना लग जाओ के जगत्को ही नाश कर दो. जगत्की एक अलग खूबसूरती है. जब दोनोंकु अनुपातमें देखोगे तो मजा आयेगी. जब अनुपातमें नहीं देख सकें तो बातकी मजा बिगड़ जावेगी.

ये बात समझावेके लिये महाप्रभु कहे हैं **''ब्रह्मरूपं जगद् ज्ञातव्यं ब्रह्म जगतो व्यतिरिच्यतेइति न तत्र आसक्तिः कर्तव्या''**. या रहस्यके अनुसार महाप्रभु तो यहां तक कहें हैं के यदि तुमकु लग रह्यो है के ब्रह्म निराकार है, निर्धर्मक है, निर्गुण है और मायाके बिना जगत् पैदा नहीं हो सके है तो कोई बुरी बात नहीं है. ठीक है मायासु जगत् पैदा होवे है पर मायाके सिद्धान्तोपदेशको अधिकारी कौंन है ये तो बताओ वा व्यक्तिपे जो जिद पकड़के बैठ्यो है के जगत्कु ही पकडूंगो, जगदीशकु नहीं पकडूंगो. वाकी जगत्कु पकड़के बैठवेकी आदतकु छुड़ावेके लिये 'माया' कह्यो जायगो. माया है, क्षणभंगुर है, ठगनी है ''माया हम ठगिनी जानी'' ये कह्यो जाये क्योंके जगदीशकु भूलके जगत्कु पकड़के बैठ गयो है. वैराग्य प्रकट करवेकु ही जगत्कु 'मायिक' कह्यो जावे है. वामें कोई गलत बात भी नहीं है. क्योंके ब्रह्मकी एक शक्ति माया भी है. अब वोही बात कहनी होय तो दूसरे ढंगसु भी कही जा सके है के ब्रह्म खुद जगत्रूपमें प्रकट हो गयो है. जैसे सोना कुंडल बन जाये. जैसे सोनामेंसु कड़ा इअरिंग् बन जाये. जैसे सोनामेंसु बींटी बन जाये. सोना खुद ही कड़ा बन्यो, अंगूठी बन्यो. तो क्या ये बनवेसु सोना खत्म हो जाये? सोना तो कायम रहे ही है. वामें कोई दूसरो नामह्नरूप और जुड़ गयो बस. उपनिषद्ने याही लिये कह्यो है **''सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वा अभिवदन् यद् आस्ते''** (पु.सू.१६). सारे नाम और रूपन् कु धारण करवेवालो तत्त्व तो एक

ही है. जगत् क्या है? एक नाम है. वा नामके साथ कुछ रूप जुड्यो भयो है. वा रूपकी कुछ क्रिया है. जैसे सामान्य बात समझो के सोना है. सोनामेंसु कुछ बनायो. समझ लो इअरिंग् बनायो. तो वाको नाम धर्यो इअरिंग्. वामें अब अब एक नयी क्रियासामर्थ्य उभर गयी के वो कानमें पहर्यो जा सके है. अब वाकु कोई हाथमें पहरे तो वाकु पागल समझ्यो जाय. हर वस्तुकी अपनीह्नअपनी क्रियाकारितायें हैं. वाको अपनोह्नअपनो औचित्य है. वा औचित्यके अनुसार नाम रूप और क्रिया के रूपमें परमात्मा है. जो नाम रूप और क्रिया तीन होते भये भी परमात्माके रूपमें एक है. परमात्मा एक होते भये भी इन नाम रूप और क्रिया के रूपमें तीन है. जैसे एक ही सोना एक तो अंगूठी है, एक चूड़ी है और एक हार है. एक ही सोनाके नाम रूप और क्रिया अलग अलग हैं. अंगूठीकु अंगुलीमें पहरे हैं. हारकु गलामें पहरे हैं और चूड़ीकु हाथमें पहरे हैं. अब तीनोंके नाम रूप और क्रिया अलग हैं पर है तो अन्तमें सोना ही. तीन नाम हो गये, तीन रूप हो गये और तीन क्रिया हो गई. इन सबके अलग अलग होवेके बावजूद सोना तो सोना ही रहेगो.

ऐसे जगत्के जितने नाम हैं, जितने रूप हैं और जितनी क्रियायें इन नामह्नरूपन्के द्वारा घटित हो रही हैं, उन सारी क्रियान्में एक परमात्माको अद्वेत है. महाप्रभु कहे हैं ''ऐसे भी है'' कहो पर ''ऐसे ही है'' ऐसे मत कहो. क्योंके ब्रह्म ऐसे भी है पर ऐसे ही नहीं है. ब्रह्म इतनो व्यापक है, ब्रह्म इतने विरुद्धधर्मन्को आश्रय है. या लिये कोई भी एक वादसु ब्रह्मकु पूरो पूरो माप्यो नहीं जा सके है. जैसे कोई बच्चाकु पूछें के हाथी कितनो बड़ो? तो वो हाथ फैलाके कहे ''इतनो बड़ो.'' तो बच्चा गलत नहीं बोल रह्यो है. वो जितनो माप सके है, उतनो वाने हाथ फैलाके बता दियो. अब अपन् नहीं समझें तो वो बात अलग है. ऐसे ही गीताके लिये जो भी वादको जितनो हाथ फैले वो गीताको तात्पर्य बतावे है और ब्रह्मकु मापे है. पर यासु तुम ये मत मान लीजियो के ब्रह्म इतनो ही है. ये भी मापवेको एक वाद है. **''सितारोंसे आगे जहां और भी हैं अभी इश्कके इम्तहां और भी हैं''** ऐसे ही ब्रह्मकी बात वहीं खत्म नहीं हो जावे है, सारे जगत्में वो फैलके बहोत दूर तक जावे है. दामोदरप्रसंगमें कृष्णकु बांधवेके लिये सारी रस्सीयें कम पड़ी. वो कम क्यों पड़ी? कृष्णकु बांधनो है तो वो बांध्यो नहीं जा सके है. पर जब कृष्णकुं बंधनो है तो वाकु बांध्यो जा सके है. वैसे ही कृष्णकु साधनो है तो वो साध्यो नहीं जा सके है. पर जब कृष्णकुं सधनो है तो वाकु साध्यो जा सके है.

ये बात समझ जाओगे तो आपकु सारी बात समझमें आ जायेगी. जब कृष्णकुं बंधनो है तो वो एक छोटीसी रस्सीसु बंध सके है पर जब नहीं बंधनो है तो सारी रस्सीयां छोटी पड़ गई और वो नहीं बंध सक्यो. क्योंके जब हम अपनी सामर्थ्यसु वाकु बांधवे जा रहे हैं तो वाकु बांध नहीं सके हैं. याही लिये **''सर्ववादानावसरं नानावादानुरोधि तद् अनन्तमूर्ति तद् ब्रह्म.''** या न्यायसु जब वो बंधनो चाहे, जा वादसु बंधनो चाहे, जैसो रूप धारण करनो चाहे, वैसो रूपही वो धारण करे है. या अर्थमें सब वाद सच्चे हैं. कोई भी वाद झूठो नहीं है. तत्तद् वाद अन्ततः अपनेमें सत्य है. पूर्णतः कोई भी वाद सत्य नहीं है. ब्रह्म सब वादन्की समष्टि है. सारे वाद जैसे सारी नदियें समुद्रमें जाके वामें मिल जायें हैं, ऐसे ही सारे वादन्की अपनी धारणायें, विचारधारायें, ब्रह्मरूपी सागरमें जाके मिल जायें हैं.

जैसे नदीन्में बाढ़ आवे है और वा नदीके दो किनारा वा बाढ़के पानीकु पचा नहीं सके हैं तो तबाही मचे है. परन्तु कितनी सारी नदियें सागरमें जाके मिले हैं लेकिन सागरमें वासु कछु भी फरक पड़े नहीं है. ऐसे ही ब्रह्ममें ये सारी विचारधारायें, सारी धारणायें जाके मिल जाये हैं और वो ब्रह्म अपनी मस्तीमें लहरातो ही रहे है. उन धारणा या विचारधाराकी नदीन्के मिलवेसु वाकु कछु भी फरक नहीं पड़े है. **सर्वे होतारो यत्र एकनीडं भवन्ति** (तैत्ति.आर. ।।) जैसे सांझके समय हर दिशामें उड़वेवाले पक्षी लौटके अपने घोंसलान्में आ जायें और बैठ जायें. जैसे हर सम्प्रदायको व्याख्याकार, ये भारतमें भी और यहां तक के अब तो ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी भी कहीं न कहीं गीतामें एकनीड हो जावे और जा बखत विभिन्न व्याख्याकारन्कु अपन् देखें और हर व्याख्याकार अपनेकु ऐसे ही कहे के ये गीताको मूल तात्पर्य है, ये गीताको सच्चो अर्थ है. परन्तु ये सारे वाद ब्रह्मरूपी नीड़में जाके बैठ जाये हैं. ऐसे सब वाद अपने अपने मतानुसार ब्रह्मको निरूपण करे हैं और वो निरूपण सच्चो भी है. परन्तु केवल वो ही निरूपण सच्चो है ये बात ठीक नहीं है. सारे वाद ब्रह्ममें जाके घट सके हैं परन्तु सारो ब्रह्म कभी भी एक वादमें घट नहीं सके है. ऐसे ही भगवान् कह रहे हैं **''यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति. तस्य अहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति''** (गीता.६।३०).

(यहांसु आगे लगभग ३० मिनट्के प्रवचनकी बिजली गुल होवेसु रेकोर्ड नहीं भई)

(वेदान्तके तीन वाद)

महाप्रभु आज्ञा करें हैं के जैसे ब्रह्मके निर्गुण निराकार होवेसु मायाकी कल्पना लाके जगत्की व्याख्या हो सके है, ठीक वैसे ही ब्रह्मके सर्वाकार होवेसु बिना मायाके भी जगत्की व्याख्या हो सके है. ऐसे ही ब्रह्मके साकार होवेसु ब्रह्मकु सर्वाकार मानवेकी जरूरत नहीं है. वेदान्तमें तीन तरहके वाद माने जायें. एक **विवर्तवाद** मान्यो जाय, एक **परिणामवाद** मान्यो जाय और एक **आरम्भवाद** मान्यो जाय.

विवर्तवाद माने क्या? जैसे रस्सी अपनेकु अंधेरामें सांप दीखे. वो सांप क्या रस्सीमें पैदा भयो जैसे एक सांपमेंसु दूसरो सांप पैदा होवे है? नहीं क्योंके रस्सीमेंसु सांप पैदा तो नहीं भयो. तो जहां रस्सी है वहीं क्यों दीखे है? जगहह्नजगह क्यों नहीं दीखे है? मने रस्सीकी कुछ न कुछ कारणता है. वो कैसी के वो सांप सचमुचमें तो रस्सीमें पैदा नहीं भयो फिरभी वहां दीखे जरूर है. याकु **'विवर्त'** कह्यो जाय है. मने पैदा तो भयो लगे पर सचमुचमें पैदा नहीं भयो है. ऐसे ब्रह्ममें जगत् पैदा तो भयो है पर सचमुचमें पैदा नहीं भयो है. यों कहो तो **विवर्तवाद** आवे. जब ब्रह्मकु निर्गुण निराकार माने हैं तो जगत्की पैदाइशकी व्याख्या अपनेकु विवर्तवादके आधार पर देनी पड़ेगी.

जब ब्रह्मकु अपन् सर्वाकार मानें तो जगत्की व्याख्याके लिये अपनेकु विवर्तवादकी जरूरत नहीं पड़ेगी. महाप्रभु कहें हैं के याके लिये परिणामवाद पर्याप्त है? तो महाप्रभु कहें हैं के जैसे सोनामेंसु अलगह्नअलग गहना बने है तो वो गहना सोनाके परिणाम हैं. वैसे ही जगत् प्रभुमें प्रकट्यो है यासु याकी व्याख्याके लिये **परिणामवाद** पर्याप्त है.

अब जैसे परिणामवाद वैसे ही तीसरो एक आरम्भवाद है. जैसे कुम्हारने घड़ा बनायो. तो क्या कुम्हारमेंसु घड़ा पैदा भयो है? कुम्हारमेंसु तो घड़ा बन्यो नहीं है. वाने मिट्टी वगैरहके दोह्नचार लोंदा जोड़के एक घड़ा बनायो और खुद तो अलग रह्यो. तो याकु 'आरम्भवाद' कह्यो जाय है. यामें बनावेवालो खुद इन्वोल्व् नहीं होवे है और कार्य एक नयो पैदा हो जाये. ऐसे कार्यकु **आरम्भवाद** कहें हैं.

परमात्मामेंसु जगत् विवर्तके रूपमें भी पैदा हो सके है. जगत् परमात्माको परिणाम भी हो सके है. परमात्माद्वारा जगत् आरम्भ भी हो सके है. जा तरहसु कहो वा तरहसु कह्यो जा सके है. परमात्मा तीनों वादनकुं कोरस्पोन्ड् कर सके है. परमात्माकी ऐसी सामर्थ्य है. या बातपे ध्यान देवेके लिये जो रहस्य उपनिषद्ने कह्यो है पर **धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः** एक झगड़ाको विषय हो गयो. पर भगवान्ने या बातको खुलासा बहोत विस्तारसु दे दियो के भई मेरे तीनों ही रूप हैं. क्यों झगड़ रहे हो. मैं अव्यक्त भी हूं, मैं परमात्मा भी हूं और मैं पुरुषोत्तम भी हूं.

अव्यक्तको मतलब क्या? निराकार. वो अर्जुन पूछ रह्यो है **''ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः?''** ये अक्षरकी उपासना करवेवाले और तेरी उपासना करवेवाले, इनमें सबसु ज्यादा जानकार कौंन है? ये प्रश्न क्यों पैदा भयो अर्जुनके दीमागमें? क्योंके भगवान्ने सातवें अध्यायसु लेके ग्यारहवें अध्याय तक अपने तीन रूप बताये हैं. एक स्वरूप निराकारको बतायो, मैं अव्यक्त हूं. एक अपनो रूप सर्वाकार बता दियो विराटमें. **''दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगम् ऐश्वरम्''** (गीता.११।८). ले मेरो रूप देख. जितने भी दुनियांमें आकार हैं वो सब मेरेमें हैं. मने अर्जुनने विराटमें खुदकु भी देख्यो. और सब कुछ दीख्यो तो दीख्यो पर अर्जुनकु खुदको रूप भी दीख्यो विराटमें. भगवान्ने पहलेसु ही ये बात समझा रखी थी **''वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः''** (गीता.१०।३७). तू मेरी विभूति जाननो चाहे तो देख तू भी मेरी विभूति है. वृष्णीन्में वासुदेव हूं और पाण्डवन्में मैं धनञ्जय हूं. अब भगवान् कह रहे हैं ''ऐनी अदर् क्वेश्चन्?'' अर्जुन कह रह्यो है ''नहीं महाराज बहोत हो गयो.''

जब भगवान् सर्वाकार हैं, सर्वरूप हैं तो दिखायो क्या जा सके है? फिर भी भगवान्ने कही **''चल देख–दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगम् ऐश्वरम्''** चल देख मेरी विभूतीन्कु. दुनियांमें जितने भी नाम रूप आकार हैं वो सब मेरेमें है. कौंनसो वाद है ये? परिणामवाद. सोनामें हर रूप है. हर रूपमें सोना घड़्यो जा रह्यो है. चूड़ी बनी, ईयरिंग् बनी, अंगूठी बनी. जो कुछ भी बन्यो वो सोनामेंसु ही बन्यो है. वामें ही आभूषणके सारे रूप, आकार स्थित है. या स्थितिकु देखो तो परिणामवाद

आ गयो. अब एक रूप प्रभुने और बतायो है निरंतर. **''यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः''** (गीता.१५।१८). अरे जगत्में जो ये क्षर है, जो क्षणभंगुर चीजें दिखलाई दे रही हैं, उनसु मैं बहोत ऊपर हूं. मेरो जो स्वरूप है अक्षर, निर्गुणह्मनिराकार वासु मैं उत्तम हूं. मने एक तो जो अर्जुनको रथ चला रह्यो है वो रूप. दूसरो वो रूप जो अर्जुनके रथकु चलावेके बावजूद अर्जुनकु सर्वरूपतया दिखलाई दे रह्यो है. जामें सारो जगत् अर्जुनकु दिखलायी दे रह्यो है. जब जगत् कृष्णमें स्थित है तो कृष्ण जगत्में स्थित नहीं हो सके है और जब कृष्ण जगत्में स्थित है तो कृष्णमें जगत् स्थित नहीं हो सके है. तो याके लिये भगवान्ने कही **''दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगम् ऐश्वरम्.''** देख मैं जगत्में स्थित हूं और जगत् मेरेमें स्थित है. विराटके रूपमें भगवान्ने यह दिखा दियो के सारो जगत् मेरेमें स्थित है. तू भी मेरेमें स्थित है और पाछे देख मैं जगत्में स्थित हूं. गुजरातीमें कहें हैं ''घृताधारं पात्रं वा पात्राधारं घृतम्.'' घीको आधार पात्र है अथवा पात्र है आधार जाको ऐसो घी है अर्थात् एक ही अर्थ होवेपे भी शब्दप्रयोगमें विवादको चक्कर चलतो रहे. निर्णय आवे नहीं. वकालतके जैसी बात हो गई. चाहे घृताधार पात्र, चाहे पात्राधार घृत, अपने क्या? होम करो न जो है सो है. पात्राधार होय तो भी होम करो.

सीधी बात ये है के जैसो है वैसे ब्रह्मकु स्वीकार कर लो. कोई खटपटकी बात ही नहीं है. क्योंके सब कुछ वो है और जब वो ही सब कुछ है तो वाकु स्वीकार करवेमें अपनेकु क्या आपत्ति होनी चइये या लिये जा बखत पुरुषोत्तमकु अपन् देखें, पुरुषोत्तमपे जा बखत अपनी दृष्टि टिक जाये और फिर पुरुषोत्तमसु अपन् जगत्की तुलना करें, तो स्पष्ट समझमें आयेगो के पुरुषोत्तम तो अक्षरसु भी उत्तम है. क्षरसु अतीत है. तो ऐसो सबसु अतीत और सबसु उत्तम व्यक्तित्व जगत्में पैदा नहीं हो सके. अपनेकु लगे के जैसे कुम्हारने घड़ा बना दियो, वैसे भगवान्ने यह जगत् बना दियो है. भगवान् जगत्को कर्ता है. जगत्को कारण नहीं है. तो कभी जगत्को कर्ता लगे, कभी जगत्को कारण लगे, कभी जगत्को अधिष्ठान लगे, भगवान् तीनों लग सके हैं. तीनों एकह्मएक रूपपे ध्यान दो तो तीनों बात समझमें आ जायेंगी. जा बखत अक्षरब्रह्म देखोगे तो लगेगो के जगत् वाको विवर्त है. जा बखत परमात्मा देखोगे तो वा बखत लगेगो के जगत् वाको नियम्य कार्यह्मशरीर है और जा बखत पुरुषोत्तमकु निहारोगे तो स्पष्ट अंतर दिखलाई देगो के पुरुषोत्तम

तो पुरुषोत्तम है. वासु ऐसे पुरुषाधम तो पैदा नहीं हो सकेंगे दुर्योधन जैसे, शकुनि जैसे. पर परमात्माकु जब देखोगे तो पता चलेगो के विराटमें दुर्योधन भी है, युधिष्ठिर भी मौजुद है. विराटमें सब चीज मौजूद है. पर पुरुषोत्तम कृष्ण जो रथ चला रह्यो है, वाकु देखोगे तो बहोत अन्तर दिखलाई देगो. अरे, दुर्योधन और शकुनि की तो बात दूर रही, कभी शान्तिसु विचारके देखो तो व्रजके जो कृष्ण हैं माखनचोर, वो कृष्ण और गीताको चो उपदेश दे रह्यो है, वो कृष्ण एक लगे? अरे अक्कल चकरा जाये. जो खुद माखन चोरतो थो वो या तरहके उपदेश दे रह्यो है के चोरीपे काबू कर, क्रोधपे काबू कर. **''न जातु काम कामानाम् उपभोगेन शाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयएव अभिवर्धते''** (भाग.पुरा.९।१९।१४). कामन्पे काबू ला. अरे खुद कायको माखन चोरतो थो? आप माखन भी चोर रहें हैं और अकाम और आप्तकाम भी है फिर भी वाकु भूख लगे ही नहीं या ब्रह्ममें सारे रूप हैं. वो सब कुछ कर सके हैं. कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थ है. वो माखन भी खा जाये और आप्तकाम है फिर भी वाकु भूख लगे ही नहीं या ब्रह्ममें सारी विचित्र सामर्थ्य है. सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि हर वाद प्रभुको नापवेके लिये एक अच्छी फुटपट्टी है पर कोई वादपे ऐसो अहंकार मत करियो के या वादके कारण ब्रह्मकु पूरो नाप सकेंगे. हर वाद सच्चो है पर सच्चो ही है ऐसो मत मान लीजो. हर वाद सच्चो भी है पर सच्चो ही नहीं है. 'ही' और 'भी'में थोड़ोसो अन्तर है. ये बात समझनी चइये के कोई बात गलत नहीं है. हर वाद ठीक बात कह रह्यो है. हर वाद ब्रह्मके एक-एक पहलु समझा रह्यो है और वो हर पहलु ब्रह्ममें है. पर वो ही ब्रह्म नहीं है. ब्रह्म वासु ज्यादा है. ब्रह्म कहीं ज्यादा है या न्यायसु जब अपन् समझें, तो वो समझ आयेगो के अर्जुन पूछ क्या रह्यो है ''अभी जगह जगह ये बात बताई के एक रूप अव्यक्तको है. **''अव्यक्ता हि गतिः दुःखं देहवद्भिः अवाप्यते''** अभी तुमने सप्तम् और नवम् अध्याय में निरन्तर या बातको खुलासा कियो है के अक्षरब्रह्म तक पहुंचनो बड़ी मुश्किल बात है. तोकु यदि पहुंचनो है तो तू मोकु ही क्यों नहीं मिल ले. ये केहके केहनो क्या चाहे है?

(अव्यक्ता हि गतिः दुःखम्)

देखो एक सामान्य बात बताऊं. चौबुर्जा एक पहाड़ है. सीधे चौबुर्जापे चढ़नो होय तो बड़ी तकलीफ है. नहीं चढ़्यो जायेगो. कोई थोड़ोह्मथोड़ो टेढ़े चढ़वेको रस्ता बना दो तो घोड़ा भी चढ़ सके, मोटर भी चढ़ सके. पहाड़न्पे घाट बना

देंवें ना. कभी हिमालयमें जाके देखो कैसेह्नकैसे घाट वहां बनावें इतने ऊंचे पहाड़न् तक इतनी बड़ीह्नबड़ी बसें चढ़ जाय. क्यों चढ़ जाये? क्योंके वो ही रास्ता वो ही पहाड़ सीधो बनावेके बजाय गोलह्नगोल बनाके आगे जायो जाय. ऐसे ही पहाड़ जहां गोल-गोल रास्ता बने भये हैं वापे अपन् बसकी बस चढ़ा सकें हैं. जहां रास्ता नहीं बने भये हैं वहां अपन् सीधे चढ़वे जायें तो आदमी अकेलो अपने खुदके पैरसु भी नहीं चढ़ सके ऐसी स्थिति हो जाये. ऐसे ही परमात्माको जो अक्षरको रूप है, वहां अपन् चढ़नो चाहेंगे तो बड़ी तकलीफ है. चढ़ नहीं पायेंगे. वो पहाड़ अपनेकु पैर जमावेके लिये जगह नहीं दे है. मनुष्य तो पैरसु चढ़े पर बंदर तो हाथ पैर दोनोंसु चढ़े और अपन् वा तरहसु ऊपर चढ़ें और जरा हाथ छूट्यो तो अपन् नीचे आवें, ऐसी स्थिति है अक्षरब्रह्मकी. याके लिये भगवान् कहे है **''अव्यक्ता हि गतिः दुःखम्''** अव्यक्तकी गति बड़ी दुःख भरी गति है. वापे तुम चढ़ नहीं पाओगे. अव्यक्तकी ऊंचाई तक तुम पहुंच नहीं पाओगे, वामें बड़ी तकलीफ हैं, क्योंके तुम कभी अपने-आपकु तो अव्यक्त बनाके देखो? अपन् सब जानें हैं, कौंन नहीं जाने है? अपनी आत्मा न तो जीव है, न तो पुरुष है, न तो ज्ञानी है, न तो मूर्ख है, आत्मा तो शुद्ध चैतन्य है. कौंन नहीं जाने है? पर जरासु कोईकु कह दो ''तू पूर्ण विद्वान् नहीं है'' तो वो नाराज हो जाये. क्यों नाराज हो गयो? और कहीं कह दें के ''तुम मूर्ख हो, महामूर्ख हो'' तब तो आ बने

(अहन्ता-ममताको नशा सभीकु चढ़्यो भयो है)

हम बनारस गये. हमारे साथ एक शास्त्रीजी हते. उनने भांग पी ली. अब भांग पीके ब्रह्मज्ञान बोलवे लगे. वो जाकु सुना रहे थे वाने भी भांग पी रखी थी... अब दोनोंन्ने हंसनो भी शुरु कियो. एकह्नएक बात कहते जायें और हंसते जायें. साथह्नसाथ एकदूसरेकु ये भी पूछते जायें ''क्यों हंस रहे हो?'' हमने कही ब्रह्मज्ञानकी तो बहोत अच्छी बात कह रहे हैं पर साथमें हंसवेकी जो क्रिया तंग कर रही थी वो तो ब्रह्मज्ञानके साथ ही चल रही थी ना शुद्ध ब्रह्मज्ञानके बावजूद हंसवेकी क्रिया परेशान तो कर ही सके है. वो परस्पर सवाल कर रहे हते के देहपे हंस रहे हो के आत्मापे हंस रहे हो या अन्य किसपे हंस रहे हो यों ब्रह्मज्ञानको मजा ले रहे हते और नशाके वश आती हंसी भी कायम हती ब्रह्मज्ञानसु नशाको इलाज तो भयो नहीं. अपनेकु ब्रह्मज्ञान तो प्राप्त हो जाये पर जो नशा चढ़ गयो है अहंताह्नममताको, वो ब्रह्मज्ञानको उपदेश देते बखत हंसवेकी आवाजके साथ जरूर

निकालेगो, खूब उपदेश देयगो के ''आत्मापे हंस रहे हो के देहपे हंस रहे हो'' और खुद भी ''हि हाह्नहा'' हो रही थी वा अहंता-ममताके नशापे काबु नहीं आवे. या लिये एक ओर लफ्फाजी चले ब्रह्मज्ञानकी और दूसरी ओर अहन्ताह्नममताकी अविद्या भी कायम ही रहे. या लिये भगवान् कहे हैं **''दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एतां तरन्ति ते''** (गीता.७।१४). प्रभु कह रहे है के अहंता-ममतामें एक नशीलो मजा लेवेको मैंने सबकु पिला रक्खो है. अब तुम ब्रह्मज्ञानी भी हो जाओगे तो ब्रह्मज्ञान प्रकट करते बखत भी तुम 'हिह्नहाहा' हंसते रहोगे. यों ब्रह्मज्ञानकी बात करोगे तो वामें भी ये अहंता-ममता बोलेगी तो बोलेगी और बोलेगी ही. क्योंके पिलाई तो मैंने है न तुमकुं भांग अहंता-ममताकी तो नशा हर व्यक्तिकु चढ़्यो भयो है. वो ज्ञानीकु भी चढ़्यो भयो है, वो कर्मीकु भी चढ़्यो भयो है, वो भक्तकु भी चढ़्यो भयो है. वो सबकु चढ़्यो भयो है. **''मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एतां तरन्ति ते''** यासु वा नशाकु उतारनो होय तो वाको इलाज अपने हाथमें नहीं है, वो इलाज भी वाके ही हाथमें है. वो चाहे तो वा नशाकु उतार सके है. बाकी अपन् तो ज्ञानकी बातें तो खूब कर सकें. जैसे अपन् कहें **''अहं ब्रह्मास्मि''** पर या मन्त्रकु जपवेवालेकु एक श्रुतिवचनमें बहोत सुन्दर बात समझायी गयी है **''यो अहम् अस्मि ब्रह्माहम् अस्मि अहमेव मां जुहोमि स्वाहाः''** (महा.नारा.उप.५।१०). मैं क्या हूं? मैं ब्रह्म हूं. ब्रह्म क्या है? मैं हूं. मैं अपने अहंकी आहुति ब्रह्माग्निमें डाल रह्यो हूं. पर आदमी बड़ो चतुर है. वो तो अपने अहंकी अग्निमें ही ब्रह्मकी आहुति डाल दे है. ये कहके ''मैं ब्रह्म हूं'' अरे जब 'मैं' बोल्यो तो पाछो अहंकार आ गयो. कहवेकु तो ब्रह्म हूं पर अन्तमें तो मैं ही हूं. पर आदमी प्रभुकु भूल जाये और ब्रह्मके साथ 'मैं लगाके बोले ''मैं ब्रह्म हूं''. ज्ञानमें ज्ञानी ज्ञानोपदेश तो करेगो पर वाने जो अहंकारको नशा कर रख्यो है, वाकी लफ्फाजी तो साथह्नसाथ चलती ही रहे. आदमी भक्तितो करेगो बड़ो दीन होके पर या लफ्फाजी पे काबु नहीं पा सके.

(सेवामेंभी अहंको नशा)

हमारे यहां बम्बईमें एक भाई हते. हमारे दादाजीने चलतीह्नफिरती अस्पतालकी गाड़ी चलाई हती. दादाजी तो लीला पधार गये. अब ये बड़ो भारी प्रश्न खड़ो भयो के ये गाड़ी कौंन चलायेगो? वा भाईने कही ''महाराज ये काम मैं करूंगो'' अब वा भाईने अस्पतालकी गाड़ी चलावेको जिम्मा लियो. हमनें भी कही ''हम

भी साथ चलेंगे''. वा भाईके मनमें एक बहम घुस गयो हतो के हर आदमीकु फटकारवेपे ही काम अच्छो होवे. हम लोग पचास साठ मील दूर तक बस ले लेके जाते. तो अन्दरके गाम हैं जहां कपड़ा भी नहीं पहरें ऐसे ऐसे लोग जहां खाली लंगोटी लगाके, मच्छीमारन्की बस्तीमें दवाईयां बांटी. वहां डॉक्टर् चलतो, नर्स चलती, कम्पाउन्डर् चलतो, ड्राईवर् चलतो, एक क्लीनर् चलतो, एक वो भाई चलते और दूसरो मैं चलतो. बड़ो आनन्द आतो. एक दिन कम्पाउन्डर्ने कही ''जलकी मटकी फूटी भई है'' वा भाईने कही ''एन रवाना होनेके मोकेपर काहेको बोला? पहले क्यों नहीं बोला? फूटी मटकी ले चलो''. हम जब तक गांव पहुंचे तब तक तो सारो जल निकल गयो. और सबन्कु बड़ी प्यास लगी. वा भाईको तो खुदको आईस्बोक्स् हतो. वो वामेंसु निकालह्वनिकालके जल पिये. अब ड्राईवर्, डॉक्टर्, नर्स, कम्पाउन्डर् प्यासके मारे ''त्राहिह्वत्राहि'' करें. साधारण आदमी होय तो गांवके कुआसु जल पी ले पर वो डॉक्टर्के तो दीमागमें गांवके कुआसु जल नहीं पीनो ऐसे ठस्यो भयो होवे, क्योंके वामें जर्म्स् होवें. अब वो गांवके कुआसु जल पी नहीं सकें और घड़ा तो फूट्यो भयो वामेंसु सब जल कबको निकल गयो. अब वो भाई लगी करवे उतरे तो मैंने सबसु कही ''मेरे थर्मस्मेंसु थोड़ोह्वथोड़ो जल पी लो. एकह्वएक गिलास पिवायें'' तभी वो भाई आ गयो. अब वा भाईने आके उनकु फटकारनो शुरु कियो ''क्या समझके महाराजके थर्मस्मेंसु जल लियो?'' मैंने कही ''उनने नहीं लियो, मैंने दियो'' तो वो बोल्यो ''क्या समझके सबकु जल दियो?'' मैंने कही ''अरे भाई मेरे बापकी गाड़ी मैं चलाऊं हुं'' पर वो कहे ''क्या समझके अपने थर्मस्मेंसु जल दियो?'' आदमी सेवा तो करे, परिश्रम भी खूब करे पर वो अहं तो जावे नहीं. अहंको नशा आ रह्यो है. सेवा करे तो वाको भी नशा आ रह्यो है. अब डॉक्टर्कु कुआको पानी नहीं पीवेको नशा आ रह्यो है तो वा भाईकु भी नशा आ रह्यो है. हमकु भी कह दी ''क्या समझके पीवेको पानी दियो तुमने?'' पर जो अहंकी भांग घुटी भई है वाकी डकार तो आवेगी ही और आये बिना रहेगी नहीं. आदमी बहोत तरीकेके काम करे. ज्ञानके करे, भक्तिके करे पर ऐन मौकापे वो अहंकारकी डकार तो आ ही जाये. तो वाको सोल्युशन् है नहीं. अपन् सोचें के वाको सोल्युशन् हो जायेगो.

(दैन्यमेंभी अहंकार)

भगवान् याही लिये कहे हैं ''**दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एताम् तरन्ति ते**'' मेरे सामने प्रपन्न हो जा. तू चिन्ता छोड़ दे. मैंने पिलाई है अहंता-ममताकी भांग तोकु, तू वाकी चिन्ता मत कर. तू अपनी चिन्ता कर. सारी बात तू मेरेपे छोड़ दे. जब छोड़ दे भक्त प्रभुपे तो बात दूसरी है. पर जा बखत अपन् अपने आप निर्णय करवे जायें तो कुछ न कुछ गड़बड़ी ज्ञानमें भी हो जाये, कुछ न कुछ गड़बड़ी भक्तिमें भी हो जाय. कुछ न कुछ गड़बड़ी कर्ममें भी हो जाये. कर्म ज्ञान भक्ति कु अपने ढंगसु अपन् करवे जायेंगे तो वाको निराकरण नहीं हो सके. प्रभुपे छोड़ दें **जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये.** तो हर बातको सोल्युशन् वाई बखत आ जाय है. सोल्युशन् सामने रख्यो भयो है. पर सहज सोल्युशन् आदमीकु चइये नहीं. आदमीकु अपनेह्वअपने सोल्युशन्स् चइये **अहं ब्रह्मास्मि** के जासु अपनी अहंताकु ठीक करनो चाहे. पर वो **अहं ब्रह्मास्मि** जपवेसु ही आदमीकी अहंता बढ़ जावे. अपन सोचें के चलो हम **अहं ब्रह्मास्मि** नहीं करेंगे, **दासोऽहम् दासोऽहम्** कहेंगे पर **दासोऽहम्** करवेमें भी अहंता बढ़ जाये. संस्कृतमें एक बड़ो सुन्दर श्लोक है **के यूयं? हरिपादपद्मनिरतह्वश्रीपादपायूदकह्वक्लिद्यन्मूत्रलुठत्ह्वपिपीलवधूदासाः** दैन्यमें कितनो अहंकार उनने पूछी आप कौंन हो? जवाबमें कह्यो के आप जो छीवे जाके पानीसु हाथ धोवो हो, वा पानीमेंसु जो चींटी भीज जाय वाको मैं दास हूं. अब पलटके वाने पूछी के आप कौंन हो? तो वाने कही जो वा घासकु खावेवालो गधा, वा गधाके पैरमें लगी भई जो रज, वा रजके जो दास, उनके भी हम अनुदास हैं अपन् कहें के दीनता करो पर या दीनतामें भी कोम्पिटीशन् शुरु हो गयो. तू दीन तो मैं तोसु डेढ़ो दीन. अब दीनता भी अहंतापरक हो गई. आदमी बड़ो खुराफाती है. जितने भी उपाय बताओगे, वामें कहीं न कहींसु अहंताकी बात खोज निकालेगो. क्योंके बुद्धि छली है, ज्यादा नशा है वामें अहंताको. याके लिये प्रभु कहे हैं ''**मम माया दुरत्यया**'' ये अहंता-ममताकी माया दुरत्यय है. पर प्रभु कहे हैं ''जैसे मैं कहूं वैसे कर. तू चिन्ता क्यों करे है. मैंने तेरे भीतर अहंता-ममताकु खोलवे और बन्द करवेके बटन् रखे हैं, वो बटन् जबतक मैं बन्द नहीं करूंगो, तब तक तू अपने साधनन्सु इन बटनन्कु बन्द करनो चाहेगो तो चकाचक होती रहेगी. बटन् बन्द नहीं होवेंगे'' ये अहन्ता-ममताको चक्कर बड़ो विचित्र है. याके लिये जब अपनेकु छूटनो है जगत्की आसक्तिसु, तो वो ज्ञानमार्ग अपनेकु बतावे के तुम अपनेकु छोड़ दो. पर अपन खुदकु छोड़ कहां पावें हैं? तुम खुद तो अव्यक्त हो नहीं सको हो, जा तरहसु तुम्हारी ममता व्यक्त हो रही है एकह्वएक विषयन्में, वा ही तरहसु

तुम्हारी अहंता भी व्यक्त हो जावे है वो तो छूटे नहीं. तुम सोचो के परमात्माकी अव्यक्तोपासना कर लेंगे, तो भगवान् कहे हैं ''**अव्यक्ता हि गतिर् दुःखं देहवद्भिः अवाप्यते**'' अव्यक्तकी गति बड़ी कठिन है. खुदकु अव्यक्त कर पानो बड़ो मुश्किल है और कर पाओ तो कोई बुरी बात नहीं है. छोड़नो तो चइये ही पर छोड़ पाओगे? प्रश्न ये है. वहां अपन् ये कहें ''ज्ञान नहीं कर पायेंगे, भक्ति करेंगे'' भगवान् कहे हैं ''अच्छा भक्ति करो'' भक्ति करतेह्वकरते पाछे फिर वही दासानुदासकी कोम्पिटीशन् शुरु हो जायेगी. वो कहेंगे ''हम दास हैं'' तो हम कहेंगे ''हम अनुदास हैं'' वो कहेंगे ''हम दासानुदास हैं'' हम कहेंगे ''हत हम दासानुदासके भी दासानुदास हैं'' यामें भी कोम्पिटीशन्. ये कोम्पिटीशन् भक्तिमें भी मिलेगी. ज्ञानमें भी मिलेगी. कर्ममें भी मिलेगी. कोम्पिटीशन् जा नहीं सके है. तो भगवान् कहे हैं ''**मम माया दुरत्यया**'' मैंने जो तेरो गठन कियो है, वाकु तू तोड़नो क्यों चाह रह्यो है? जैसे मैंने तोकु घड़्यो है वैसे रह. प्रपत्तिको भाव रख के ''मैं तेरी शरण हू'' जासु तोकु नशा न होय. तब हर बातको सोल्युशन् आ जायेगो. पर छोड़वेके चक्करमें पड़ेगो तो सोच यामें मैंने कैसी कैसी ड्राईव् रखी हैं. तू या बाजूसु जायगो तो तोकु वा बाजूसु पकड़ लेगी अहंता. तू ये बात सोचेगो के मैं ब्राह्मण नहीं हूं, मैं वैश्य नहीं हूं. मैं शूद्र नहीं हूं. मैं स्त्री नहीं हूं. मैं पुरुष नहीं हूं. अन्तमें तोकु मैं ब्रह्म हूं याकी अहंता आ जायेगी. बात तो वहींकी वहीं रही ना विषय बदल गयो अहंताको.

(व्रतन्में भी चक्कर)

मैं अक्सर एक बात कहूं हूं के आदमी मौन व्रत ले ले. मौन व्रत ले ले वाको मतलब क्या? पाटीपे लिखतो रहे रात दिन. पाटीकी और पेन्सिल्की और बरबादी. ऐसो मौनव्रत लेनो ही क्यों के जामें इतनो समय बरबाद होवे? जा बातकु कहवेमें दो मिनट् लगती हती वा बातकु लिखवेमें दस मिनट् और बरबाद हो जायें पर आदमी माने नहीं. मौन व्रत तो लेनो ही है. अरे लिखवेमें कितनो समय बरबाद हो गयो. वाको कोई हिसाब लगायो? आदमी वो हिसाब नहीं लगावे. एक दो मिनट्में जो बात कहके छुटकारो पायो जा सकतो थो, वाकु दस मिनट् तक लिखनो. उतनी देर मनमें तो बातें रहीं ही ना तो मौनव्रतसु लाभ क्या भयो? वा मौनमें तब लाभ है जबकि वामें तुमने कुछ भगवच्चिन्तन कियो. यदि भगवच्चिन्तन कियो तो मौनको लाभ है, आदमी बोल बोलके अपनो समय बिगाड़ रह्यो है, ऋषि मुनिन्ने साधना बताई ''मौन ले लो'' तो मौन ले लियो पर आदमीने वो बोलनो पाटीपे लिख-

लिखके पूरो कर लियो. वो जीभसु नहीं बोले पर अंगुलीसु बोलवे लग गयो. बोलनो, परन्तु, बन्द नहीं भयो. बोलवेकी इन्द्रिय बदली है. बोल तो रहे हो. पहले कम बोल रहे थे, अब ज्यादा बोल रहे हो. जो बात एक मिनट्में बोली जा सकती थी वाकु घंटान्में बोलह्वबोलके पूरी नहीं कर पा रहे हो. तो तुम मौन कहां हो? आदमी ऐसो करे है.

अपन् एकादशीको व्रत करे हैं तो ले महाराज फलाहार हो जावे के नहीं हम एक दिन कोईके घरमें उतरे. वा दिन एकादशी हती. वाने पूछी ''महाराज आप एकादशी करो हो के नहीं?'' हम वा बखत एकादशी करते नहीं हते. पर जब वाने पूछ्यो तो वाने तो या लिये ही पूछी होगी के एकादशी करते होओगे. सो हमने भी कही के करे हैं. तो हमारे मनमें निराशा छा गई के अब आराम करो. दिन भर क्या करेंगे. जाके हम बैठ गये. बारह बज गये तो खबर आयी ''चलो महाराज भोजन करवे पधारो'' मैंने कही ''आप तो एकादशी कह रहे थे?'' वाने कही ''हां हां वो एकादशीकी ही तो बात कर रह्यो हूं'' अब वामें क्याह्वक्या नहीं होवे फलाहार. रोज तो चार पांच आइटम् बनें वा दिन बीस पच्चीस आइटम् हतीं. अब हमने लक्ष्मीकु जाके कह दी ''आज हमारे एकादशी है. हम द्वादशी ही नहीं करेंगे. कौंन द्वादशी करे? ऐसी द्वादशी करके फायदा क्या के रोज चार चीज बनती हों और एकादशीके दिन बारह चीज बनें. तो कायकु अपनेकु द्वादशी करनी?'' आदमी ऐसी ही बड़ीह्वबड़ी बातें करे है. एकादशीके दिन एकादशी होय ही नहीं. एकादशीके दिन एकादश फलाहार हो जायें. हम मनकु बहला रहे हैं के हम व्रत कर रहे हैं पर व्रत होवे नहीं. अहंता-ममताको ऐसो चक्कर है के अपन् कर नहीं पावें. फलाहारकी जगह कुछ और कर लेंगे. फलाहार छोड़ दें तो कुछ आहार करवे लग जायें. बाततो कायम रहेगी. तब तक बात कायम रहेगी जब तक बुखार आयो नहीं.

याके लिये भगवान् कहे हैं ''तू छोड़ ये सारे चक्कर ''**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एतां तरन्ति ते**'' ये ज्ञानके, ये भक्तिके, ये कर्मके अधिकार बड़े कठिन हैं. कुछ करनो पड़ेगो, कुछ समझनो पड़ेगो. कुछ तैयारी रखनी पड़ेगी. वोई तैयारी है शरणागतिको मार्ग. अति सूधो स्नेहको मार्ग है. शरणागतिको ये सूधो मार्ग है याके लिये तू शरणागत हो जा. हर बातको समाधान यामें मिलेगो. समाधान क्या है? जा तरहसु प्रभु रख रह्यो है वा तरहसु तू रह. अन्य कौंनसे समाधानकी अपनेकु

आशा रखनी चइये? पर अर्जुन एक अलग प्रकारको शिष्य है. वैसो शिष्य भगवान्कु मिल्यो होयगो कभी के नहीं जो खुलवाह्नखुलवाके बात पूछे है ''अच्छा तुमने ये बात कही थी के ज्ञानयोगी अव्यक्तोपासक है और ये जो तुमने विराटस्वरूप दिखायो, यामें तुमने भक्तिकी बात करी. पर महाराज बराबर मोकुं साफह्नसाफ ये बात बताओ के **'ये तु अक्षरम् अव्यक्तं पर्युपासते. ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः.'** कौंन अधिक जानकार है? क्या ज्ञानयोगी अधिक जानकार है? अथवा भक्तियोगी अधिक जानकार है?'' भगवान् कहे हैं ''ले तेरेकु और समझनो है पर दवाई खानी नहीं है. दवाईको वर्णन सुननो है, सुनतो जा''. कलसु भगवान्की दवाईको वर्णन शुरू होयगो.

चौथे दिनको प्रवचन

(भगवान् कृष्णकी क्रीड़ा तीन तरहसुं)

''नमो भगवते तस्मै कृष्णाय अद्भुतकर्मणे, रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः'' (त.दी.नि.१।१). शास्त्रार्थ प्रकरणके प्रारम्भमें महाप्रभुने ये श्लोक कह्यो है. तीन तरहकी प्रभुकी क्रीड़ा या श्लोकमें महाप्रभुने बताई. **''रूपह्ननामह्नविभेदेन जगत् क्रीडती यो यतः''**. अर्थात् जो भगवान् [१]अनेक नाम रूप धारण करके क्रीड़ा करे [२] साथ ही साथ अनेक नामह्नरूपवालो जगत् बनके भी क्रीड़ा करे है; और, [३]अनेक नामह्नरूपवालो जगत् जाके कारण क्रीड़ा करे है.

ऐसे तीन तरह क्रीड़ाके पहलु बताये. अब इन तीन पहलुन्के बारेमें महाप्रभु कहे हैं **'''ब्रह्म'इति 'परमात्मा'इति 'भगवान्'इति शब्द्यते''** (त.दी.नि.१।६). जो क्रीड़ा तीन तरहसु चल रही है वामें एक क्रीड़ा ऐसी के जा क्रीड़ापे अपन् निगाह डालें तो अपनेकु लगे के भगवान् खुद क्रीड़ा कर रह्यो है. दूसरी क्रीड़ा ऐसी के जा क्रीड़ापे निगाह डालें तो लगे भगवान् जगत् बनके क्रीड़ा कर रह्यो है. तीसरी क्रीड़ा ऐसी के जा क्रीड़ापे निगाह डालें तो अपन्कु लगे के भगवान् तो कुछ भी नहीं कर रह्यो है, खाली बिराज रह्यो है पर जगत् वाके खाली बिराजवेके कारण क्रीड़ा कर रह्यो है. जैसे दीया, दीया कुछ करे नहीं, पर पतंगा वाके आगे पीछे नाचतो फिरे. अब दीयापे पतंगा कहांसु आ जायें वो पता लगे नहीं. दीयाने कोई आमन्त्रण दियो होय, ऐसो तो अपनेकु लगे नहीं. वाको स्वभाव कछु ऐसो है के दीया जुड़े नहीं और पतंगा वाके आगे पीछे नाचनो शुरु कर दे. ऐसे भगवान् कूटस्थ बिराजे भये हैं और नामरूपको जगत् वाके आगे क्रीड़ा कर रह्यो है अपनेह्नआप. इन तीन तरहकी क्रीड़ा करवेवालेके महाप्रभु तीन नाम दे हैं **'ब्रह्म' 'परमात्मा' 'भगवान्'**. एक पहलु है जैसे मैंने आपकु बतायो के बल्ब् जुड्यो और पतंगियाने आके नाचनो शुरु कर दियो वाके इर्दगिर्द. बल्ब् कुछ भी नहीं कर रह्यो है. एक आदमी नाचे, गवैया साज बजावे, तबलची वामें ठेका दे. पर बल्ब् कुछ भी नहीं करे. बल्ब् अपने ढंगसु जुड़े और पतंगिया अपनेह्नआप नाचवे लग जाये. ऐसे परमात्माको एक रूप ऐसो कूटस्थ है के जो कुछ करे-धरे नहीं है पर नाम-रूप वा कारण नाचते रहें. कभी ध्यानसु देखें तो सोये भये आदमीकी चेतना कैसी लगे? सुप्त चेतना पर स्वप्नमें तो वाके आगे अनेक नाम-रूप नाचते होंवें. ये रूप जा बखत जा

सम्बन्धसु अपन्कु दिखलाई दे हैं, महाप्रभु कहें हैं के ये ब्रह्मकी लीला है. ब्रह्म कूटस्थ है. ब्रह्म अव्यक्त है. ब्रह्म निराकार है, व्यापक है. कुछ भी नहीं कर रह्यो है. वो अपने आपमें है. वाकी अपने आपमें मौजूदगी ही कुछ ऐसी है के नाम-रूप वाके कारण नाचवे लग जायें. कूटस्थकी स्थितिही ऐसी है के नाम-रूपमें गति पैदा हो जाये तो वो 'ब्रह्मलीला' कहवावे.

दूसरी परमात्माकी लीला. परमात्माकी लीला कैसी? परमात्मा जगत् बनके क्रीड़ा कर रह्यो है. परमात्माको कन्सेप्ट् ऐसो है, परमात्मा खुद जगत् बन गयो और क्रीड़ा कर रह्यो है. या तरहकी क्रीड़ाकु महाप्रभु 'परमात्मलीला' कहें हैं.

तीसरी लीला ऐसी के जामें अपनेकु लगे के भगवान् खुद क्रीड़ा कर रह्यो है. जैसे जगत्में भगवान् अवतीर्ण हो जाये. अब वाको अवतीर्ण होनो भी तो एक लीला है. जैसे जगत् एक लीला है. वैसे लीलामें एक और लीला पाछी शुरु हो गई. अक्सर रामायण भागवत या पुरानी जितनी भी कथायें हैं, उनमें आपने देख्यो होयगो के सब ऐसे ही चले है. काकभुशुण्डजीने एक कथा वाकु कही. वामेंसु एक कथा और निकली, वामेंसु एक तीसरी कथा निकली. ऐसे भागवतमें सूतने शौनककु कही, व्यासकु नारदने कही. शुकने परीक्षितकु कही. यों कथामें कथा चलती रहे. ऐसे लीलामें भी लीलायें चलती रहें. ऐसे जगत् बनके जो लीला करे है परमात्मा, वामें पाछी एक लीला और प्रकट हो गई, वाके प्रकट होवेकी. ये लीलामें लीला है. जब वा लीलापे निगाह डालें तो ऐसो लगे के ये लीला तो खुद कर रह्यो है. ये कोई दूसरेकी ताकत नहीं है.

आपकु एक सामान्य बात बताऊं. अभी भगवान्की दया है यहां राजस्थानमें के ये कौभाण्ड शुरु नहीं भयो है. हमारे यहां बम्बईमें महाराष्ट्र और गुजरात में ये कौभाण्ड खूब चले. लोग भागवतह्वसप्ताह करावें. कारण क्या चन्दा इकट्ठो करो दे भागवतह्वसप्ताह, दे भागवतह्वसप्ताह, कोई लाख रुपया इकट्ठो करे, कोई पांच लाख इकट्ठो करे. अब वो या तरहकी चन्दा इकट्ठा करवेकी लीला शुरु हो गई भागवत करावेकी. सो वाकु सुनतेह्वसुनते लोग फेड्अप् हो गये. अब भागवतमें रुचि कैसे पैदा करनी? स्टेज्पे एक आदमी भागवत बोले. वा स्टेज्के बाजूमें लीला चले वा कथाकी. अभी हमने याकी एक मजेदार कथा सुनी. है तो ये भी एक

लीला ही है ना एक जगह सप्ताहमें नृसिंहावतारकी कथा चल रही थी. स्टेज्पे एक आदमी नरसिंहजी बन्यो. जो आदमी नरसिंहजी बन्यो तो वामें नृसिंहको आवेश अचानक आ गयो. कथामें बड़ी भारी भीड़ हती. अब वा आदमीमें नृसिंहको आवेश आयो तो वाने चारों तरफ धमाल-चौकड़ी करनी शुरु करी. वा भीड़में मेयर्भी बैठे भये हते. तो मेयर्कुं भी धोलधप्पा लगा दियो नरसिंहजीने. मेयर्कु जैसे ही लग्यो और वाकी पिटाई भई तो पुलिस्ने आके नरसिंहजीकु अरेस्ट् कर लियो उनने कही नरसिंह होओगे तो वैकुण्ठमें. यहां मेयर्की पिटाई करी तो चलो जेल्में. भई तो भागवतह्वसप्ताह और नरसिंहजी अरेस्ट् हो गये. ऐसी कथा अभी, भगवान्की कृपा है, राजस्थानमें शुरु नहीं भई है. थोड़े दिनमें आयेगी हवा यहां भी. **''नई सुबहपे नज़र है और साथ ये भी डर है के सहर भी रफ्ताह्वरफ्ता कहीं शाम तक न पहुंचे''** ये आयेगी हवा यहां भी थोड़े दिनमें, जायेगी कहां

केहवेको मतलब मेरो क्या? लीलामें एक और लीला चले. अपन् जब नृसिंहलीला करवे जायें तो अरेस्ट् होवेकी बड़ी सम्भावना है. पर जब भगवान् नृसिंहलीला करें तो कोई हिरण्यकशिपु मने पुलिस्की ऐसी ताकत नहीं है के वा नृसिंहकु अरेस्ट् कर सके. अपन् जब नृसिंहलीला करवे जायें और मेयर्की पिटाई करें तो पुलिस् अरेस्ट् कर ले. प्रेसीडेन्ट्की बात तो दूर रही. छोटेसे शहरके मेयर्की क्या वकत? पर वा बखत हिरण्यकशिपुकु भगवान्ने चीर दियो तो कोई नृसिंहकु अरेस्ट् करवे नहीं आ सक्यो के हमारे राजाकु काहेको चीर्यो, चलो जेल्में. चलो चढ़ो फांसीपे. वा नृसिंहकु अरेस्ट् करवेकी कोईकी ताकत नहीं है. वा नृसिंहकु केपिटल् पनिश्मेन्ट् देवेकी कोईमें ताकत नहीं है उनने कही ''अरे नृसिंहको आवेश आयो'' तो कही ''आयो होयगो आवेश. हू केयर् फोर् नृसिंह? मेयर्की पिटाई क्यों करी? याको जबाब दो'' अपनेमें शक्ति नहीं है वो लीला करवेकी. अपन् डेमोन्स्ट्रेशन् भले करें वा लीलाको. पर अपनेमें वो करवेकी शक्ति नहीं है अपन् करवे जायें तो **लम्बेके साथ ठिगना जाये, मरे नहीं तो बीमार हो जाये**. नृसिंहकी लीला करनी बहोत मुश्किल है. सहज बात नहीं है. ऐसे भगवान् स्वयंकी लीलामें खुद प्रकट होके गिरिराज उठा सकें पर गिरिराज उठाके कौन बता सके बड़ीह्वबड़ी लीलायें होंवे. कोई कृष्ण बन जाये है. कोई कृष्णको पिता बन जाये वसुदेव. कोई देवकी बन जाये. कोई रुक्मिणीके मां-बाप बन जायें. वामें फिर बेण्ड्बाजा आवें. फिल्मी गाना गावें. फिर बारात निकले कृष्णकी. फिर वो नाक पकड़े कृष्णकी. ये तो अच्छी

फजीहत हुई बिचारे कृष्ण भगवान्‌की. एक भागवत सप्ताह क्या भयी अच्छी खासी दुकानदारी हो गई या तरहकी अपन् लीला करें हैं और बड़ो रसाभास पैदा करते होंवें हैं. कहवेको मतलब क्या के जो भगवान् खुद करें वो तो अपन्‌कु मंजूर करनो ही पड़े के ये तो प्रभुकी खुदकी लीला है. **''भगवते तस्मै कृष्णाय अद्‌भुतकर्मणे रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः''** भगवान् जो खुद लीला करें वाकु अपन् 'भगवल्लीला' कहें. भगवान् जब जगत् बनके लीला करें तो वा लीलाकु भगवल्लीला कहवेके बजाय 'परमात्मलीला' कहनो उचित है. महाप्रभुकी परिभाषा बता रह्यो हूं सबकी बात नहीं बता रह्यो हूं. जाके ब्याहमें बैठे होंय, वाके ही गीत गाये जायें ना हम तो महाप्रभुकी ही बात बतायेंगे और दूसरी बात कहांसु लायेंगे. जो पढ़ी है सो बतायेंगे. महाप्रभुके यहांकी परिभाषा ऐसी है, जब वो परमात्मा बनके लीला करे तो वो ब्रह्मलीला नहीं है, वो भगवल्लीला भी नहीं है पर वो परमात्मलीला है. यालिये ब्रह्मके कूटस्थ रहवेके कारण जो लीला होवे वा लीलाकु अपन् 'ब्रह्मलीला' कहे हैं. मतलब क्या? **ब्रह्म निराकार है परमात्मा सर्वाकार है और भगवान् पुरुषाकार है.** गीतामें निरन्तर इन तीन बातन्‌कु लेके उपदेश चल्यो है. अर्जुनके प्रश्नसु भगवान्‌के उत्तर तक जावेके बीचकी दूरीमें एक बड़ो भारी मुकाम है जा मुकामपे ठहरके अपनेकु अच्छी तरहसु ये बात समझ लेनी चइये के ब्रह्म निराकार है, परमात्मा सर्वाकार है जामें सारे आकार रहे भये हैं और भगवान् पुरुषाकार है.

कृष्ण जो अर्जुनको रथ चला रह्यो है, वाकु अपन् 'भगवान्' कहेंगे. याई लिये याकु अपन् 'भगवद्‌गीता' कहे हैं. ब्रह्मगीता या परमात्मगीता नहीं कहें. आजकल अपन् 'गीता' शब्दकु संज्ञा समझें हैं पर गीता संज्ञा नही है, गीता क्रियापद है. ''भगवता गीता'' मने भगवान्‌ने जो गाई, वो गीता. ये क्रियापद उपनिषद्‌के विशेषणके रूपमें प्रयुक्त भयो. नहीं तो ''भगवता गीतम्'' होनो चइतो थो. **सामान्ये नपुंसकम्** न्यायसु गीतम् होनो चइतो थो. पर क्योंके उपनिषद् शब्द स्त्रीलिंग है, याके लिये भगवान्‌ने जो गाई उपनिषद्, वो गाई या अर्थमें, 'गीता' कह्यो जाय. अपन् समझें के 'गीता' एक नाम है. 'गीता' नाम नहीं है. 'गीता' ये तो उपनिषद्‌को विशेषण है. भगवान्‌के द्वारा गाई भई उपनिषद् वो गीता, सो भगवद्‌गीता. गीता भगवान्‌ने कही है वो परमात्माने नहीं कही है, ब्रह्मने नहीं कही है. अब ऐसो मत समझियो के कृष्ण परमात्मा नहीं है, कृष्ण ब्रह्म नहीं है. वो एक पहलुकी बात मैं समझा रह्यो हूं के कौंनसे पहलुसु यह बात आई है. हैं तो तीनों एक ही चीज. जो ब्रह्म

है सोई परमात्मा है. जो परमात्मा है सोई भगवान् है. तीनों एक हैं. जो निराकार है वो ही सर्वाकार है. जो सर्वाकार है वो ही पुरुषाकार है. तीनोंमें कोई अन्तर नहीं है पर वाके एकह्नएक रूप अलगह्नअलग हैं. जैसे सिक्का. सिक्काके कितने पहलु होंवे हैं. सिक्काके तीन पहलु होंवे. एक आगेको, एक पीछेको और एक तीसरो किनारी होवे है. किनारी अपनेकु ध्यानमें नहीं आवे. ऐसे ही एक पहलु जो ध्यानमें नहीं आवे है, वो परमात्माको पहलु है. अपन्‌कु ये समझमें आवे के वा तरफ अव्यक्त निराकार ब्रह्म है और या तरफ अपनेकु ये समझमें आवे के पुरुषोत्तम साकार कृष्ण भगवान् है. जो पहलु ख्यालमें नहीं आवे वो किनारीवालो पहलु परमात्माको जो के सर्वाकार है. वो किनारी ही तो वाको आकार घड़ रह्यो है. वो चाहे कांटा होय चाहे छाप होवे, वो किनारी नहीं होय तो सिक्काको आकार घड़्यो ही नहीं जा सके. चवन्नीको आकार किनारीके कारण है. दस पैसाको भी आकार वाकी किनारीके कारण है. वाकी छाप और कांटा तो वामें समाये भये है. अब जितने भी पैसा हैं उन सबकी किनारीपे ध्यान नहीं जावे है, वो बड़ी सूक्ष्म है. वापे ध्यान जावे तो पता चले के दोनों आकारन्‌कु घड़वेवाली तो किनारी है. ऐसे परमात्मा बीचकी स्थिति है. परमात्मासु मेरो मतलब क्या? सर्वाकार. वो बीचकी स्थिति है. या तरफ वाके निराकारको पहलु है. दूसरी तरफ वाको पुरुषाकार पहलु है भगवान्‌को. बीचमें जो किनारी है, जो सर्वाकार परमात्मा है वा किनारीपे अपनो ध्यान नहीं जावे. क्योंके अपने तर्कन्‌के एक डब्बामें ये समझमें आवे के कृष्ण पुरुषाकार है और दूसरे डब्बामें ये समझमें आवे के कोई भी आकार नहीं है, निराकार है. पर बीचको जो किनारीको पहलु है परमात्माको, ये असल रुपयाको आकार, पैसाको आकार, सारे पैसान्‌को आकार घड़वेवालो पहलु तो किनारीवालो पहलु है. यासु अब ध्यान रखियो के पैसाके तीन पहलु होवें हैं. दो पहलु नहीं कहने.

क्या सुन्दर बात ऋग्वेद कहे है : तुम्हारे भीतर रहके वो तुम्हारेपे शासन चला रह्यो है. बाहर रहके कोई डंडाके जोरपे शासन नहीं चला रह्यो है कुछ पता ही नहीं चले के शासन वो चला रह्यो है के तुम खुद वा तरहसु चल रहे हो? चला रह्यो है शासन वो पर अपन्‌कु लगे है के अपन् चल रहे हैं. अन्दरसु कोई कोईकु चलावे तो वाकु क्या पता चले? बाहरसु जैसे कोई खींचतो होय, जैसे बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी. तो अपनेकु बैल या घोड़ा गाड़ीकु खींचतो दिखाई दे पर मोटर्‌कु खींचवेवालो तो वाके अन्दर ही लग्यो भयो है. वाको तो अपनेकु पता ही नहीं चले के कौंन

चला रह्यो है? वो तो अपनेकु पता है के मोटर् कौंन चला रह्यो है पर कोई बाहरको आदमी आवे तो वाकु बड़ो अचम्भा लगे के मोटर्कु चला कौंन रह्यो है?

(जगत्को तमाशा)

अभी महीना भर पहले हम मुंबईके जुहूके किनारे घूमवे गये. वहां एक जापानकी बनी भई कार्, जो रिमोट् सिस्टम्सु चले, वाकु एक आदमी जोगीकी तरहसु बैठ्यो भयो, अपने पाससु वाकु रिमोट् कन्ट्रोलसु चला रह्यो थो. अब तमाम भीड़ खड़ी हो गई के कार अपने आप चल कैसे रही है? अब वो कार्के अन्दर ऐसी डिवाईस् लगी भई हती और वो वाकु रिमोट् कन्ट्रोल्सु चला रह्यो थो. वो मूड़वेको बटन् दबावे तो कार मुड़ जाये, रुकवेको बटन् दबावे तो कार रुक जाये, हमने कही के क्या भीड़ भई? हम भी देखवे लगे एक तरफसु. हम भी खड़े हो गये. इतनेमें एक तरफसु कुत्ता दौड़तो आयो और कारके पास खड़ो हो गयो. अब जैसे ही कार चली कुत्ता भाग्यो दुम दबाके. वो डर गयो के कार चली अपने आप तो कैसे चली? ये नयो जानवर कैसे पैदा हो गयो? अपन् जानवर नहीं हैं पर अपनेकु लगे के कोई नयो चलतो फिरतो जानवर होनो चईये. मोकु समझमें आई के अपनी सबकी ये ही गति है, तमाशा क्या देखनो चलो घर चलो. तो अपन् अपने घर भागके आ गये. आदमीकु नयो चलतो समझमें नहीं पड़े के अन्दरसु चल रह्यो है के बहारसु चल रह्यो है. नीचेंसु चल रह्यो है के ऊपरसु चल रह्यो है. एक तमाशा पैदा हो गयो. सब लोग खड़े होकर देखवे लग गये. भीड़ जुट गई. अपने-आप गाड़ी कैसे चल रही है? समझमें नहीं आवे. याही तरह जगत्को हर तमाशा चल रह्यो है. हर तमाशा याही तरहसु जुड़्यो भयो है. **''ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशे अर्जुन तिष्ठति भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया''** (भग.गीता.१८।६१). अपन् घबरा जायें के चल कैसे रह्यो है अपने आप? अन्दसु कोई चला रह्यो है, बाहरसु दिखलाई दे नहीं, कहांसु खींच रह्यो है? कौंन खींच रह्यो है?

(सर्वाकारकु समझनो मुश्किल)

वो हर आकारकु धारण करके, आकार धारण करवेवालो आकारमें ही छुप गयो है. कहीं और नहीं छिप्यो है. वो आकार ही वाके परदाके मानिन्द हो गयो है. या आकारमें वो छिप्यो भयो है, ऐसो जो पहलु है वा पहलुकु परमात्मा कह्यो जाय है. ये पहलु यदि नहीं समझोगे तो गीताको तात्पर्य कभी भी समझमें नहीं

आयेगो. ये थर्मामीटर् अपने पास रखो हर वक्त. सर्वाकार परमात्माकु तुम समझ लो. याई लिये भगवान्ने अपने खुदके पुरुषोत्तम होवेकु गीतामें कई बार कह्यो है. **''अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुम् आश्रितम् परं भावम् अजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्... जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्वतः त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म न एति माम् एति सो अर्जुन''** (भग.गीता.९।११, ४।९). ऐसे खुदके पुरुषोत्तम भगवान् होवेकी घोषणा कई बखत करी है. पर वो बात समझावेके लिये अर्जुनकु क्यों नहीं कही ''ले मैं तोकु दिव्यदृष्टि दऊं, देखले मैं पुरुषोत्तम हूं''. सीर्फ समझा दी, अर्जुन भी समझ गयो. अक्षरब्रह्मके लिये भी भगवान्ने कई बातें समझाई हैं. कई बखत अक्षरब्रह्मको निरूपण कियो. जो निराकारवालो पहलु है वा पहलुके लिये भी भगवान्ने कभी यों नहीं कही ''ले मैं तोकु दिव्यदृष्टि दऊं''. पर परमात्माको सर्वाकारवालो पहलु समझनो बड़ी मुश्किल बात है. कुछ समझमें नहीं आवे के एक समयमें एक व्यक्ति सर्वाकार कैसे हो सके है. वो किनारीवालो तत्वही निगाहन्सु गायब रहे है. बाकी कांटा और छाप तो सबकु दीखे है. निराकार सबकु लगे है. पुरुषाकार सबकु दीखे है पर सर्वाकारवालो पहलु गायब है. तो भगवान्ने कही **''दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्य मे योगम् ऐश्वरम्''** (भग.गीता.११।८). देख सर्वाकार मेरेमें है. वो एक पहलु समझमें आवे तो गीता समझमें आवे. ये विराट् समझमें न आतो होय तो अपनी गीताकु पढ़वे लायक दिव्यदृष्टि नहीं है, जब परमात्मा समझमें आवे तो गीता पढ़वे लायक दृष्टि है.

भगवान् कहें हैं **''दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्य मे योगम् ऐश्वरम्''** और ये कही **''भक्त्या तु अनन्यया शक्यम् अहम् एवंविधो अर्जुन ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तपः''** (भग.गीता.११।५४). जा बखत भगवान् खुद रथपे बिराजे भये हैं और दिव्य दृष्टिको दान दियो अर्जुनकु, वा बखत सर्वाकार परमात्मा अर्जुनकु दीख गयो और वोही कृष्ण दोनों सेनान्के बीच बैठ्यो भयो और कोईकु तो सर्वाकार दिखाई दियो नहीं सिवाय अर्जुनके. अर्जुनकु ही दीख्यो. दूसरे लोग तो ये समझ रहे थे के सारथी और रथीमें कोई गुफ्तगू चल रही है पर वो जो उनकी आपसकी बातें चल रही थी वा बातके दरम्यान कितनी बड़ी घटना घटित हो गई कुरुक्षेत्रमें. जा कृष्णकु अर्जुन ये समझ रह्यो हतो के मेरो दोस्त है और बड़ो ऊंचो दोस्त है, जाकु लोग पुरुषोत्तम माने हैं जाकु लोग भगवान् माने हैं, वो वाने खुद भी तो कही **''असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे सर्वम् एतद् ऋतम् मन्ये यद् मां**

वदसि केशव'' (भग.गीता.१०।१३). वो सब तो मान्यो जा सके है. अर्जुन भी मान सकतो थो. अर्जुनके भी जो बात पल्ले नहीं पड़ी थी, वो कोई किनारीवाले पहलुकी हती के जो पुरुषाकार दीख रह्यो है वो क्या सर्वाकार हो सके है? वो बात समझमें नहीं आवे के जो पुरुषाकार है वो क्या सर्वाकार हो सके है? अर्जुनकु भगवान्ने दिव्यदृष्टि दी. दिव्यदृष्टिसु अर्जुनकु ही दिखलाई दियो और सबन्कु दिखलाई नहीं दियो. तो प्रश्न होवे के वो परमात्मतत्व अपनेकु कैसे समझमें आयेगो? ये समझनो है तो भगवान्ने कही ठीक है. मैं एक दिव्यदृष्टि और तोकु दे रह्यो हूं **''भक्त्या तु अनन्यया शक्य अहम् एवंविधो अर्जुन ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप''** (भग.गीता.११।५४). बारहवें अध्यायसु पहले ग्यारहवें अध्यायको जो समअप् (उपसंहार) कियो है प्रभुने वामें ये कह्यो है **''सुदुर्दर्शम् इदं रूपं दृष्टवान् असि यद् मम देवा अपि अस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः''** (भग.गीता.११।५२). ये मेरो परमात्माको सर्वाकारताको जो रूप मैंने तोकु दिखायो, या रूपकु देखवेके लिये तो देवतायें तरसें हैं. ये बात तू समझियो अर्जुन. ये साधारण घटना नहीं हती के पुरुषाकारमें बैठे भयेको अनन्त आकारन्में दीखनो और जाकु दिखायो वाकु ही दीख्यो और बाकी सब ऐसे ही देखते रह गये. जाकु दीख्यो वाकु ही दीख्यो और कोईकु कुछ भी नहीं दीख्यो. तो प्रश्न उठे है ''क्या भगवान्नें अर्जुनकु मेस्मेराईज्ड् कर दियो थो?'' नहीं नहीं ऐसी बात नहीं है. ये बहोत बड़ी घटना हती जो अर्जुनकु समझमें आई और वाके लिये भगवान् कहे हैं **''देवा अपि अस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः. न अहं वेदैः न तपसा न ज्ञानेन न च इज्यया शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवान् असि मां यथा''** (भग.गीता.११।५२-५३). न वेदसु या बातकु पहेचान्यो जा सके है. न तप करवेसु. जब भी तुम वेद पढ़ोगे तो तुम्हारे जो तर्कके डब्बा हैं इन्हींमें तो वेदकु पूरोगे कहीं न कहीं, और डब्बा दो ही तरहके हैं. ये तो अपनेकु समझमें आवे है के एक निराकारको होवे है और दूसरी छलांग पैन्डुलम्की तरह वा तरफ गई तो वो ये समझमें आवे के अथवा कोई पुरुषाकार है. बीचकी स्थितिपे पैन्डुलम् कितनी देर टिके? पैन्डुलम् जो घड़ियालको चले है यों यों, वामें टक्को जो खटका है वो तो बीचमें ही होवे है. बाकी यहां और वहां तो खाली चक्कर मारतो रहे. वो बीचको खटका कोईकु समझमें नहीं आवे. वा तरफ जावे तब दीखे के गयो और या तरफ आवे तब दीखे के आयो. पर बीचमें जो खटका है वो ही अपनी निगाहसु ओझल हो जाये. एक बहोत नाजुक क्षण है के खट् भई नहीं के पैन्डुलम् वा तरफ गयो. निराकारसु साकारपे जावे एक बार. साकारसु उछल्यो तो सीधो निराकारपे जावे. पर ये जो बीचको खटका है वो समझमें आवे तो आवे.

जाके लिये भगवान् कहें हैं **''नाहं वेदैः न तपसा न ज्ञानेन न च इज्यया शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवान् असि मां यथा''**. न वेदसु, न तपसु, न दानसु, न यज्ञसु, कोई तरहसु ये खटका समझमें नहीं आयेगो. क्योंके जब भी तुम देखवेकी कोशिश करोगे तो जो तुम्हारे दिमागमें जमे भये डब्बा हैं तर्कके वो दिखायेंगे के या तो कुछ साकार होवे या निराकार. पर बीचकी किनारी गायब रहें हैं. वाके लिये भगवान् कहैं हैं **''भक्त्या तु अनन्यया शक्य अहम् एवंविधो अर्जुन ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप''**. अनन्यभक्ति होयगी तेरेमें तो ये बात तेरेकु समझते देर नहीं लगेगी के सर्वाकार भी मैं ही हूं, निराकार भी मैं हूं और पुरुषाकार भी मैं ही हूं.

दरअसल मैं समझूं हूं के भगवान्ने जो दिव्यदृष्टि दी होयगी वो दिव्यदृष्टि भक्तिकी, अनन्यरूपमें ही दी होयगी. तभी ये बात समझमें आवे है. बिना अनन्यभक्तिके परमात्मामें ये बात समझमें नहीं आ सके. क्योंके आदमी परमात्मासु डर सके है, परमात्माकु डरा सके है पर परमात्माकु भजनो ये बिना भक्तिके कैसे हो सके है? आदमीकु बहोत ज्ञानको जोश आयो तो कह देगो के जाओ, **''अहं ब्रह्मास्मि''**. आदमीमें बहोत कमजोरी आई तो, कहेगो ले भई ''तू ही है, तू ही है, तू ही है'' ऐसे करवे लग जाये. ''सर्वाकार तू है'' ये केहवेमें थोड़ो माद्दा चइये. मने दम फूले ऐसी बात है क्योंके सर्वाकारके अन्तर्गत जब सर्वको अर्थ अपन् करवे बैठेंगे तो चोर भी आयेगो, सन्त भी आयेगो, स्त्री भी आयेगी, पुरुष भी आयेगो, ज्ञानी भी आयेगो, अज्ञानी भी आयेगो, पापी भी आयेगो, पुण्यात्मा भी आयेगो, हाथी भी आयेगो, सुवर भी आयेगो. सब कछु आयेगो. अब ये बात कहवेमें चित्त घबरा जाये के अब क्या होयगो? इतनी चीजें जब आती होंय सर्वके अर्थमें. पर भगवान्ने अपने सर्वाकारमें सब कुछ दिखायो और या हद तक दिखायो के सर्वाकार विराट् स्वरूपमें अर्जुनकु अर्जुन भी दीख्यो, दुर्योधन भी दीख्यो, युधिष्ठिर भी दीख्यो, सारो महाभारत दीख्यो. जीवनकी शक्ति दीखी, मरणकी शक्ति दीखी, यमराज दीख्यो, सूर्य दीख्यो, सब कछु दीख्यो, मृत्यु दीखी, अमरता दीखी. या सबकु देखके आदमीको चित्त घबरा जाये. अर्जुनको चित्त ये देखते देखते घबरा गयो. बोल्यो ''महाराज गलती भई के तुम्हारे सामने सिफारिश करी के अपनो परमात्मरूप दिखाओ'' परमात्मरूप देखवेकी जरूरत नहीं है. परमात्मरूप बस समझवेकी जरूरत है. समझमें आ जाये तो बस बात बन गई. देखवे जायेंगे तो घबरा जायेंगे. **''दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता यदि भाः सदृशि सा स्याद्भासः तस्य महात्मनः''**

(भग.गीता.११।१२). मने जैसे हजार सूर्य एकसाथ उदित भये होंय, वाकी कैसी चमक हो सके है. एक सूर्यकु अपन् गलतीसु निहार लें थोड़ी देरके लिये तो फिर दुनियाकी कोई चीज दिखलाई नहीं देयगी. चारों और अंधेरा हो जायेगो. यदि हजार सूर्यन्पे कोईने दृष्टि टिका दी तो फिर क्या चीज दीखेगी? दीखनी बंद हो जायेगी क्योंके दृष्टिकी ताकत नहीं है के वा सर्वाकारताकु वो ग्रहण कर सके. पर एक शक्ति है के जा शक्तिके कारण ये बात अच्छी तरहसु समझी जा सके है और वो है **''भक्त्यातु अनन्यया शक्यम् अहम् एवंविधो अर्जुन ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप''** समझ सको हो, याकु देख सको हो, ये कोई मेस्मेरिज़म् नहीं हतो, ये कोई उपासनाके लिये कल्पित रूप नहीं हतो.

(क्या सर्वाकारता केवल उपासनार्थ है?)

कुछ लोग यों कहें के ये सर्वाकारता केवल उपासनार्थ है. परमात्माकी या तरहसु उपासना करो. जैसे पथ्थरमें अपन् भगवान्की उपासना करे हैं. जैसे सुपारीमें गणपति पधराके **''गणपतिम् आवाहयामि...पूजयामि...विसर्जयामि''** कर दे हैं. ऐसे ये परमात्माके सर्वाकारताकी केवल उपासना है? भगवान् कह रहे हैं ''नहीं ये उपासना नहीं है'' क्यों ''ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन'' ये तत्वदृष्टि है. ये दर्शन परमात्माकी सर्वाकारताको तत्वदर्शन है. **''प्रवेष्टुं च परन्तप...मत्कर्मकृन् मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स माम् एति पाण्डव''** (भग.गीता.११।५४-५५). जब तेरेकु वैर है कोई रूपन्सु. जब तक तेरे भीतर द्वेष है कोई रूपसु तब तक तो हर बखत तेरे हृदयमें ये खटका बन्यो रहेगो के घोड़ा तो परमात्मा हो सके है पर गधा कैसे हो सके है? अरे पर जा बखत परमात्माकी बात सोचोगे तो सारे नाम रूप वाके लिये भये हैं. घोड़ा और गधाके भेद तुमने खड़े किये हैं. परमात्माके खड़े किये भये नहीं हैं. घोड़ा और गधाके भेद अपन्ने मान लिये हैं परमात्मामें. **''समो अहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्यो अस्ति न प्रियः ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चापि अहम्''** (भग.गीता.९।२९). जो मेरो भजन करे है, जो मेरी भक्ति करे है, वाकु सब कुछ मेरेमें दिखलाई पड़ेगो. याई लिये ज्ञानमार्गको जो देखवेको तरीका और भक्तिमार्गको जो देखवेको तरीका है उनके बीच मौलिक अन्तर यहां आके स्फुट होवे है. ज्ञानी हर वस्तुमें भगवान्कु देखनो चाहे है और भक्त हर वस्तुकु भगवान्में देखनो चाहे है. यहां आके बातको अंतर पड़ गयो. ज्ञानी हर नाम-रूपमें ब्रह्मदर्शन करनो चाहे है. भक्त हर नाम-रूपकु परमात्मामें

देख रह्यो है. **''त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव. त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव''** ये भक्तिको मूल भाव है. तू मेरे लिये सब कुछ है. मेरी मां भी तू है, मेरो पिता भी तू है, मेरो भाई सखा पैसा सब कुछ तू है. सर्वरूपता अपने भीतर भक्ति होयगी तो दिखलाई देगी परमात्मामें और भक्तिमें जरा भी कमी आई तो सर्वरूपतामें चक्कर पड़ जायेगो. यों लगेगो के ये तो है पर ये कैसे हो सकेगो? जा भक्तकु स्नेह है परमात्माके प्रति वाकु परमात्मामें सब रूप दिखलाई देवे. जा रूपसु परमात्माकु देखनो होय, वो रूप परमात्मामें दिखलाई देयगो. सारे रूप दिखाई देंगे. पहली शर्त है भक्तिकी परमात्माको बोध. भक्ति करनी है तो परमात्माको स्वरूप अपनेकु अच्छी तरहसु समझनो चइये. यदि भक्ति नहीं करनी है, ज्ञान करनो है तो अक्षरब्रह्मको स्वरूप अच्छी तरहसु समझो, वो निराकार है. निराकार होते भये भी वाकी उपस्थितिके कारण सारो जगत् कैसे क्रीड़ा कर रह्यो है.

(ज्ञानयोग और भक्तियोग)

अक्षरब्रह्मको बोध समझो यदि भक्ति करनी है. जब अपन् ज्ञानयोग और भक्तियोग की तुलना कर रहे हैं तो ये बात समझनी चइये के ज्ञानयोग अक्षरब्रह्मसु परमात्मा तककी गति है. परमात्मासु पुरुषोत्तम भगवान् तककी मनकी गति भक्तियोग है. अक्षरब्रह्मसु जा बखत मन परमात्मा तक पहुंचे, तो ज्ञानयोगके रस्तापे मनकी बौद्धिक यात्रा है. जा बखत परमात्मासु हृदय पुरुषोत्तम तक पहुंचे, वो यात्रा है भक्तिकी. भक्तियुक्त हृदयकी यात्राको आरम्भबिन्दु परमात्मा है और वाको चरमबिन्दु पुरुषोत्तम है.

ज्ञानकी यात्रा अक्षरब्रह्मसु शुरु होवे है और परमात्मा तक पहुंचे है. जो ज्ञानी अक्षरब्रह्मसु ज्ञानकी यात्रा शुरु करके परमात्मा तक पहुंच नहीं सके है, वा ज्ञानीके ज्ञानमें कुछ विफलता रह जाये है. ऐसे भागवत अपनेकु समझावे है. **''ये अन्ये अरविन्दाक्षविमुक्तमानिनः त्वयि अस्तभावाद् अविशुद्धबुद्धयः आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्ति अधो अनादृतयुष्मदङ्घ्रयः** (भाग.पुरा.१०।२।३२). बहोत मेहनत पड़े है पहेले क्षर जगत्सु अक्षरब्रह्म तक यात्रा करनी ही बहोत मेहनतको काम है. उतनी मेहनत करके जो आगे पहुंच पाये है, अक्षरब्रह्मको साक्षात्कार कर पावे है और करते भये यदि परमात्मा तक पहुंच नहीं सक्यो, तो फिसलवेके

बहोत चान्सिस् हैं. परमात्मासु यात्रा शुरु करो, पुरुषोत्तम तक जानो है तो. बड़ी सरल यात्रा है. कोई तकलीफ नहीं है. लोजिकली कभी याकु सोचो. देखो जो सर्वाकार है वाकु पुरुषाकार होवेमें कायको जोर पड़ेगो? जो सर्वाकार है वाकु अपन्ने पुरुषाकार और मान लियो.

एक **'ज़ेनो'** करके फिलोसोफर् भयो यूनानको. वो यों कहतो के यदि घोड़ान्कु मूर्ति बनानी आती होती तो घोड़ा परमात्माकी मूर्ति घोड़ा जैसी बनाते. मनुष्यकु मूर्ति बनानी आवे है. या लिये मनुष्यने भगवान्की मूर्ति मनुष्य जैसी बनाई. न जाने कितने लोग नास्तिक हो गये ऐसी बात सोच सोचके. वाह क्या बात कही है पर कभी परमात्माके और भगवान् के जो कन्सेप्ट्स् हैं, उनकु जोड़के देखो तो अपन्कु पता चले के यदि घोड़ा खुदके जैसी मूर्ति बनावे तो क्या खोटो है? **''समो नागेन समो मशकेन''** (बृह.उप.१।३।२२). वो हाथीके बराबर भी है और मच्छरके बराबर भी है, यों उपनिषद् कहे है. हम तो कहें के घोड़ाकु घोड़ाके रूपमें ही भगवान्की पूजा करनी चइये. मनुष्यकु मनुष्यके रूपमें करनी चइये. हाथीकु हाथीके रूपमें करनी चइये. याई लिये अपनी पुराण कथान्में परमात्माके सारे रूप दिखाये गये हैं. हंसावतार भी है. कच्छपावतार भी है, मत्स्यावतार भी है. अरे और तो और वाराह अवतार भी है, जाकु अपन् गन्दो प्राणी माने हैं. भगवान् कौंनसो रूप धारण नहीं कर सके है? ये सारे अवतारन्की लिस्ट्पे ध्यान दोगे तो पता चलेगो के वो परमात्मलीलाकु ही भगवल्लीलामें घटित करके बता रहे हैं. जैसे थोड़ो कठिन लगेगो आपकु ये विषय पर समझोगे तो कोई कठिनाई नहीं है. जैसे अपन् युक्ति देते होंय, तो युक्ति देवेके लिये ऐसे कह्यो जाये के ऑल् मेन् आर् मोर्टल्. सोक्रेटीज़् इज़् मेन्. देअर्फोर् सोक्रेटीज् इज़् मोर्टल्. हर आदमी मरणशील है. सुकरात आदमी है. यासु सुकरात मरणशील है. ऐसो निष्कर्ष अपनेकु लेनो है तो वाके पहले अपनेकु मेजर्प्रिमाईज़् होनी चइये के ऑल् मेन् आर् मोर्टल्. ऐसे पुरुषाकार भगवान् साक्षात् परमतत्त्व है, ये निष्कर्ष लेनो होय, तो मेजर्प्रिमाइज़् परमात्मा है. वो सर्वाकार है. वो सर्वाकार है अतः वो पुरुषाकार भी हो सके है. पर यदि परमात्मतत्त्व समझमें नहीं आयो तो हर वक्त मनमें चक्कर चलतो रहेगो के पुरुषाकार कैसे प्रकट भयो

(भक्ति=परमात्माकु समझके भगवान्कु चाहनो गीताको मुख्यसिद्धान्त)

हमारे बम्बईमें ये जो कौभाण्ड चल रहे हैं भागवत सप्ताहके, वामें एक शास्त्रीजी कहें के ''शुद्ध सोनानो घाट घड़ाय नहीं, थोडु तांबु उमेरवुं पड़े त्यारे घाट घड़ाये. ऐवी रीते शुद्ध ब्रह्मनो आकार घड़ाय नहीं, आमां थोड़ी माया उमेरवी पड़े तो आकार घड़ाय'' अब बात ऐसी नहीं है भई सर्वाकार परमात्मापे ध्यान दो तो पता चलेगो के पुरुषाकार होवेमें वामें कौंनसो जोर पड़ेगो? ये पुरुषाकार होवेमें कोई जोर नहीं पड़ेगो. क्योंके सारे आकार अन्तमें वाके ही है. जब सारे आकार वाके हैं तो पुरुषाकार भी वाको है. बहोत सरल यात्रा हो जाये है बुद्धिसु विचारो तो, हृदयसु विचारो तो. भक्तिकी जो नवविध प्रक्रियायें हैं, उनमें विचारो श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन-भक्तिके जो नौ पहलु हैं, उन पहलुन्में विचारो. एक बखत ये समझमें आ जाये के सब आकार परमात्माके हैं, तो समझते देर नहीं लगेगी के पुरुषाकार भी परमात्मा ही है. ये बात बहोत साफ हो जाये है. यदि परमात्मासु भक्तिकी यात्रा शुरु नहीं भई और भगवान्सु शुरु भई तो कुछ गड़बड़ होयगी. क्योंके चक्कर पड़ जायेगो दीमागमें. याई लिये महाप्रभु आज्ञा करे हैं **''माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तुसुदृढ़ोसर्वतोधिकस्नेहोः भक्तिइतिप्रोक्तः''** परमात्माको माहात्म्य समझो जो पुरुषाकार भगवान् कृष्ण हैं या जाकु जो भगवान् अच्छो लगतो होय, वा आकारके भगवान्की भक्ति करो. तुम्हारी यात्रा सरल हो जायेगी. क्योंके भक्ति परमात्माकी करनी बड़ी मुश्किल है. सर्वाकारकी भक्ति कर पानी बड़ी मुश्किल है. सर्वाकारकु समझनो सरल है पर सर्वाकारकी भक्ति करनी बड़ी मुश्किल है. आदमीकु स्नेह अपने आकारवालेसु ही हो सके. जैसे ज़ेनोने तर्क दियो के घोड़ा यदि मूर्ति बनानो जानतो तो वो ईश्वरकी मूर्ति घोड़ाके रूपमें बनातो. ये सच बात है के घोड़ाकु जितनो प्रेम घोड़ासु होयगो, उतनो मनुष्यसु नहीं होयगो क्योंके मनुष्य निरन्तर वाकु चाबुक मारे. घोड़ाके मनमें मनुष्यकी इमेज् बहोत खराब है के ये खाली चाबुक मारवेके अलावा कोई धन्धा करे नहीं है. सिवाय दौड़ावेके अलावा कोई काम करे नहीं है. सिर्फ कम घास देवेके अलावा कोई अच्छो काम करे नहीं है. यासु सबसु बुरो प्राणी घोड़ाकु मनुष्य ही लगतो होयगो. जैसे अपन्कु सबसु बुरो प्राणी कौंन लगे? अपनेकु बुरो प्राणी चूहा लगे जो अनाज खा जाये, अपनेकु बुरो प्राणी मच्छर लगे जो अपनो लोही पी जाये. ऐसे घोड़ासु पूछो के सबसु बुरो प्राणी कौंन? वो मच्छर नहीं कहेगो, वो कहेगो के सबसु बुरो प्राणी पृथ्वीमें कोई पैदा भयो है तो वो मनुष्य है जो के निरन्तर कम घास दे और खूब दौड़ावे. आदमीके अपने अपने कन्सेप्ट्स् हैं. मच्छरकु पूछो के सबसु अच्छो प्राणी कौंन? तो वो कहेगो के मनुष्यसु अच्छो प्राणी कोई नहीं. जब डंक मारो तो स्वाद ही स्वाद आवे.

हरिश्चंद्रजी कहें के ''रसगुल्ला बासोंधीकी बात नित्य नई'' वैसे एक एक सामग्री वाकु मिले तो कहे के मनुष्य खूब बढ़े, खूब वाकु खुराक मिले, खूब स्वाद आवे, क्योंके वाकी खुराक मनुष्य है. वाकु मनुष्य अच्छो लगेगो.

बम्बईमें एक कन्वेंट् स्कुल है. वहांको एक हिन्दीको टीचर् बता रह्यो थो के वाने बच्चानकु कही के गायके ऊपर एक निबन्ध लिखो. छोकरान्ने निबन्ध लिख्यो के गाय बड़ो स्वादिष्ट प्राणी है. वहां सब सामिष बच्चा पढ़ते हते. तो वहांके टीचर्ने मोकु लाके बतायो के देखो गायकी महत्ता कितनी के गाय बड़ो स्वादिष्ट प्राणी है. हमकु याद आयो के शुरुआतमें जब अफ्रीकामें वहां पादरी लोग गये ईसाई धर्मको प्रचार करवे. एक पादरीके बाद दूसरो पादरी गयो. वाने पूछी के ''पहलेवालो पादरी कैसो हतो?'' उन्ने कही के ''बहोत मीठो हतो?'' वाने कही खतरा है यहां तो. वा गरीब पादरीकु ही खा गये. आदमीकु क्या अच्छो लगे और क्या अच्छो नहीं लगे. ये बड़ी जटिल समस्या है. अरे एक बखत सर्वाकारताको स्वरूप समझो, वो तो समझ सको हो पर सर्वाकारताके रूपमें भक्ति कर पानी बहोत कठिन है.

याई लिये अर्जुनने भी जिज्ञासा प्रकट करी के महाराज सर्वाकारता दिखाओ और जैसे ही भगवान्ने सर्वाकारताको स्वरूप दिखायो तो वाईके साथ अर्जुनने स्पष्ट अपनो निर्णय दे दियो **''पश्यामि देवान् तव देव देहे सर्वान् तथा भूतविषेशसंघान् ब्रह्माणम् ईशं कमलासनस्थम् ऋषींश्च सर्वान् उरगांश्च दिव्यान्. अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतो अनन्तरूपम् नान्तं न मध्यं न पुनः तव आदिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप''** (भग.गीता.११।१५-१६). आपने जो स्वरूप दिखायो वो है बड़ो मजेदार पर भगवान् मेरी तकलीफ भी आप समझो **''द्रंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास''** (भग.गीता.११।२५). ये सर्वरूपमें ऐसे ऐसे भयंकर रूप दिखाये जासु सारो अहंकार विगलित होवे लग गयो के मैं मारूंगो नहीं. क्योंके अर्जुन ये सोच रह्यो हतो के मैं भगवान्के साथ चर्चा करके निर्णय करूं के मारनो उचित है के अनुचित है? वहां तो सारे मरे भये दिखलाई दिये विराट स्वरूपमें तो अर्जुनकु जो अहंकार हतो के मैं नहीं मारूंगो. अर्जुनकु जो अहंकार हतो के मारूं ये कहवेमें भी अहंकार है और नहीं मारूं कहवेमे भी अहंकार है वो

दोनों तरहके मने प्रवृत्तिके अहंकारकी और निवृत्तिके अहंकारकी फजीहत वाने विराटके स्वरूपमें देखी. मैं क्या मारूंगो? मैं कौनकुं मारूंगो? कौन मारेगो और कौन मरेगो? कुछ समझमें नहीं आवे. एक बखत विराटको रूप दीखे और अक्कल चकरा जाये. वाने कही **''अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैव अवनिपालसंघैः भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रः तथा असौ सह अस्मदीयैः अपि योधमुख्यैः वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि''** (भग.गीता.११।२६-२७). ये सब वाकु दिखाई दिये के जिन्-जिन् योद्धान्को मरनो भवितव्य है उन् सब योद्धान्के माथा भगवान्के भयंकर दांतन्में चाबे जा रहे हैं. ये भयंकर दृश्य देखके अर्जुनने कही भई बहोत हो गयो अब आगे नहीं देखनो है. **''विज्ञातुम् इच्छामि भवन्तम् आद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्''** (भग.गीता.११।३१). अब ये मत दिखाओ. मेरेकु तो वोई **''किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तं इच्छामि त्वां द्रष्टुम् अहं तथैव तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते''** (भग.गीता.११।४६). कहीं द्विभुजेन ऐसो भी पाठ लियो है पर सच्चो **'चतुर्भुजेन'** पाठ है. याको खुलासा भागवतके बिना हो नहीं सके. ये हजार हाथ मोकु मत दिखाओ. मोकु तो चार हाथ तुम्हारे बड़े अच्छे लगे देखवेमें जो भगवान्के हाथ हते. परमात्माके हजार हाथ देखवेके लिये नेत्रमें तो ताकात चईये. परमात्माके सर्वरूपकु निहारवेके लिये हृदय कितनो बड़ो चईये, ये सोचो

महाप्रभुने याके लिये बड़ो सुन्दर खुलासा दियो है, समझो बुद्धिसु और चाहो हृदयसु. हृदयसु चाहो भगवानकु. परमात्माकु समझो बुद्धिसु, क्योंके परमात्माकु हृदयसु चाहनो ये कोई सामान्य बात नहीं है. ये समझवेके लिये परमात्माकु हृदयसु चाहवेके लिये तो हृदयकी इतनी विशालता चईये के परमात्मा ही परमात्माकु हृदयसु चाह सके. जीवात्माके बसकी बात नहीं है के परमात्माकु हृदयसु चाह सके. पर परमात्माकु समझ्यो जा सके है अच्छी तरहसु. परमात्माको माहात्म्य समझके सुदृढ़ सर्वतोधिक स्नेह भगवान्सु कियो जा सके है. याके लिये ये गीतामें जहां भक्तियोग शुरु भयो वा भक्तियोगके प्रारम्भमें मने द्वादशाध्याय भक्तियोग है तो ग्यारहवें अध्यायमें माहात्म्यज्ञान समझायो गयो है विराटदर्शनके द्वारा. माहात्म्य समझो परमात्माको और ये जो पुरुषरूप भगवान् रथपे बैठ्यो भयो है, वाकु पुरुषोत्तम समझवेमें देर नहीं लगेगी.

ये गीताको मुख्य सिद्धान्त है. ये गीताको मुख्य सिद्धान्त जरूर समझनो चईये. क्यों? या लिये के भक्ति अपन् भगवान्की करे हैं पर भगवान्की भक्ति करवेके पहले यदि परमात्माको ज्ञान अपनेकु नहीं है, तो भक्तिमें कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ हो जायेगी. क्या गड़बड़ हो जायेगी?

हमारेकु एक बार एक व्यक्ति मिले. बहोत रो रहे थे. हमकु कही ''महाराज बीस साल हो गये भगवान्की सेवा कर रह्यो हूं. अभी तक ये बोले नहीं हैं'' मैंने कही ''बोले नहीं तो क्या तुमने पहलेसु शर्तनामा कियो थो के बोले तो भक्ति करोगे?'' तो बोले ''शर्तनामा तो नहीं कियो थो'' मैंने कही ''फिर तुमने सेवा कैसे शुरु कर दी शर्तनामाके बिना? पहले लिखते शर्त के तीन चार साल टाईमलिमिट् देनी चइये थी भगवान्कु के इतने सालमें बोलेंगे तो भक्ति चालु रखेंगे नहीं तो शर्तनामा केन्सल् करेंगे. जब तुमने शर्तनामा किये बिना भक्ति शुरु कर दी और अब पछता रहे हो के इतने सालसु जाकी मैं सेवा कर रह्यो हूं वो गूंगो मूंगो है'' मैंने कही ''अरे भई वो गूंगो मूंगो नहीं है. तेरी सब बात सुन रह्यो है वो'' तो बोल्यो ''सुनतो होयगो पर मेरेकु जबाब नहीं दे तो मेरे लिये गूंगो मूंगो है''. मैंने कही बात ठीक है क्योंके भक्ति अपन् कर रहें हैं परमात्माकु पहचाने बिना. परमात्माकु नहीं पहचाने या लिये अपनेकु लग रह्यो है के जाकी अपन् भक्ति कर रहें हैं वो गूंगो मूंगो है. वो परमात्मा गूंगो मूंगो नहीं है. वो सब कुछ सुन रह्यो है. परमात्मा निरन्तर तुमसु बोल रह्यो है. पर थोड़ो ध्यान देवेकी जरूरत है. ध्यान नहीं दोगे तो गड़बड़ हो जायेगी. ध्यान नहीं दोगे तो चक्कर पड़ जायेगो. एक रूपमें तुम वाकु पूजोगे और दूसरे रूपमें वाकु गाली देते होओगे. तुमकु खुद समझ नहीं पड़े.

(दुर्विदग्धकी दुविधा)

एक मजेदार कथा सुनाऊं माधवानन्द सरस्वतीके दो शिष्य हते. एक शिष्य हतो विदग्ध और दूसरो दुर्विदग्ध. दोनों माधवानन्द सरस्वतीकी सेवामें बड़े परायण हते. दोनों आपसमें झगड़ते गुरुकी सेवाके लिये. माधवानन्द सरस्वतीने कही काहेकु झगड़ो. अपने आश्रममें उन दोनोंकी सब व्यवस्था ठीक ठीक कर दी. ये काम तुम्हारेकु करनो, ये काम तुम्हारेकु करनो वगैरह वगैरह. झगड़ा फिर भी खत्म नहीं होतो. कोई न कोई काममें झगड़ा चलतो ही रहतो. अन्तमें उनने चरण दबावेकी सेवामें कही के एक पग तुम दाब्यो करो दूसरो पग तुम दाब्यो करो. उन्होंने कही

ठीक है. अब एक पग विदग्धने पकड़्यो और दूसरो पग दुर्विदग्धने पकड़्यो. एक दिन ऐसो चक्कर पड़्यो के दुर्विदग्ध जो पग दाबतो थो, वा पगपे जो पग विदग्ध दाबतो थो वो माधवानन्द सरस्वतीने रख दियो. रखते ही दुर्विदग्धने कही ''ऐ पग हटाव'' विदग्धने कही ''मेरो पग थोड़े ही है. गुरुजीको पग है'' वाने कही ''कोईको भी पग होय हटाओ.'' विदग्धने कही ''मैं कैसे हटाऊं'' दुर्विदग्धने कही ''नहीं हटाओ तो'' ले डण्डा वा पगपे मार्यो. अब माधवानन्द रोवे पग पकड़के के मैंने क्या गुनाह कियो? तो दुर्विदग्ध बोल्यो ''मेरे पगपे ये पग क्यों आयो?'' माधवानन्द बोल्यो ''पग तो दोनों मेरे ही हैं वो विदग्धको थोड़े ही है'' फिर भी दुर्विदग्धकु ये बात समझमें नहीं आवे और वो कहे ही जाये ''नहीं, नहीं, वाको पग मेरे पगपे नहीं आनो चईये''.

(तस्माद् योगी भव अर्जुन)

आदमी झगड़ा करवे लग जाये के ये साकारब्रह्मकी बात हमारे सामने मत करो निराकार ब्रह्मकी बात करो. दूसरो कहे के निराकारकी काहेको करो साकारकी करो. अरे भाई दोनों पग तो वाके हैं. परमात्माकु समझोगे तो पता चलेगो. वो दोनों पग तो वाके ही हैं. साकारको पग और निराकारको पग अलग अलग थोड़े ही हैं पर दुर्विदग्ध और विदग्ध कु समझमें नहीं आवे. उनमें झगड़ा चलतो ही रहे के ये यहां क्यों आयो और वो वहां क्यों आयो. झगड़ा खतम होवे नहीं. यदि तुम परमात्माकु समझोगे तो समझ पड़ेगो के तुम अपने पग जो के माधवानन्दको है वाकु दाबो वामें कोई बुराई नहीं है, जैसे चाहो वैसे दाबो पर गलतीसु एक पग दूसरे पगपे आ जाये तो डण्डा तो मत मारो बेचारेकु. क्योंके अन्तमें हैं तो दोनों पग वोई गरीबके. वो सर्वाकारता भी वाकी है, पुरुषाकारता भी वाकी है और निराकारता भी वाकी है. डण्डाबाजी चले विदग्ध और दुर्विदग्धमें अरे ये क्यों ऊपर आयो? दूसरो कहे मैंने कब ऊपर धर्यो? असल बात तो ये है के जग तो बौराना है. अपन् परमात्माकु नहीं समझें तो अपनेकु या बातको समाधान नहीं मिलेगो. ये साकार निराकारके झगड़ा हैं क्या? क्यों झगड़ा हो रह्यो है? क्यों डण्डा मार रह्यो है एक-दूसरेकु? अरे भई जो पग अक्षरब्रह्मको तुमकु मिल्यो तो ज्ञानयोगमें मस्त हो जाओ. तुमकु पुरुषोत्तमको पग मिल्यो तो भक्तियोगमें मस्त हो जाओ. योगको मतलब जाकु तुमने पकड़्यो वापे पूर्णतया ध्यान रखो पर दूसरेकु डण्डा मत मारो. तब तो योग है. तुमने तो एककु पकड़ लियो और दूसरेकु डण्डा मार्यो. तुम ज्ञानी हो

सको हो, तुम भक्त हो सको हो पर तुम ज्ञानयोगी नहीं भये, तुम भक्तियोगी नहीं भये. योगी और ज्ञानयोगी कब कहवायेगो? के जब तुम्हारी निष्ठा निराकारपे है तो चैनसु निराकारकी उपासना करो. **''ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते''** कोई बुराई नहीं है पर साकारकु डण्डा मत मार दीजो. यदि तुम भक्त हो तो चैनसु साकारकी भक्ति करो वामें कोई बुराई नहीं है निराकारको चिन्तन कभी मत करो वामें कोई बुराई नहीं है पर निराकारके पगपे डण्डा तो मत मारियो भले आदमी तुम भक्त भये और निराकारके पगपे डण्डा मारोगे तो वो लगेगो तो वो परमात्माकु ही डण्डा. वो पग तुमने अपनो समझ लियो है, ये पाछी तुम्हारी अहंता ही काम कर रही है. वो ही नशा काम कर रह्यो है. जो मैंने आपकु कल बतायो के शास्त्रीजी ज्ञानकी बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे. ज्ञानकी बात कर रहे थे के ''देहपे हंसते हो के आत्मापे हंसते हो?'' पर जो भांग पी रखी थी अहंता-ममताकी वाकी डकार आये बिना रहेगी नहीं. ओहिया ओहिया करते खुद हंसते जा रहे थे और पूछ रहे थे के ''मेरेपे हंसते हो के देहपे हंसते हो? देहपे हंसवे जैसो क्या है? ये तो क्षणभंगुर है. आत्मा तो निराकार है उसपे कैसे हंसा जा सकता है?'' अरे तेरी भांगपे हंस्यो जा रह्यो है, न देहपे हंस्यो जा रह्यो है न आत्मापे हंस्यो जा रह्यो है. हंसी आ रही है या अहंता-ममताकी डकारपे जो के ज्ञानको बघार लगाते भये भी छूटे नहीं, जो डकार है वो भक्ति करते भये भी छूटे नहीं. या लिये भगवान् कहे रहे हैं **''तस्माद् योगी भव अर्जुन''** . ज्ञानी मत बन ज्ञानयोगी बन. मने तेंने यदि निराकारकु पकड्यो है तो वाकु अच्छी तरहसु पकड़ ले. वा पकड़वेमें कोई ढील मत रखियो पर दूसरे साकार पक्षकु डण्डा मत मार दीजो. तेंने यदि साकारकु पकड़्यो है तो वाकु अच्छी तरहसु एकभक्ति होके पकड़ ले. वामें ढील मत रखियो पर निराकारकु डण्डा मत मार दीजो. ज्ञानयोगी बन, या भक्तियोगी बन. **''तस्माद् योगी भव अर्जुन. योगीनामपि सर्वेषाम् मद्गतेन अन्तरात्मना श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः.''**

(अर्जुनको सन्देह/अक्षरको रहस्य)

अर्जुन पूछ रह्यो है **''एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते ये चापि अक्षरम् अव्यक्तम् तेषां के योगवित्तमाः''** एक रहस्य अभी भी आपने खुलासासु नहीं कह्यो और वो रहस्य ये है यहां गीतामें भगवान्ने जहां अन्तर्यामीको निरूपण कियो है, परमात्माके पहलुको निरूपण कियो है, वहां वहां भगवान्ने एक बात

बहोत सावधानीसु कही है के परमात्मा मैं हूं, परमात्मा मैं हूं. हर बखत परमात्माकु 'मैं' तरीके सम्बोधन कियो और जब भी अक्षरके बारेमें बात कही तो वाकु 'मैं' तरीके सम्बोधन नहीं कियो. बहोत कभी जोश आयो तो बस इतनी बात कही के वो मेरो धाम है पर अक्षरकु कभी 'मैं' नहीं कह्यो. अर्जुनके मनमें सन्देह आ गयो के ये पक्ष परमात्मावाले पक्षकु तो आप 'मैं-मैं' कह रहे हो पर अक्षरब्रह्मके लिये 'मैं' क्यों नहीं कह रहे हो? भगवान्को किस्सा बड़ो साफ है. भगवान् कह रहे हैं जब अव्यक्त है तो वाकु 'मैं' नहीं कह्यो जा सके. **''मया ततम् इदं सर्वं जगद् अव्यक्तमूर्तिना.''** मने 'अमूर्ति' नहीं कह रहे हैं भगवान् यहां **'अव्यक्तमूर्ति'** कह रहे हैं. मैंने अपनी मूर्तिकु छिपाली है, अव्यक्त बना दी है. जब अव्यक्त बना दी तो कायेकु वाकु मैं 'मैं' कहूं? भगवान् या लिये 'मैं' नहीं कह रहे हैं. वो कह रहे हैं ''तू अपनेकु ज्ञानयोगी कह रह्यो है तो तू अपनेकु 'मैं' मत कहियो. 'मैं' छोड़ दे. ब्रह्म ही ब्रह्म रख'' जब ब्रह्महीं ब्रह्म रहेगो तब तो बात बन जायेगी और जब 'मैं ब्रह्म' रह्यो तो ब्रह्म कमजोर पड़ जायेगो और 'मैं' जोर पकड़ जायेगो और फिर अहंताकी डकार आ जायेगी. भगवान् तो अपनी बातमें कनसिस्टेन्टली जब अव्यक्तको निरूपण कर रहे हैं तो 'मैं' नहीं कह रहे हैं, हर बखत कह रहे है **''येतु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते.''** जैसे अक्षरब्रह्म कोई दूसरो ब्रह्म होय और ये दूसरो ब्रह्म होय. पर भगवान् याकु 'मैं' लगाये बिना बोल रहे हैं. वाको मुख्य कारण ये है. भगवान् जब वाकु अव्यक्त कह रहे हैं तो 'मैं' कहके व्यक्त क्यों कियो जाय? वाकु 'मैं' कहके व्यक्त करूंगो तो अक्षर अव्यक्त नहीं रह जायेगो. या हेतुसु भगवान्ने वाकु 'मैं' नहीं कह्यो. अर्जुनने बस यहांसु बात पकड़ी है के तुम वाकु 'मैं' नहीं कह रहे हो, याको कारण क्या बताओ? वो यों पूछ रह्यो है के ''जब तुमने अपने सर्वाकारताके रूपकु हर वक्त 'मैं मैं' कहके गीतामें कह्यो है पर जब भी अक्षरब्रह्मकी बात आई तब वाकु 'मैं' नहीं कह्यो, कुछ चक्कर है क्या? या चक्करको खुलासा भगवान् आगे जाके देंगे. आगे जाके श्लोक आ रह्यो है **''ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः''** मैंने अभी वा अक्षरकु 'मैं' नहीं कह्यो पर ये बात मत समझियो के अक्षरकी उपासना करवेवालो मोकु प्राप्त नहीं करेगो. अक्षरोपासककु भी प्राप्त तो मैं ही होऊंगो पर वाके लिये 'मैं' कहवेके लिये तैयार नहीं हूं. क्योंके जब मैंने खुदकु अव्यक्त बना दियो अपने आपकु तो फिर 'मैं' क्या कहनो? जैसे सूर्य. सूर्यको पिण्ड गोल है, साकार है. पर सूर्यको जो प्रकाश चारों ओर फैले है, वामें आकार है? वामें तो आकार नहीं है. वो तो निराकार चार्यो ओर फैल्यो भयो है और पुरुषोत्तम साकार है सूर्यके गोल पिण्डकी

तरह, दोनोंमें अंतर क्या है? अंतर कछु भी नहीं है. वो प्रकाशको आश्रय. वेदव्यासजी कहे हैं ब्रह्मसूत्रमें **''प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात्''** (ब्र.सू.३।२।२८). मने भगवान् और अक्षरब्रह्मको जो सम्बन्ध है, पुरुषोत्तम और अक्षरब्रह्मको सम्बन्ध अथवा पुरुषाकार भगवान्को और निराकार अक्षरब्रह्मको सम्बन्ध कैसो है जैसे सूर्य और सूर्यके प्रकाशको सम्बन्ध है. सूर्य गोलाकार है और चार्यो और फैल्यो भयो प्रकाश निराकार है. पर भगवान् इतने कनसिस्टेन्ट् हैं के जा बखत वो निराकारकी बात करें तब वाकु 'मैं' नहीं लगावें. अपन् जब ब्रह्मकी बात करें तब भी वामें 'मैं' लगाये बिना माने नहीं. 'मैं' लगावें और पाछे फिर अहं जोर पकड़ जाये. भगवान् वाकी बड़ी सावधानी रखके वामें 'मैं' नहीं लगा रहे हैं. वहांसु अर्जुनकु प्रश्न पैदा भयो **''एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः''** महाराज या बातको खुलासा दो. अभी तक अक्षरब्रह्मकु आपने अहं करके क्यों नहीं कह्यो? हर वक्त सर्वाकार रूपकु 'अहं' कह रहे हो. सर्वाकार रूपकु 'मैं' कह रहे हो. हर वक्त पुरुषाकार रूपकु 'मैं' कह रहे हो, **''जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वतः... अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुम् आश्रितम्''** (भग.गीता.४।९,९।११). मेरो वो अपमान करे हैं. मैं पुरुषाकार रूपमें प्रकट भयो तो मोकु साधारण मनुष्य समझें हैं लोग. मूर्ख हैं. पर अभी तक अक्षरब्रह्मकु 'मैं' कहके क्यों नहीं सम्बोधन कियो? क्या गड़बड़ है? या बातको खुलासा दो.' यहांसु खुलासा शुरु हो रह्यो है भगवान्को. **''मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः''** वो मोकु युक्ततम लगे हैं. **''ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते. सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च कूटस्थम् अचलं ध्रुवम्. सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः**. वो भी प्राप्त तो मोकु ही करवेवाले हैं, ऐसो मनमें संकोच मत रख के वो कोई दूसरी वस्तु है. अक्षरब्रह्म भी मेरो ही एक पहलु है. अन्तर सिर्फ इतनो ही है के जितनो सूर्यपिण्ड साकार है वो एक ठिकाने है और सूर्यको चारों ओर फैल्यो भयो प्रकाश निराकार है. अन्तर मेरेमें और अक्षरब्रह्ममें सिर्फ इतनो है. या अन्तरकु समझ ले तो बात बन जायेगी. या अन्तरकु नही समझ्यो तो ज्ञानयोग और भक्तियोगके मूल तारतम्यकु समझवेमें चकरा जायेगो. या बातकु समझवेकी कोशिश करे, करके भगवान्ने भक्तियोग प्रारम्भ कियो है.

पांचवें दिनको प्रवचन

(आरम्भवाद विवर्तवाद और परिणामवाद)

''मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते. श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः.'' कल अपन्ने ये बात समझवेको प्रयास कियो के एकही तत्त्वकु तीन नाम दिये गये हैं **''ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते''** ब्रह्म परमात्मा भगवान्. यामें **यः क्रीडति** जो क्रीडा करे है, जो स्वयं क्रीडा करे है, या **जगत् भूत्वा क्रीडति** मने जो जगत्के नामरूप और कर्मन् कु धारण करके क्रीडा करे है **यतः जगत् क्रीडति** या नामरूपात्मक जगत् जाकी सन्निधिसु क्रीडा करे है. कलके और परसोंके दोनों प्रसंग मिलाके अपन्ने ये देख्यो थो के तीन तरहके कारण होवें हैं. एक जैसे रस्सीपे सांप पैदा होवे, एक जैसे सोनामेंसु ईयरिंग् या अंगूठी पैदा होवे है, एक जैसे कुम्हार घड़ा पैदा करे है. यहां कुम्हार घड़ामें मट्टीकी तरह लग नहीं जाये है. अलगसु एक कार्य पैदा होवे है वाको आरम्भ करवेवालो 'कर्ता' या 'कारण' कह्यो जाय. जहां रस्सीपे सांप पैदा होवे, वाकु 'अधिष्ठान' कह्यो जाय. जहां सोनामेंसु कुंडल या कड़ा या ईयरिंग् बनें वहां 'उपादान' कह्यो जाय. इन दोनों बातनकु, कलकी और परसोंकी मिलाके देखो, तो ये बात स्फुट हो जायेगी के जा बखत अपन् 'अक्षरब्रह्म' कहे हैं तो वामें अधिष्ठानता जैसी बात आवे है, जैसे रस्सीपे सांप. जा बखत अपन् 'परमात्मा' कहे हैं तो उपादानता जैसी बात आवे है, जैसे सोनामेंसु कुंडल, कड़ा बनायो. जा बखत 'भगवान्' कहे हैं वा बखत ऐसो स्वरूप आवे है जैसे कुम्हारसु घड़ा पैदा होवे है मने कर्ता. उपादान, जैसे दूधमेंसु दही बन्यो तो दूधकु 'उपादान' कह्यो जाय. दहीकु वाको 'कार्य' कह्यो जाय. सोनामेंसु कुंडल बन्यो तो सोनाकु 'उपादान' कह्यो जाय, कुंडलकु 'कार्य' कह्यो जाय. जैसे सीपपे चांदीको भ्रम हो जाये या जैसे रस्सीपे सर्पको भ्रम हो जाय, तो रस्सीकु अपन् 'अधिष्ठान' कहें और सांपकु या चांदीकु अपन् 'विवर्त' कहें. एक वा तरहके संदर्भमें तीनों प्रकारकी क्रीडायें हो रही हैं. परिणामकी क्रीडा हो रही है, विवर्तकी क्रीडा हो रही है और वो स्वयंके रूपमें भी क्रीडा कर रह्यो है. भगवान् जब खुद क्रीडा करे तो 'भगवान्' कहवावे. परमात्मा जब जगत् बनके क्रीडा करे तो 'उपादान' कहवावे. अक्षरब्रह्म तटस्थ रहे जाकु कल मैंने उदाहरण देके बतायो, पतंगे सब कुछ करें पर बल्ब् कुछ करे नहीं. बल्ब् खाली जुड़े और पतंगे वाके आगे पीछे नाचवे लग जायें. क्या बल्ब्ने वाकु आमन्त्रण दियो? अपन् कहेंगे के

नहीं. बल्ब् तो आमन्त्रण नहीं दे रह्यो है. बल्ब् तो केवल जुड़ रह्यो हैं. वाके जुड़वे मात्रसु ही पतंगियान्में गति पैदा हो जाये. बल्ब्के इर्दगिर्द नाचवे लग जायें. ऐसे अक्षरब्रह्मकी सत्ता, अक्षरब्रह्मकी चेतना, वो स्फुट होवे और नामरूप वाके कारण गतिशील हो जायें अपने आप. वाकु अपन् देखें तो ऐसे लगे के विवर्त है ये. या लिये महाप्रभुजीने **''नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुत कर्मणे. रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः''** यामें तीनों तरहकी लीलान्को संग्रह करके एक कृष्णकु नमस्कार कियो. एक कृष्णकी अद्भुतकर्मता बतायी. कैसो अद्भुत है के दार्शनिक लोग झगड़ते रहें. कोई कहे आरम्भवाद सच्चो, कोई कहे विवर्तवाद सच्चो, कोई कहे परिणामवाद सच्चो और कृष्ण ऐसो अद्भुतकर्मा है के तीनों वादीन्के विवादमें निर्णय नहीं आतो होय और वो तीनों वादनकु धारण करके तीनों तरहकी क्रीडा करे. ये मैंने कल आपकु समझायो थो.

(विरुद्धधर्मन्को अविरुद्ध आश्रय)

''सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तद् अनन्तमूर्ति तद् ब्रह्म कूटस्थं चलमेव च, अनन्तमूर्ति तद् ब्रह्म हि अविभक्तं विभक्तिमद्'' (त.दी.नि.१.७०-७१,२६). ये महाप्रभुके आखे दृष्टिकोणको प्रमुखतम स्वर है. ये सुर समझमें आयो तो सब बात समझमें आयेगी. ये सुर समझमें नहीं आयो, तो सैंकड़ों पन्ना महाप्रभुके ग्रन्थके बांच जाओ, कोई बातको तालमेल समझमें नहीं आयेगो. ये एक बात ऐसी है. कभी आपके गड़बड़ावेकी सम्भावना नहीं रह जायेगी. महाप्रभु कई तरहकी बातें करेंगे और महाप्रभु स्वयं याकु स्वीकार कर रहे हैं बहोत अच्छी तरहसु के श्रुतिन्में कई जगह विरोधी विरोधी वर्णन आवे हैं. एक एक वर्णनकु दूसरे वर्णनके सामने रखोगे तो लगेगो के भई बड़ी बड़ी गप्प लगाई हैं. कभी या तरहसु कह रहे हैं, कभी वा तरहसु कह रहे हैं. वो सब गप्प सत्य बन जाये हैं. क्यों सत्य बन जाये हैं?

(यथार्थकी यथोपासनता)

वाको कारण वाणी नहीं है. वाको कारण वाणीसु प्रतिपादित होवेवालो अर्थ है. **''यथा यथा उपासते तथा तथा भवति''** जैसे-जैसे वाकी उपासना करो वैसो-वैसो वो रूप बदलतो चल्यो जाय. अब ये उपासनाकी सामर्थ्य है के वाकी सामर्थ्य है? उपासनामें इतनी सामर्थ्य नहीं है. वामें वस्तुतः इतनी सामर्थ्य है पर ब्रह्मके

स्वभावको एक वैलक्षण्य है के करे काम सब खुद और आरोप वापे कुछ भी आवे नहीं. याई लिये गीतामें अपन् जो बारहवों अध्याय देख रहे हैं वाके पहले भगवान्ने खुलासासु ये समझा दियो **''मया हताः त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्** (गीता.११।३४) मैंने मार दिये हैं. अब तू मार दे. चिन्ता मत कर. अरे मार दिये हैं तो मार्यो कैसे जायगो? अर्जुनसु मरवाने हैं तो तेंने क्यों मार दिये पहले? अब भगवान्की लीला ऐसी है के करें काम सब खुदही करें, पर आवे उनपे कुछ भी नहीं. देखवेवालो देख रह्यो है, देखवेवालेकु दिखलाई दे रह्यो है, अर्जुनने तीर छोड़े, अर्जुनके तीर छूटे, तो उनके शरीरमें चुभे, उनके शरीरमें चुभे तो वो मरे और जानवेवालो भी याकु जान रह्यो है. **''मया हताः जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्''** मैंने मार दिये हैं. अब तू तीर छोड़ दे. **''निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्.''** भगवान् अपनेपे कुछ नहीं लें और सारे काम खुद करें.

(कर्ता कारयिता हरिः)

जैसे कलके उदाहरणमें मैंने आपकु समझायो के बैठे बैठे वो रिमोट् कन्ट्रोलसु मोटर् चला रह्यो थो और भारी भीड़ जमा हो गई तमाशबीनन्की. क्योंके कोई समझ नहीं पा रहे थे के मोटर् यहां अपने आप क्यों नाच रही है? तो चक्कर ऐसो ही है के एक रिमोट्कन्ट्रोल् ऐसो चल रह्यो है, मोटर् अपने आप चक्कर मारे और सारे देखवेवाले खड़े हो गये दार्शनिक के ये चल क्यों रही है? कोई कह रह्यो है कालसु चल रही है. कोई कह रह्यो है के कर्मसु चल रही है. कोई कह रह्यो है के स्वभावसु चल रही है. कोई कह रह्यो है के मायासु चल रही है. कोई कह रह्यो है के प्रकृतिसु चल रही है. कोई कह रह्यो है के चेतनसु चल रही है और वोही जान रह्यो है के सब वाईसु चल रही है. जो कुछ चल रह्यो है वासु चल रह्यो है. **''मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा. तदेव एतत् प्रकारेण भवति इति श्रुतेः मतम्''** (सि.मु.४-५). ये महाप्रभुजी कहे हैं. जो समझ रहे हैं वो सब ठीक समझ रहे हैं. समझवेमें कहीं कोई गड़बड़ी नहीं है. सब, सब तरहसु चल रह्यो है. सारे रूप लेलेके वो चलावेवालो एक है. यदि आपकु लग रह्यो है के वो गाड़ी बेटरीसु चल रही है, तो वो बेटरी है. यदि आपकु लग रह्यो है के गाड़ी चाबीसु चल रही है, चाबी भरवेके कर्मसु चल रही है तो चाबी भरवेवालो वो है. यदि आपकु लग रह्यो है के गाड़ी अपने आप स्वभावसु ही गुड़क रही है क्योंके जमीनपे स्लोप् ज्यादा है, तो स्लोप् और स्वभाव गाड़ी को बनावेवालो वो है. हर

रूपमें हर पक्षमें वो ही कर रह्यो है सारी खुराफात. यदि खुराफात मानो तो खुराफात वो कर रह्यो है. यदि लीला मानो तो लीला वो कर रह्यो है. ये तो शब्दके, कहवेके अन्तर हैं. बाकी करवेवालो तो वोई है. **''कर्ता कारयिता हरिः''** ये सिद्धान्त समझमें आवे तो अपनेकु समझमें आवे. महाप्रभु या बातको बहोत सुन्दर विवेचन करे हैं और समझावें हैं. **''द्रव्यं कर्म च कालः च स्वभावो जीवएव च. वासुदेवात् परो ब्रह्मन् नच अन्यो अर्थो अस्ति तत्त्वतः''** (भाग.पुरा.२।५।१४). द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव ये सारेके सारे पदार्थ एक परमात्माके ही अलग अलग रूप हैं. ये रूप अपने सामने खुलके आ गये हैं. अपन् जब सोचें तो अपनेकु लगे के चेतनके कारण कुछ चीज हो रही है.

(विभिन्न दर्शनकी भिन्न-भिन्न दृष्टि)

नैयायिकन्की बड़ी मजेदार बात आपकु बताऊं. नैयायिक लोग परमाणुवादी होवे हैं. परमाणुवादी मने क्या? जगत्को हर कार्य परमाणुसु उत्पन्न भयो है, ऐसो माने. उनके सामने प्रश्न आयो के परमाणुसु पैदा तो हो रह्यो है, ये बात ठीक है, पर जब दो परमाणु जुड़ेंगे तब तो कोई कार्य बनेगो. एक परमाणुसु दूसरो परमाणु जुड़े तो कार्य बने. तो उनने कही ''जोड़वेवालो कौंन?'' अब आजके वैज्ञानिक लोग बड़ी विचित्र बात कहें ''परमाणु जोड़वेकी आवश्यकता नहीं है. क्योंके हर परमाणु दूसरे परमाणुकु खींच रह्यो है, ये वाको स्वभाव है'' ऐसे देखें तो स्वभाववाद आयो. नैयायिक लोग कहें ''ऐसे नहीं हो सके क्योंके परमाणु तो जड़ है. कोई न कोई चेतनकी आवश्यकता है वहां'', जैसे ये कवर्कु और पुस्तककु जोड़नो है तो मैं चेतन एक प्रक्रिया शुरु करूं तो फिर जुड़े, नहीं तो कैसे जुड़ सके? उनने कही ''चेतनकी जरूरत है दो परमाणु जोड़ने होंय तब'' पर यदि वे अपने आप जुड़ते होय तो? जैसे सूर्यके चारों तरफ पृथ्वी घूम रही है. ऐसे हर परमाणुके इर्दगिर्द हर दूसरो परमाणु घूमनो चाहे है. ये परमाणुमें अपने आपमें रह्यो भयो स्वभाव है. वैज्ञानिकन्ने कह दी ''याके लिये ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है''.

फ्रांसमें 'डीड्रो' नामको एक विश्वकोश बनावेवालो हतो. वासु वहांके राजाने पूछी के तुमने इतने सारे चेप्टर् लिखे पर एक चेप्टर् भगवान्के बारेमें नहीं लिख्यो विश्वकोशमें? वाने कही के जरूरत ही नहीं हती. बगैर भगवान्की आवश्यकताके विश्वकोश लिख्यो जा सके. ठीक बात है. क्योंके स्वभाव प्रकट भयो है. परमाणुमें ये स्वभाव प्रकट भयो है. देखलो दूरबीन लगाके पृथ्वी अपने आप घूम रही है सूर्यके

चारों तरफ. कोईने याकु धक्का नहीं लगायो है सूर्यकी ओर. उनकी बात भी ठीक है. नैयायिकन्की बात सोचोगे तो उनकी भी बात ठीक है के दिखलाई तो दुनियांमें सब जड़ चीजें चेतनके द्वारा चलती दिखलाई दें. अपने आपतो गाड़ी चलती दीख नहीं रही है. अपन् कहें के अपने आप गाड़ी चलती दीखें नहीं. कोई रिमोट् कन्ट्रोल् करवेवालो चला रह्यो है तब तो गाड़ी चल रही है. तो वो यों कहें के याके लिये कोई चेतन कर्ता होनो चइये. दो परमाणुन्में क्रिया उत्पन्न करवेके लिये एक चेतन कर्ता चइये. उनने कही जैसे दो मिट्टीके लौंदा होंय तो उनकु जोड़के घड़ा बनावेवालो एक कुम्हार चइये. ऐसे दो परमाणुन्कु जोड़के जगत् बनावेवालो एक चेतन ईश्वर कर्ता चइये.

''क्षित्यंकुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वाद् घटवत्'' क्षित्यंकुरादिक बनावेवालो कोई चेतन कर्ता है. जैसे घड़ा बनावेवालो कर्ता कुम्हार है. बात ये भी सच है. क्योंके ये भी दिखलाई दे रही है. स्वभावकी बात देखें तो वो भी दिखलाई दे रही है. जैमिनिने कही ''कालके अन्तर्गत ये सब पैदा भई है'' सचमुचमें वो भी दिखलाई दे रह्यो है. कौंनसी बात इन्कार करी जा सके है दुनियामें? जहां देखोगे के ये चीज है, ठीक वाई तरहसु दिखलाई देयगो. जा बखत पुस्तकें पढ़ोगे तद्तद् दर्शनकी, ठीक वो बात दीमागमें उतरती चली जाये. कौंनसी पुस्तक आपने पढ़नी शुरु करी बस प्रश्न याको है? सांख्यकी पुस्तक पढ़नी शुरु करो तो सांख्यको सिद्धान्त दिलमें उतरतो चल्यो जाये. न्यायकी पुस्तक पढ़नी शुरु करो तो न्यायको सिद्धान्त दिलमें उतरतो चल्यो जाये. विज्ञानकी पुस्तक पढ़नी शुरु करो तो विज्ञानको सिद्धान्त दिलमें उतरतो चल्यो जाये. कुछ भी पढ़नी शुरु करो पुस्तक तो सिद्धान्त दिलमें उतरतो चल्यो जाये. अपन् कहें हमारो तुम्हारे साथ मतभेद है. अरे मतभेद कुछ नहीं है. तुमने पुस्तक पढ़नी शुरु करी बस बात ये ही है. वो पुस्तक नहीं पढ़के दूसरी पुस्तक शुरु करी होती तो ये सिद्धान्त समझमें नहीं आतो, वो सिद्धान्त समझमें आ जातो. जो सिद्धान्त समझमें आ रह्यो है वो समझमें आ रह्यो है, वाके अलावा और कोई सिद्धान्त समझमें नहीं आ रह्यो है. चक्कर कहां है? चक्कर यहां है के सिर्फ तुमने एक दृश्य देख्यो और वो दृश्य सचमुचमें है जगत्में. वो बात तुमकु समझमें आ रही है. दूसरी बात तुमने पुस्तकमें पढ़ी नहीं तो अपनेकु लगे के बहोत आपत्तिजनक सिद्धान्त है. वो पढ़नी शुरु कर दो एक बखत धीरजसु तो धीरे-धीरे वो समझमें आवे लग जायेगी. कोई तकलीफ कहीं भी नहीं है. कुछ भी समझ्यो जा सके

है. कुछ भी कह्यो जा सके है. **''द्रव्यं कर्म च कालः च स्वभावो जीवएव च वासुदेवात् परो ब्रह्मन् नच अन्यो अर्थो अस्ति तत्वतः''** (भाग.पुरा.२।५।१४).

कुछ लोग चार्वाक जैसे भौतिकवादी होंय वे केवल द्रव्य माने. अभी भी जैसे रशियामें मटीरियलिज़म् चले है. वो लोग यों कहें के कोई जरूरत नहीं है कर्ताकी सिर्फ मेटर् अपने आपमें सारे रूप धारण करवेमें समर्थ है. द्रव्यमें ये शक्ति है के सारी जगत्की वस्तुयें वासु बन सके हैं. अब उनके सिद्धान्तकी पुस्तकें पढ़नी शुरु करो तो बात दिलमें उतरती चली जायगी. आप मटीरियलिस्टिक् हो जाओगे. पुस्तक कौंनसी पढ़नी शुरु करी बस फर्क वहांसु पड़ जायेगो. पुस्तक पढ़नी शुरु करी और बात समझमें आनी लग जाये. हर बात समझमें आ रही है. हर बातपे विवाद हो रह्यो है. प्रश्न सिर्फ इतनो ही है के हर बात सच्ची है. कोई बात गलत नहीं है. पर जो बात अपन् पढ़ रहे हैं वो समझमें आवे और दूसरी बात समझमें नहीं आवे.

जैसे एक सामान्य बात कहूं. एक वैरागीकी बात सुनो. सब जगह क्षणभंगुरता दिखलाई देवे. सब जगह माया दिखलाई देवे है. भक्तकी बात सुनें तो सब जगह लीला दिखलाई देगी. तन्मयता वैराग्यमें भी आ सके है, तन्मयता लीलामें भी आ सके है. कोईकी बात सुनो तो वाकी बात भी सच दिखलाई देगी. मने आपने शुरु कहांसु कियो प्रश्न याको है. ब्रह्ममें ये सारे पहलु हैं. चक्कर ये है के द्रव्य भी है मने मेटर् भी है. कर्म भी है, काल भी है, स्वभाव भी है और चेतन भी है. सब कुछ हैं और इनको एक पंचामृत चल रह्यो है. पंचामृतमें पांचो तरहके स्वाद हैं. अब जैसे एक मिठाई खावेवालेकु शक्करको स्वाद अच्छो लगे और वो लड्डू खाये तो वाको ध्यान लड्डूपे नहीं जाके वाकी शक्करपे जायेगो. अनाज खावेवालेकु मिठाईपे ध्यान नहीं है पर मिठाई खाते भी ध्यान शक्करपे नहीं जाके गेहूं या बेसन पे जायेगो. आदमी खा लड्डू रह्यो है पर वाके स्वाद अपने-अपने आयेंगे. अब भले वामे केसर भी मिली है, इलायची भी मिली है, शक्कर भी मिली है पर जाकु जा चीजको शौक है वाकु खाते बखत वो चीज पहले समझमें आयेगी. केसर बड़ी अच्छी मिली है. अरे भई शक्कर नहीं मिली थी क्या? मिली थी. मिली तो वामें शक्कर भी थी, पर तुमने खानेसे पहले घारणा ये रखी के केसरवालो लड्डू खायेंगे तो केसरकी सुगंध आयेगी, केसरको स्वाद आयेगो. तुमने शक्करपे ध्यान रख्यो तो खावेमें पहले शक्कर समझमें आयेगी. ध्यान कहां रख्यो है? ध्यान जहां रख्यो है वहांसु हर बात

समझमें आती चली जायेगी. सब चीज वाकी अंग बन जायेगी. ध्यान कर्मपे रखो तो कर्मसु समझमें आ जायेगी. आखी सृष्टिकी व्याख्या हो जायेगी. ध्यान कालपे रखो तो कालसु या सृष्टिकी सारी व्याख्या हो जायेगी. ध्यान स्वभावपे रखो तो स्वभावसुं या सृष्टिकी सारी व्याख्या हो जायेगी. चेतनके बिना काम नहीं चलेगो. पर चलो चेतनकु ध्यानमें रखो तो चेतनसु सारी सृष्टिकी व्याख्या समझमें आ जायेगी. व्याख्या सब समझमें आ सके है. महाप्रभुजी याई लिये कहे हैं के पांचोंके पांचों तत्व ब्रह्मके पांच पहलु हैं और इन पांचों पहलुन्को विस्तार ही सारो जगत् है.

(कर्म स्वभाव और काल के अधिदेव ब्रह्मा विष्णु शिव)

अपने यहां तीन देव कहे गये हैं : ब्रह्मा विष्णु और शिव. महाप्रभुजी कहें हैं के ये कर्म स्वभाव और काल के अधिदेव हैं. ब्रह्मा कर्मके अधिदेव है. याके लिये कोई भी कर्म कियो जाय तो ब्रह्माकी उपस्थिति अनिवार्य मानी जाय. विष्णु स्वभावके अधिदेव है. शिव कालके अधिदेव है. सृष्टिकी उत्पत्ति होवे है कर्मसु. सृष्टिकी स्थिति होवे है स्वभावमें, सृष्टि लीन होवे है कालके कारण. कर्म स्वभाव और काल ये तीनों वाके फंकशन् हैं. वो परमतत्व एक ही है और ये फंकशन् प्रकट भये, इनके तीनों पहलु पाछे, बहोत सुन्दर उदाहरण देके महाप्रभु समझावे हैं याकु, जैसे एक गंगा नामकी नदी जो बह रही है गंगोत्रीसु लेके गंगासागर तक, वो गंगा नामकी नदीमें हर जगह तीर्थ नहीं है. कहीं-कहीं तीर्थ है. जैसे प्रयागमें तीर्थ है, काशीमें तीर्थ है. कुछ कुछ ऐसे क्षेत्र है जहां वाकी नदीरूपता प्रकट होवे है. कोई कोई ऐसी जगह आवे के जहां वाकी तीर्थरूपता प्रकट होवे है. नदी एक है जा नदीके अन्दर जल बह रह्यो है. एक तीर्थ है जहां वाको माहात्म्य प्रकट हो रह्यो है. फिर महाप्रभु बहोत सुन्दर कहे हैं के यदि कोई सचमुचमें भक्त है तो वाही गंगाको एक देवीको भी रूप है जो प्रकट होके भक्तकु दर्शन दे सके है. या तरीके के तीनों रूप हैं एक ही गंगाके. जल आधिभौतिक रूप है, तीर्थ एक आध्यात्मिक रूप है, देवीरूपसु एक वाही गंगाको आधिदैविक पहलु भी है. याई तरहसु काल कर्म स्वभाव प्रकृति और पुरुष पांच तत्व हैं. इनके भी तीनों पहलु हैं. कर्मके आधिदैविक पहलुकु 'ब्रह्म' कहें. स्वभावके आधिदैविक पहलुकु 'विष्णु' कहें. कालके आधिदैविक पहलुकु 'शिव' कहें. चीज वोई की वोई है. गंगामें और वामें कोई अन्तर नहीं है पर दिखलाई कौंनकु देयगो? जामें भक्ति है वाकु देव दिखलाई देयगो. जामें भक्ति नहीं है केवल ज्ञान है वाकु अध्यात्म दिखलाई देयगो. जामें भक्ति

और ज्ञान नहीं है केवल कर्म करनो है, काम चलानो है, वाकु तो खाली पानी ही दिखलाई देयगो. ये भी पानी वो भी पानी.

(यमुनाजलके नामपे तमसाजल)

हमारे सुनवेमें एक बात आई. जैसे कल मैंने आपकु बतायी ना एक विचित्र लीला. ऐसी ही एक विचित्र लीला और भी भई. आजकल यमुनाजीके जलकी लोटी भर-भरके लोटीमहोत्सव करें. लोटीमहोत्सवको मतलब क्या के एक-एक लोटीकी नीलामी करें. ये लोटी तुम लीजो, ये लोटी तुम लीजो. एक लोटीको समझलो पांचसो रुपया दाम रख दियो. थोडे रुपया उत्सवके आयोजनमें खर्च दिये बाकी सब प्रोफिट् पोकेट्में रख लेनी. कोईने लंडन्में उत्सव आयोजित कियो यमुनालोटीको. यहांसु एक हजार लोटी गई लंडन्में. एक हजार लोटी गई तो कस्टम्वालोंने कही ''ये क्या है? याकु खोलके बताओ.'' उनने कही ''कुछ नहीं है खाली यमुनाजल है.'' उनने कही ''जल है तो खोलके बताओ. कोई न कोई पोल्युशन् होयगो.'' खोलके देख्यो तो सचमुचमें पोल्युशन् निकल्यो. अब जब पोल्युशन् निकल्यो तो उनने कही ''ढ़ोलो सबकु यहीं, शहरमें नहीं जा सकेगो, जलमें पोल्युशन् है'' अब लोटीको उत्सव तो डिक्लेर् हो गयो हतो. उननें कही अब क्या करें? उनने कही ''ढ़ोल दो पानी'' और उनने फैंक दियो यमुनाजल. बादमें उननें टेम्स्नदीको जल भरके फिर लोटीउत्सव मना लियो. अब बिचारे जो भक्त हैं वहां उनने टेम्स्नदीके जलमें यमुनाजीकी भावना करी. वो बिचारे क्या करें? वो क्षम्य है. अब वो तो ये ही समझे के लोटी आयी हैं तो यमुनाजी ही होयगी. उनकी भावना विफल नहीं है. पर लोटीको ईम्पोर्ट्-एक्सपोर्ट्को जो बिज़नेस् करें वामें चक्कर पड़ गयो. उनने सप्लाई कियो थो यमुनाजल नहीं टेम्स्जल. अब टेम्स्को संस्कृताईजेशन् करो तो तमसाजल होवे. तमसाजल सप्लाई कर दियो यमुनाजीके नामपे. ऐसो ही चक्कर चले व्यावसायिक आदमीके आयोजनन्में.

कहवेको मतलब क्या के जाकी आधिदैविक दृष्टि है वाकु तो तमसामें भी यमुनाको भाव होयगो. वामें तो वोई गद्गद्ता, वोई रोमांच आयेगो. जाकी कुछ भौतिक दृष्टि है के भई कुछ कमानो धमानो है, तो वाकु यमुनाजल होय चाहे तमसाजल होय, जलकी लोटी सप्लाई होनी चईये. मालसु क्या मतलब है? लेबल् चहिये बस ऐसे-ऐसे अलग माहात्म्य हैं हर चीजके. उन् माहात्म्यके अनुसार अपनेकु

वाको स्वरूप नजर आवे. अब बेचारे इंग्लेन्ड्वाले कस्टम्के ऑफिसरनकु क्या पता के यमुनाजल क्या है? ये लोटी क्या है? उनकु तो ये ही लग्यो के पोल्युटेड् जल ले आये हिन्दुस्तानसु तो उन्होंने सब ढुलवा दियो. कौंन गलत कौंन सच? सच गलत करनो बहोत कठिन काम है. समझवेकी बात यामें इतनी है, वोई जल पोल्युटेड् होवेके कारण उनके लिये ढ़ोलवे लायक भी है. वो ही जल जामें भाव है वाके लिये पूजवे लायक भी है. वो ही जल जाको धन्धा करनो है वाके लिये दुकानदारी कमाई करवेको एक हेतु भी है. जमुनाजलतो एक है पर रूप वाके विविध हो सके हैं.

याई तरहसु एक ही काल एकके लिये काल हो सके है. वो ही काल जामें भाव है, कालसु जो डर नहीं रह्यो है, कालकु स्वीकार रह्यो है, वाके लिये वो शिव हो जायेगो. वो ही काल जो कालसु डर रह्यो है, वाके लिये वो शिव भी रुद्र हो जायेगो. रुद्र माने क्या? भयंकर. मरतो आदमी जो मौजसु मरेगो तो वाकु शिवके दर्शन होंयगे. जो रोते-रोते मरेगो वाकु रुद्रके दर्शन होंयगे कालके रूपमें आयो, पकड्यो मार्यो त्रिशूल. चीज एक ही एक है. आदमी जो देख रह्यो है वामें सारेके सारे पहलु समाये भये हैं. वो ही विष्णु जो स्वभावसु सारो जगत् चला रह्यो है. या बाजूसु देखो तो ऐसो लगे के हर चीज स्वभावसु चल रही है. वैज्ञानिक बिचारे ये ही कह रहे हैं के हर चीज स्वभावसु चल रही है. यामें कायकु विष्णुकी कल्पना करो. वो बिचारे क्षम्य हैं. क्योंके उनकु ये पहलु दिखलाई दे रह्यो है. वो पहलु नहीं दिखलाई दे रह्यो है जो स्वभावको घनीभूत है, जाकु अपन् विष्णु कहें हैं. जैसे सिक्काकी जा बाजुकी बाजु अपनेकु दिखलाई दे, वो बाजु है ही, ऐसे अपन् माने. दूसरी बाजु जो दिखलाई नहीं दे तो वो बाजु है ही नहीं, ऐसे मान लेनो अपने आपमें एक अदूरदर्शिता है. दूरदर्शिता यामें है के जितनो तुमकु दिखाई दे रह्यो है, उतनो तो मस्तीसु मानो और बाकीकु छोड़ दो. अब क्या पता के क्या है और क्या नहीं है? पर आदमी अपनी खोपड़ीपे ज्यादा विश्वास करे बजाय जगत्की हकीकतपे. याके लिये अपनकु लगे के दीख रह्यो है तो है, नहीं दीख रह्यो है तो नहीं है.

यों कहें हैं के शुतुरमुर्ग रेतमें अपनी गर्दन घुसा ले है तो वाकु शिकारी नहीं दीखे. वो समझे के शिकारी गायब हो गयो. शिकारी शुतुरमुर्गके रेतमें गरदन घुसा

लेवेसु गायब नहीं हो जाये है. शिकारी तो अपनो तीर छोड़े ही है. शुतुरमुर्गकु नहीं दीखे, ऐसे शुतुरमुर्गन्की कोई कमी नहीं है. बाकी शिकारी तो अपने आप है और है और है ही. शुतुरमुर्गकु कभी दीखे है, कभी नहीं दीखे है. कुछ लोग समझें है के नहीं दीखे है तो नहीं है. अपने दर्शनके विचार सारे ऐसे शुतुरमुर्गी विचार हैं के जो अपनेकु दीखे वाकु अपन् मान लें के है. जो नहीं दीखे वाकु मानें के नहीं है. ये शुतुरमुर्गी विचारन्की जरूरत नहीं है. अच्छी तरहसु जो नहीं दीख रह्यो है वो भी है. जो दीख रह्यो है वो भी है. स्वभाव दीख रह्यो है वामें कोई गलत बात नहीं है. वा सिक्काको पहलु ऐसो ही है के स्वभाव है और ये ही सिक्काको वा बाजूको पहलु ऐसो है के विष्णु भी है.

(तत्व एक पर आधिभौतिक आध्यात्मिक आधिदैविक होवेको त्रैविध्य)

ऐसे ही कर्म जासु सृष्टि पैदा भई है. अब कर्मको ही कहें के कहांसु आयो? कई लोग कहें के कर्म अपने आप चल रह्यो थो. क्यों? वो यों कहे के कर्मकु कोईने पैदा कियो तो वाकु कौंनने पैदा कियो? अब सब लोग बहोत जबरदस्त युक्ति समझें के यदि जगत्कु भगवान्ने पैदा कियो और जगत्कु पैदा करवेके लिये भगवान्की जरूरत है तो भगवान्कु कौंनने पैदा कियो? अब सोचें के बड़ो भारी तीर मार लियो भगवान्कु कौंनने पैदा कियो तो एक भगवान् और लाओ. वा भगवान्कु कौंनने पैदा कियो तो एक भगवान् और लाओ. अब और कहें के अगर भगवान् भगवान्के बिना पैदा हो सके है तो जगत् ही भगवान्के बिना पैदा क्यों नहीं हो जाये? ये बात बिल्कुल सच्ची है. पर ये या तरफको पहलु है. वा तरफ एक ब्रह्मा बैठ्यो भयो है जो या कर्मको नियन्त्रण कर रह्यो है. अपनेकु एक पहलु दीखे के कर्म अपने आप चल रह्यो है तो दूसरो पहलु और है वाको वा तरफको, जो ब्रह्मा वाकु चला रह्यो है. जैसे मैंने आपकु बतायो के जब वो छोटी गाड़ी चल रही थी तो कुत्ताकु लग्यो के ये भी कोई जानवर है जो अपने आप चल रह्यो है और वो वाके पीछे आयो. अब जो आदमी रिमोट् कन्ट्रोल् कर रह्यो थो वाने वो गाड़ी वा कुत्तापे छोड़ी. अब कुत्ताकु लगी के ये तो मोसु डरे नहीं है तो कहीं मोकु खा ही नहीं जाये तो कुत्ता पूंछ उठाके भाग्यो. आदमी समझ नहीं पावे के ये चक्कर क्या है? वो एक पहलुकु देखे. गाड़ी चलती दीखी तो वाकु लगे के ये भी कोई न कोई जानवर होयगो. अपने आप कैसे चले गाड़ी? पलटके गाड़ी वाके सामने आई तो हिम्मतही पस्त हो गई कुत्ताकी वाकु खावेकी. वो छोड़के भाग गयो.

या तरफसु अपनेकु समझ नहीं पड़े. अपनेकु एक पहलु दिखाई पड़े. कर्मके कारण पैदा होतो होय जगत् तो अपने आप होनो चइये. अब वा बाजू ब्रह्मा बैठ्यो भयो कर्मकु कन्ट्रोल् कर रह्यो है. ये अपनेकु नहीं दीख्यो. क्योंके अपन्ने एक ही हिस्सा देख्यो है.

दरअसल ऐसो नहीं है. या बाजू कर्म है वा बाजू ब्रह्मा है. या बाजू स्वभाव है वा बाजू विष्णु है. या बाजू काल है वा बाजू शिव है या रुद्र है. डरते हो तो रुद्र है, मस्त हो तो शिव है. बात एक ही है. वो शिव भी है, वो रुद्र भी है. वो सब कुछ है. क्यों? वोही एक परमात्माके **''द्रव्यं कर्म च कालः च स्वभावो जीवएव च वासुदेवात् परो ब्रह्मन् नच अन्यो अर्थो अस्ति तत्त्वतः''** (भाग.२।५।१४). ये पंचविध रूपसु सृष्टि पैदा भई. जैसे अपन् छाछ बिलोवें तो मख्खन निकले. मख्खन क्या आकाशमेंसु टपके वामें? छाछमें ही हतो मख्खन. घनीभूत हो गयो 'मख्खन' कहदें. घनीभूत नहीं भयो, फैल्यो भयो मख्खन 'छाछ' कहवावे. छाछ और मख्खनमें अंतर कितनो? बहोत थोड़ो. घनीभूत हो गयो तुम्हारे मंथनके कारण तो 'मख्खन' कहलायेगो और घनीभूत नहीं भयो है, फैल्यो भयो है तो छाछ है. याई तरहसु काल जब घनीभूत हो जाये तो वो शिव हो जाये या रुद्र हो जाये. स्वभाव जा बखत घनीभूत हो गयो तो वो विष्णु है. कर्म जब घनीभूत हो गयो तो वो ब्रह्मा हो जाये. फैल्यो भयो अपने यहां दिखलाई दे रह्यो है. घनीभूत देवके रूपमें है. अन्तर बहोत थोड़ो है. आदमीकु जाकु मख्खन दिखलाई दे, आदमीके अपने अपने ध्यान हैं, वाकु मख्खनपे ध्यान होवे, कोईको छाछपे ध्यान होवे. जाको छाछपे ध्यान होवे वाकु लगे के मख्खन जरूर आकाशमेंसु टपक्यो होयगो. कोई छाछमें तो पहले हतो ही नहीं मख्खन. वो चमत्कार मानें. जाको मख्खनपे ध्यान होवे, वाको छाछपे ध्यान नहीं जावे.

कभी आपने अनुभव कियो होयगो के जब अपन् कभी ट्रेन्में बैठें और बाजूमें कोई गाड़ी चलवे लग जाये तो यदि आपको ध्यान चलवेवाली गाड़ीपे है तब तो आपकु अपनी गाड़ी स्थिर लगेगी. यदि आपकु अपनी गाड़ीपे ध्यान है बारीपे, डिब्बापे और पीछेसु गाड़ी चले तो आपकु लगेगो के अपनी गाड़ी चल रही है. क्या चल रह्यो है और क्या स्थिर है? यामें ध्यान आपको कहां है वापे स्थित है. कहीं आपने मुड़के प्लेट्फोर्म देख लियो पाछो, तो पता चल जायेगो के अपनी स्थिर है. अपनी

गाड़ीकु देखोगे तो पता चले है के ना तो वो चले है ना तो वो स्थिर है. वामें तो आप बैठे ही भये हो. आदमीको ध्यान कहां है यापे हर बात निर्भर करे. आदमी अपने ध्यानकु समझे नहीं और फिर चक्कर खा जाये और फिर लगे के गाड़ी चल पड़ी. कई आदमी हल्ला मचा दें के अरे चली चली पकड़ो पकड़ो, बुलाओ स्टेशन्पे. कई बार हमने देख्यो है. अरे गाड़ी अपनी नहीं चली, गाड़ी चली बाजूवाली. तुम कायकु चिन्तित हो रहे हो. तुम कायकु उद्विग्न हो रहे हो? आदमी उद्विग्न हो जाये के चली गाड़ी. कहवेको मतलब क्या? जैसे हर चीजको एक तरल रूप है, एक घनीभूत रूप है. ऐसे ही परमात्माको तरल रूप है जिनकु अपन् अव्यक्तरूप कहें, जो फैले भये हैं. मैंने कलके या परसोंके उदाहरणमें समझायो थो सूर्य और सूर्यको प्रकाश.

एक यहूदी दार्शनिक भयो है वाने बहोत सुन्दर समझायो है. वो कहे जैसे सूर्य और सूर्यकी धूप और सूर्यको प्रकाश. एक तो सूर्य जो घनीभूत प्रकाश बहोत गरम और साकार. सूर्यकी धूप वामें गरमी है और प्रकाश भी है. पर जैसे मकानके अन्दर आप बैठे होओगे छायामें तो प्रकाश तो होयगो पर धूप नहीं होयगी. प्रकाश एक और चीज है धूपके अलावा. एक सूर्य है, एक सूर्यकी धूप है और एक सूर्यको प्रकाश है. ऐसे वो कहे है के ब्रह्म भी तीन तरहको है. एक ब्रह्म जो मूल है वो कहे है ईश्वर मूल है. ईश्वर नहीं कहेके 'यहोबा' कहे है, बात एक ही है, वामें कोई खास फरक नहीं है. यहोबा मूल है और अपन् जीव वाके धूपके जैसे हैं. ये सारो जगत् प्रकाशके जैसो है. यामें कोई गरमी नहीं है. वो चेतनाकी गरमी होनी चइये. वो नहीं है. वो ठण्डी पड़े तो प्रकाश हैं. दिखलाई दे रहे हैं सब पर ठण्डे पड़े भये प्रकाश हैं.

(साकारता–सर्वाकारता–निराकारता–व्यक्ताकारता)

अपने यहां याकु यों कह्यो है, जो मूल परमात्मा है, वो आनन्दरूप है. जीव चैतन्यरूप है और जड़ सत्तारूप है. सत्ता ये तरल हो जाये है. चेतनमें थोड़ो घनीभाव आवे है, थोड़ी गरमी आवे है और जा बखत अपन् आनन्दपे पहुंचे, सच्चिदानन्दपे तो, **''आनन्दोहि ब्रह्मवादे आकारसमर्पकः''** (त.दी.नि.१।४४) आनन्दके कारण वो घनीभाव इतनो बढ़ जाये के सूर्यको एक गोलमटोल पिण्ड अपनेकु आकाशमें दीखे. जाके लिये महाप्रभुजी कहे हैं **आनन्दोहि ब्रह्मवादे आकारसमर्पकः''**

ये सारे आकार घनीभावके कारण आ रहे हैं और घनीभाव ही आनन्द है. मख्खन घनीभूत है या लिये आनन्द है. **''खाटी छाछ तनक नहीं भावे सूर खवैया घीको''**. घनीभावकी अपनेकु बड़ी महिमा लगे है. दरअसल वो घनीभूत हतो कहां? वहीं फेल्यो भयो हतो छाछमें. बाहरसु कुछ नहीं आयो पर अपनी दृष्टि यदि मख्खनपे है नहीं तो अपनेकु लगेगो के मख्खन मिथ्या है. मने परमात्मामेंसु प्रकट होते नाम और रूपन् के प्रकट होवेकी एक दिशा है. जैसे एक नदी गंगोत्रीमेंसु गंगा निकल रही है. वाकी एक दिशा है. याई तरहसु परमात्मामें मूल साकारता है. फिर साकारतासु सर्वाकारता आवे. सर्वाकारतासु निराकारता आवे. फिर निराकारतासु काल कर्म स्वभावमें थोड़े थोड़े आकार प्रकट होवेकी व्यक्तता आवे. काल कर्म स्वभाव प्रकृति पुरुष के संयोगसु, नामरूपमें फिर साकारता आ जाये. या तरहसु ये एक पूर्ण चक्र चल रह्यो है. जैसे एक नदी उतरे है पहाड़सु. थोड़ी देर बहे जमीनपे फिर जाके समुद्रमें मिल जाये. पाछी फिर भाप बनके ऊपर उड़ जाये, फिर बरसात बनके नीचे पड़े, वो एक चक्र चलतो रहे. ऐसे नाम–रूपके कभी व्यक्त होवेको और कभी अव्यक्त होवेको, एक चक्र चल रह्यो है. वामें एक पोइन्ट्पे अपन् खड़े होके कहें के वो अव्यक्त ही है वो बात गलत है. एक पोइन्ट्पे अपन् खड़े होके कहें के व्यक्त ही है तो वो बात भी गलत है. पूरे चक्रपे ध्यान दोगे, तो वहां देखोगे के व्यक्त अव्यक्त, अव्यक्तसु व्यक्त, एक निरंतर चक्र चल रह्यो है. **''एवं प्रवर्तितं चक्रं न अनुवर्तयति इह यः अघायुः इन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति''** एक चक्र है नाम–रूपको. व्यक्तसु अव्यक्त होवेको और अव्यक्तसु व्यक्त होवेको जो चक्र चल रह्यो है, याही चक्रमें कर्म ज्ञान भक्ति स्थित हैं. ध्यान दोगे तो पता चलेगो. अव्यक्तसु व्यक्त होवेकी प्रक्रियाको अंश एक लाईन् होवे, जैसे रहट चले, वोईके वोई डिब्बा रहटके ऊपर जावें और खाली होके आवें, नीचे आवें पाछे फिर भरके ऊपर जावें. फिर वोई के वोई डिब्बा खाली हो जावें, ये एक चक्र चल रह्यो है. ऐसे ही व्यक्त और अव्यक्तता में नाम–रूपको चक्र चल रह्यो है. नाम–रूपके रहटमें कभी व्यक्तता आवे है. जब वो उल्टे हो जायें तो उनमें अव्यक्तता आ जाये है. यामें अन्तर कितनो है? जा बखत नाम–रूप व्यक्त हो रहे हैं वा अव्यक्तसु व्यक्त होवेकी प्रक्रियामें आदमी भक्ति करे है. व्यक्तसु अव्यक्त होवेकी नाम–रूपकी प्रक्रिया ज्ञानकी है. व्यक्त नाम–रूपन्सु अव्यक्तकी दिशामें जावेकी प्रक्रियामें ज्ञानमार्ग स्थित है. जा बखत नाम–रूप अव्यक्तसु व्यक्त होवेके चक्करमें हैं वा बखत भक्तिमार्ग है.

या बातको ऐसे भी समझ सको हो. गति दो तरहकी होवे हैं. क्लोकवाईज् और एन्टीक्लोकवाईज्. जो चक्कर चल रह्यो है अव्यक्तसु व्यक्त होवेकी वा प्रक्रियामें जा बखत आदमी आवे, मने वा प्रक्रियाको जो मजा ले सकतो होय, अव्यक्तके व्यक्त होवेको जो मजा ले सकतो होय, वाकु भक्ति करनी चईये. व्यक्तके अव्यक्त होवेमें जाकु मजा आती होय, वाकु ज्ञान करनो चईये, मूल बात ये है.

(भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग)

भगवान् अर्जुनकु ये समझानो चाह रहे हैं **''मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः''** क्योंके अर्जुनने ये प्रश्न पूछयो के जो सततयुक्त होके या तरहसु उपासना कर रहे हैं, कौंन तरहसु? जा तरहसु तुमने मोकु सर्वाकारता व्यक्त करके दिखाई, वा तरहसु जो तुम्हारी उपासना कर रहें हैं और जो अव्यक्तमें व्यक्तकु खोज रहे हैं, मने अव्यक्तमें व्यक्तकु खोजनो और व्यक्तमें अव्यक्तकु खोजनो. अव्यक्तमें व्यक्तकु खोजनो भक्तिमार्ग है. व्यक्तमें अव्यक्तकु खोजनो ज्ञानमार्ग है. थोड़ेमें समझनो होय तो मर्म तो ये है. तथ्य ये है के अव्यक्तमें व्यक्त समायो भयो है और व्यक्तमें अव्यक्त भी. दोनों एक दूसरेमें हैं. वो रहट तो निरंतर चल रही है पर अपन् जा बखत दोनोंको स्वीकार लें तब योग बनेगो. आप जहां हो वहां रहो वामें कोई हरकत नहीं है, ये अच्छो लगतो होय देखनो के पानी रहटमें भरके ऊपर कैसे आ रह्यो है तो वा बाजू देखो है. या बाजूकी चिन्ता मत करो के खाली कैसे हो रह्यो है नीचे. कोईकु ये देखवेमें मजा आ रही है के पानीको भर्यो डब्बा खाली होके नीचे कैसे जा रह्यो है तो रहटके वा बाजूमें देखो तो वामेंभी कोई नुकसान नहीं है. वो तो चक्र चल रह्यो है. रहट जो चल रही है, व्यक्तसु अव्यक्तकी और अव्यक्तसु व्यक्तकी वामें तुमकु जो दृश्य देखनो अच्छो लगतो होय, नैन भरके निरखो वा दृश्यकु, वामें कोई हरकत नहीं है. पर जो तुमकु अच्छो लग रह्यो है वा हकीकतके अलावा दूसरी हकीकतकु इन्कारियो मत. यदि तुम इन्कार कर रहे हो तो तुम्हारो ज्ञान है पर ज्ञानयोग नहीं है. यदि तुम इन्कार कर रहे हो तो तुम्हारी भक्ति है पर भक्तियोग नहीं है. यदि तुम सततयुक्त होके जाकु भी निहार रहे हो तन्मयतासु तो वो ही योग बन जायेगो. अर्जुन ये ही पूछ रह्यो थो **''एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः''**. पर कुछ लोग या बातकु समझें नहीं और कहें के सततयुक्ता. तो सततको मतलब क्या? इनकु पसन्द नहीं आवे ये

बात सुननी के भक्ति सतत करनी चइये. वो कहें के ज्ञानही सतत करनो चइये. भक्ति तो सतत नहीं हो सके. भक्ति तो थोड़े दिन करके छोड़ देनी चइये. जैसे मैंने आपकु बतायो के डेटिंग् करें. ऐसे डेटिंग् करके छोड़ दो. आज याके साथ घूमो, कल वाके साथ घूमो. ये डेटिंग्वाले चक्करमें उनकु जो बात पसन्द नहीं आवे वो सततयुक्ता होवेकी

एक व्याख्याकार ऐसो मजेदार अर्थ करे है. 'तत' मने वीणा, मने 'सतत' वीणा बजा-बजाके भक्ति करो. अरे भई ऐसो अर्थ क्यों काढ़ो हो के वीणा बजा-बजाके भक्ति करो? अरे ये नारदविद्या कायकु कर रहे हो? भक्त और भगवान् ही नहीं परन्तु ज्ञानी और भक्त कु भी आपसमें लड़ा देवेकी बीन बजाते रहनी 'सततयुक्त'को ऐसो अर्थ करनो पड़े क्योंके पसन्द नहीं आवे उनकु ये बात के भक्ति सतत करनी चइये. अरे भई हकीकत ये है के करनी होय तो भक्ति भी सतत हो सके है, ज्ञानकी ही तरह. जो करो वो सतत करो. डेटिंग्की प्रोसेस् मत करो. जो करो वो सतत ही करो. वामें कोई हरकत नहीं है. भक्ति भी तुमकु वहीं ले जा रही है.

(ज्ञानयोग=व्यक्तमें अव्यक्तकी और भक्तियोग=अव्यक्तमें व्यक्तकी खोज)

अन्तर सिर्फ इतनो है के भक्तिमें तुम व्यक्तकु अव्यक्तमें खोज रहे हो और ज्ञानमें तुम व्यक्तमें अव्यक्तकु खोज रहे हो.

''एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते ये चापि अक्षरम् अव्यक्तम् तेषां के योगवित्तमाः''. या श्लोकमें अर्जुन क्या ये पूछ रह्यो है के जो भक्त बीन बजा-बजाके तेरी भक्ति करें है अथवा अव्यक्त अक्षरकी भक्ति करें उन दोनोमें योगकु भलीभांति जानवेवालो कौंन है? अर्जुन उनके लिये पूछ रह्यो है जो सततयुक्त होके परमात्माकी भक्ति करें हैं. उनमेंसु और सतत ज्ञानी जो जगह-जगह व्यक्तमें अव्यक्तकु खोजें हैं, उनमेंसु तुमकु कौंनसो अच्छो लगे है, ये बताओ? के योगवित्तमाः? क्यों योगवित्तमाः? क्योंके तुमने ही तो ये बात बताई थी **''तपस्विभ्यो अधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतो अधिकः कर्मिभ्यश्च अधिको योगी तस्माद् योगी भव अर्जुन. योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः''** और कह्यो **''पश्य मे रूपम् ऐश्वरम्''** मेरो रूप देख.

ऐसे अक्षरकु अव्यक्तकु तुमने 'मैं' क्यों नहीं कह्यो. यहां कोई चक्कर तो नहीं है? जब भी तुमने अक्षरकी बात करी तो ज्यादासु ज्यादा इतनी बात करी **''अक्षरं ब्रह्म परमम् स्वभावो अध्यात्म उच्यते भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः. अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषः च अधिदैवतम् अधियज्ञो अहमेव अत्र देहे देहभृतां वर''** (भग.गीता.८।३-४). वहां भी अक्षरब्रह्मकु 'मैं' कहके नहीं गिनायो. अधियज्ञ कहके गिनायो पर अक्षरब्रह्मकु 'मैं' नहीं कह्यो. ये बात अर्जुनकु सता रही है. यदि वस्तुतः अक्षरब्रह्म भी तुम्हारो रूप है और यदि कोई ज्ञानयोगी, व्यक्तमें अव्यक्तको खोज रह्यो है, तो तुम वाकु ये दरज्जा क्यों नहीं दे रहे हो के वो भी मोकु खोज रह्यो है? क्यों तुम कह रहे हो **''तपस्विभ्यो अधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतो अधिकः कर्मिभ्यश्च अधिको योगी तस्माद् योगी भव अर्जुन योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः.''** दरअसल ये प्रश्नकी शुरुआत, पहले भगवान्ने जो **''स मे युक्ततमो मतः''** कह्यो वापे अर्जुन फिरसु खुलासा मांग रह्यो है. बड़ी चतुराईसु मांगे है. वो आक्षेप करके नहीं मांगे है, सरलतासु भोलेपन्सु पूछ रह्यो है ''ये बता दो के दोनोंमे युक्ततम कौंन है? ज्ञानयोगी बनो ज्ञानी मत बनो ये बात तुमने कही थी. ये बात भी तुमने कही थी के कर्मी मत बनो पर कर्मयोगी बनो. तुमने कही थी ये बात के भक्त मत बनो भक्तियोगी बनो. तो अच्छा महाराज अब छेल्लो खुलासा हमकु ये दो के ज्ञानयोगी और भक्तियोगी में युक्ततम कौंन है? तब सारी बात समझमें आ जायेगी. तब अक्षरको खुलासा हो जायेगो''. भगवान् या प्रश्नको खुलासा देवें हैं **''मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः.''** क्यों? यदि तू व्यक्तमें अव्यक्तको खोज रह्यो है तो फिर चिन्ता मत कर. तोकु क्या युक्ततम लगे है? व्यक्तमें यदि अव्यक्तकु खोजनो है तो हर चीजकु अव्यक्त होनी पड़ेगी. खोजवेवालेकु भी अव्यक्त होनो पड़ेगो और जो खोज्यो जा रह्यो है वो तो अव्यक्त है ही. अब यामें मिलेगो तो क्या मिलेगो? अव्यक्त. वा स्थितिमें प्रश्न उपपन्न नहीं हो रह्यो है के युक्ततम क्या है? क्योंके युक्ततम तो व्यक्तमें ही हो सके है.

(तुलना दो व्यक्तन्के बीच होवे अव्यक्तके साथ नहीं)

युक्ततमको मतलब क्या? कोई युक्त होय, तो कोई युक्ततर होय, तो कोई युक्ततम होय. जाकु पोज़िटिव्, कम्पेरिटिव्, सुपरलेटिव् ये डिग्रीयां तो व्यक्तमें ही हो सकेंगी. अव्यक्तमें अपन् डिग्री कहें तो कैसे पता चले?

जैसे अंक नही लगायो होय और एक शून्य होय और दो शून्य होय तब बात व्यक्त नहीं भई. अंक लगे तब तो बात व्यक्त होवे. अंक नहीं लग्यो और कोई गिनती करे के एक शून्यके बजाय दो शून्य ज्यादा हैं, दो शून्यके बजाय तीन शून्य ज्यादा हैं. अरे भई हैं तो तीनोंके तीनों शून्य और वो क्या पूछ रह्यो है? कौंन ज्यादा है? अव्यक्त खोजनो है तो ज्यादा-कमको सवाल ही नहीं आयेगो. ज्यादा-कमको सवाल आ रह्यो है तो याको मतलब यह है के व्यक्तकी खोज है. जब व्यक्तकी खोज है तो कहनो पड़ेगो **''ते मे युक्ततमा मताः''** नहीं तो फिर पोज़िटिव् डिग्री सम्भव नहीं है. ये तो एकसु दो ज्यादा होवे है. दोसु तीन ज्यादा होवे है. तीनसु चार ज्यादा होवे है. पर एक शून्यसु दो शून्य ज्यादा होवें हैं, ऐसो नहीं होवे है. दो शून्यसु तीन शून्य ज्यादा होवें हैं ऐसो नहीं होवें है. क्योंके वो तो अव्यक्त संख्या है और एकसु लेके नौ तककी संख्या, व्यक्त संख्या है. वामें ये नक्की कियो जा सकेगो के एकसु ज्यादा दो, दोसु ज्यादा तीन, तीनसु चार ज्यादा. पर नौ शून्य लगा दिये तो भी पहले शून्यको जो मूल्य है, वासु एक अंश भी मूल्य ज्यादा नहीं बढ़ेगो. चाहे तो नौ शून्य लगाओ, चाहे तो नब्बे शून्य लगाओ. खाली एक लगा दियो तो सारी बातमें फरक आ जायेगो. कथा बदल गई. एक 'एक' लग गयो तो सारी कथा बदल जायेगी. क्योंके एक व्यक्त संख्या है. तो क्या एक ही संख्या है और शून्य संख्या नहीं है?

कुछ लोग यों समझे के शून्य होवेको मतलब नहीं होनो है. वस्तुतः ऐसो नहीं है क्योंके तब तो एकके बाद शून्य लगावेसु दस कैसे होतो एकके बाद शून्य लगाओ तो दसको मतलब कहांसु निकलेगो? यासु शून्यको मतलब नहीं होनो नहीं है. शून्यको मतलब कुछ होनो है, पर होनो कैसो? **''मया ततम् इदं सर्वं जगद् अव्यक्तमूर्तिना. मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहं तेषु अवस्थितः''** (भग.गीता.९।४). वो अव्यक्तमूर्ति संख्या है. या लिये गोलमटोल बना दी जाये चारों ओरसु. वाकी कोई पहचान नहीं. गोलमटोल संख्या 'शून्य' कहेवावे. क्यों 'शून्य' कहवावे? क्योंके वामें मूर्ति नहीं है. है तो सही पर अव्यक्तमूर्ति है. याके

लिये **''मया ततम् इदं सर्व जगद् अव्यक्तमूर्तिना''** जब तुम अव्यक्तमूर्तिकु व्यक्तमें खोजवे जाओगे तो चक्कर पड़ेगो. तब तुम ये नहीं पूछ सकोगे के दो शून्यसु तीन शून्य ज्यादा हैं के कम? खतम. जब तुम अव्यक्त खोज रहे हो तो पहले तुम अव्यक्त बनो.

एक सामान्य बात आपकु समझाऊं. जैसे लीला चल रही है. कोई नाटक चल रह्यो है. अब समझलो के नाटकको डायरेक्टर् स्टेज्पे है और दूसरे एक्टर् भी स्टेज्पे उतरे. अब एकाएक नाटकके बीचमें कोई एक्टर् कहे के भई मैं अब थक गयो हूं. या वेषकु मैं उतार रह्यो हूं. तो डायरेक्टर् क्या कहेगो? उतार दे भई अब पूछवेकी बात क्या रह गई? सारे वेष उतार देने हैं और तू वाकु कहे के उतार दे और तू खुद नहीं उतारे तब तो चले नहीं. अब यदि अपनेकु अव्यक्तकी उपासना करनी है, भगवान्ने जो नाम-रूपके वेष धारण किये, उन नाम-रूपके वेष धारण करके अपन् डायरेक्टर्कु कहें के तुम उतार दो ये नाम-रूपके वेष. पहले वो उतारे वाके पहले तुम तो उतारो. अब तुम वाके अव्यक्तकी उपासना करो और खुद नाम-रूपके वेष धारण करके व्यक्त बने रहो तब तो काम चलेगो नहीं. ये शुरुआत कैसे होयगी अव्यक्त उपासनाकी? अव्यक्त उपासनाकी शुरुआत होयगी मेरे नाम-रूपन्कु मैं पहले उतारूं तब तो अपन् वाकी मांगके औचित्यपे कायम कर सके हैं. जैसे ''चेरिटी बिगिन्स् एट् होम्'' कह्यो जाय. कोई काम करनो है, तो पहले खुद करो.

ये हिन्दीवालेन्ने बहोत आग्रह कियो के बच्चान्कु स्कूल्में हिन्दीमें पढ़ानो चइये. पता चल्यो के वे खुद अपने बच्चान्कु उन हिन्दीस्कूल्में नहीं पढ़ाते हते लोगन्कु लग्यो के हिन्दी राष्ट्रभाषाकी मांग अहिन्दीभाषीन्के विरुद्ध कोई षड़यन्त्र है. मरी बिचारी हिन्दीभाषा लोग समझ गये, सबकु समझमें आ गई के हिन्दीको केवल झगड़ा भाषाको ही झगड़ा है, कोई शुद्ध झगड़ा नहीं है. कोई घोटाला है, नहीं तो कायकु वो अपने बच्चान्कु हिन्दीमें नहीं पढ़ावे? गामकु उपदेश देवें के बच्चान्कु हिन्दीमें पढ़ावो और अपने बच्चान्कु अंग्रजीमें पढ़ावे? कुछ न कुछ चक्कर है.

(शास्त्रको उपदेश और वा उपदिष्टमें विश्वास)

ऐसे कह्यो जाय के एक ज्योतिषीने भविष्यवाणी करी के पांच पच्चीस दिन बाद प्रलय होवेवाली है. गांवके लोग बिचारे घबरा घबराके पहाड़न्पे चले गये. एक आदमी चतुर हतो. वाने कही के ज्योतिषी खुद क्यों नहीं आयो पहाड़पे? प्रलय आवेवाली है. वाने जाके देख्यो तो ज्योतिषीजी बागवानी कर रहे थे. वाने कही के जब प्रलय होवेवाली है और वाके बावजूद ये बागवानी कर रहे हैं वाको मतलब ये है के जो ये बीज बो रहे हैं, वो जब अंकुरित होयगी, फूटेगी और फलित होयगी, उतने दिन तो प्रलय होवेवाली नहीं है. जैसे ज्योतिषीजी रहेंगे वैसे ही आगे पीछे अपन् भी रहेंगे. अपन् भी शहरमें ही रहो, कायकु पहाड़पे जाओ? वो सब पाछे लौटके नीचे आ गये. ऐसे यदि अपन् कुछ कह रहे हैं के कल प्रलय होवेवाली है, तो पहले हम भागेंगे के तुम भागोगे? दूसरेकु कहो के भाग जाओ और खुद वहांके वहां ही रह जाये तो तो चक्कर है

याके लिये भगवान् कहें के अव्यक्तकी उपासना करनी है तो पहले खुद अव्यक्त बन. यदि तू अव्यक्त बन्यो तो ये प्रश्न ही उपपन्न नहीं होयगो के कौन युक्ततम है? युक्ततमको प्रश्न तो व्यक्तमें पैदा हो रह्यो है. अव्यक्तमें पैदा नहीं हो रह्यो है. भगवान् कह रहे हैं के यदि तू युक्ततम पूछ रह्यो है तो चल अब मेरो उत्तर सुन.

''मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः.'' क्योंके मैं तो सारे नाम-रूपन्कु धारण कर करके अव्यक्तसु व्यक्त होवेकी प्रक्रियामें आ रह्यो हूं और तू कह रह्यो है के तोकु व्यक्तसु अव्यक्त होनो है तो कायकु व्यक्तसु अव्यक्त होवे है. अपने मनकु मेरेमें लगाले. तू खुदकु क्यों मेरेमें समावे है? तू अपने मनकु मेरेमें समा. तोकु समावेकी जरूरत नहीं है. क्योंके तू समावे के नहीं समावे, यदि तू मेरेमें नहीं होतो तो तू होतो ही नहीं. उपनिषद् बहोत सुन्दर कहे हैं **''को ह्येव अन्यात् कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्. एष ह्येव आनन्दयाति''** (तैत्ति.उप.२।७). कौन जी सकतो यदि परमात्मा हवाके एक-एक कणमें भर्यो भयो नहीं होतो. एक-एक सांस अपन् ले रहे हैं वामें परमात्माके आनन्दकु अन्दर ले रहे हैं. एक-एक सांस छोड़ें हैं वामें अपने दुःखन्कु अपन् छोड़ रहे हैं. याईके लिये दुःखकु निःश्वास कह्यो जाय. लेवेको श्वास कह्यो

जाय. दुःख होय आदमीकु तो क्या छोड़े, निःश्वास छोड़े. वो तो दुःखकी अभिव्यक्ति है. हर सांसमें परमात्माके आनन्दकु तुम ले रहे हो. परमात्माको आनन्द व्यक्त हो रह्यो है. सांस लेवेकी प्रक्रियामें. थोड़ी देर सांस बन्द करके देखो तो पता चलेगो के सांस मिलनो बन्द भयो नहीं तो कितनो कष्ट बढ़ जायेगो, फेफसायें फटवे लग जायेंगे. क्यों फटवे लग जायेंगे क्योंके फैल्यो भयो आनन्द परमात्माको, वो दिखलाई नहीं दे रह्यो है पर प्रति सांसमें अपने अन्दर जा रह्यो है. वाको दरवाजा तुम रोक रहे हो. खुद ही व्यक्तसु अव्यक्त होवेको चक्कर कर रहे हो. थोड़ी देर ज्यादा सांस रोक लो तो अपने आप अव्यक्त हो जाये आदमी. साधना चइये, तब जाके वो बात बनेगी. नहीं तो कोई सरल बात नहीं है. व्यक्तमें अव्यक्तकु खोजवेके लिये बड़ी भारी साधना चइये. वामें कोई प्रश्नको अवकाश नहीं रहेगो. जब प्रश्नको अवकाश है तो निश्चित समझो **''मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते. श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः.''** क्योंकि नाम-रूपकु मैं निरन्तर अपनेमें व्यक्त कर रह्यो हूं.

(ब्राह्मिकी सत्ता नाम-रूप-कर्मन्को अजस्र स्रोत)

समझ लो भगवान्में एक ऐसी गंगोत्री है के जा गंगोत्रीमेंसु नाम-रूपकी सरिता बह रही है. अब तीन प्रकारकी यामें संभावनायें हैं. या तो या नामरूपी सरितामें बहो. दूसरी संभावना ये भी है के या तो ये जा तरफ बह रही है वाके सामने तैरो. तीसरी संभावना अथवा ये भी हो सके के किनारापे खड़े रहके मौज मारो. तटस्थ हो जाओ. कोई कहीं तटस्थ, कोई कहीं प्रवाहस्थ. अपन् कहें के ये फलाने आदमी तटस्थ हैं. तटस्थको मतलब क्या? जो प्रवाह चल रह्यो है, वामें पड़े नहीं है. तटपे खड़े भये हैं. प्रवाहतो चल रह्यो है पर वो वामें पड़नो नहीं चाहें. कोई प्रवाहस्थ होवें. प्रवाहस्थ दो तरहके होवें. प्रवाहकी दिशाके अनुकूल बहवेवाले. प्रवाहकी दिशाके विपरीत बहवेवाले और तीसरो व्यक्ति होवे है तटस्थ. प्रवाह चाहे या तरफ जातो होय चाहे वा तरफ जातो होय, वासु कुछ लेनो-देनो नहीं. वालिये तटस्थ. तटस्थ बननो होय तो तटस्थ बन जाओ. प्रवाहस्थ बननो होय तो प्रवाहस्थ बन जाओ. प्रवाहकी विपरीत दिशामें बहनो होय तो वाके विपरीत दिशामें हाथ-पैर पछाड़ो. प्रवाहकी दिशामें बहनो होय तो वा दिशामें हाथ-पैर पछाड़ो. लेकिन प्रवाह तो तुमकु अपनी दिशामें ले ही जा रह्यो है. निरन्तर एक नाम-रूपकी सरिता चल रही है. तुमकु क्या करनो है ये नक्की करो.

भगवान् कह रहे हैं के तुमकु यदि प्रवाहमें बहवेमें तकलीफ हो रही होय, तो कोई चिन्ताकी बात नहीं है. थोड़े तटस्थ होके देखो, तुमकु प्रवाहको आनन्द भी मिलेगो और प्रवाहमें बहवेको भय भी निवृत्त हो जायेगो. तुमकु विपरीत दिशामें हाथ-पैर पछाड़ने होंय तो विपरीत दिशामें हाथ-पैर पछाड़ो कोई चिन्ताकी बात नहीं है. पौरुष तो है वामें भी, पौरुषको तो इन्कार कियो ही नहीं जा सके है.

एक बखत बनारस गये थे सो गंगाजीके प्रवाहमें तैरवेकी मजा लेवेकु नदीप्रवाहमें कूद पड़े. और वाके आनन्दोत्साहमें आंख मींचके हाथ-पैर चलाने शुरु किये तो कुछ बीस-पचीस मिनिट तक हाथ-पैर हिलाये. तैरवेकी मस्तीमें आजू-बाजू देख नहीं रहे थे. पर जैसे ही आंख खोलके कितने आगे बढ़े देखनो चाह्यो तो हम वहांके वहीं हते प्रवाहके विरुद्ध तैरनो चाहते थे, यासु तटकु कौंन देखे प्रवाहके विरुद्ध तैरनो चाह्यो वाकी तन्मयता हती पर आंख खोलके गरदन मोड़के देख्यो तो जा घाटसु प्रवाहमें कूदे थे वा घाटसु आगे बढ़वेके बजाय कुछ पीछे ही सरके भये हते हम तो हाथ-पैर पछाड़ रहे थे पर वेग वा तरफ जा रह्यो थो यासु आगे बढ़वेके बजाय, कोई समीकरण ऐसो हो गयो वाको के आगे तो नहीं पहुंच पाये पर पीछे पहुंच गये याके लिये कहे हैं के प्रवाहके विपरीत बहवेके लिये अधिक बाहुबल चइये. इतनी सशक्त बाहु चइये के जो प्रवाहकु काट सके. प्रवाहकु काट सके तो आगे पहुंच सके. नहीं काट सके और हमारी तरह हाथ पैर पछाड़तो रहे, तो थोड़ी देर हमारी तरह वा घाटसु पीछे ही रहके हाथ पैर पछाड़तो रहेगो. हमने कही अब कौंन जायेगो, जैसे तैसे घाटपे पहुंचके उतर गये के ये तो व्यर्थको उपद्रव भयो. प्रवाहस्थ होवेके बजाय तटस्थ रहनो अच्छो. पर मजा तो मिल गई जितनी मिलनी थी. मजा ही तो चइये थी.

भगवान् कह रहे हैं के यदि तुमकु नाम-रूपके बहते प्रवाहसु कुछ भय है, तो थोड़े तटस्थ होके देखो, तटसु तुम देखोगे तो प्रवाहको मजा भी मिलेगो और प्रवाह बहाके भी नहीं ले जायेगो. भक्ति तुमकु एक ऐसो अवकाश प्रदान करे है, जो तुमकु तटस्थ बनावे है. ये नाम-रूपके प्रवाहकी विपरीत या अनुकूल दोनों दिशान्सु तुमकु तटस्थ बनावे है. तुम तटपे आके खड़े रह जाओ, प्रवाहको मजा भी ले सको और प्रवाहमें बहवेको भय भी नहीं है. दोनों बातकी मजा तुमकु एक

साथ मिलेगी, ये मजा नाम-रूप निरन्तर तीव्र बहती सरिताके पास भक्तिरूपी तटपे सुलभ है. ज्ञानको मतलब है के तुम्हारेमें शक्ति होय तो प्रवाहकु काटके आगे बढ़ो, कोई चिन्ताकी बात नहीं है. तुम तो खड़े-खड़े पूछ रहे हो के पडूं के नहीं पडूं, तो तब तो पहलेसु तुम्हारो मन मर्यो भयो है. कइ बखत ऐसो होवे है के आदमी पहुंच जाये किनारापे नदीके और फिर पूछे के कूदूं के नहीं कूदूं? अरे भई जब सामर्थ्य है तो पूछवेकी जरूरत क्या? नहीं सामर्थ्य है, मन पहलेही तटपे डगमगा रह्यो है तो फिर कूदवेकी हिम्मत करियो मत. नहीं तो आगे पहुंचवेके बजाय पीछे पहुंच जायेगो, हमारी तरह.

(नामरूपकर्मके प्रबलप्रवाहमें तैरनो बहनो या तटस्थ बनके मजा लेनी)

भगवान् कहे हैं **''मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः.''** बड़ी श्रद्धासु तटपे खड़ो रह, दोनों बातके आनन्द तोकु बड़े मजासु मिलेंगे. नाम-रूपको प्रवाह निरन्तर वा अव्यक्तमेंसु निकल रह्यो है. काल कर्म स्वभाव प्रकृति पुरुषके संयोगसु नाम-रूपको प्रवाह प्रबल बनके बह रह्यो है. अव्यक्तमेंसु निरन्तर व्यक्त हो रह्यो है. उन प्रवाहन्को आनन्द भी मिलेगो और वा प्रवाहके साथ बह जावेको तोकु भय भी नहीं है. क्योंके तू भक्तिके तटपे खड़ो भयो है. भक्तिके तटपे एक तोकु सेफ्टी भी रहेगी और प्रवाहको आनन्द भी मिलेगो. दोनों बात मिलेंगी. यदि पड़नो है तो आगे कह रहे हैं **''ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च कूटस्थम् अचलं ध्रुवम्... सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः. ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः क्लेशो अधिकतरः तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्. अव्यक्ता हि गतिः दुःखं देहवद्भिः अवाप्यते''** (भग.गीता.१२।३-५). ये जो प्रवाह चल रह्यो है, वामें यदि तू तैरके आगे जानो चाहतो होय, तो चिन्ताकी कोई बात नहीं है. क्योंके ये तट भी वाईको मजा लेवेकी बतावे है, प्रवाहके साथ बहनो भी अन्तमें तो वाकी मजा लेनो है. प्रवाहकी दिशाके विपरीत बहनो भी नदीकी ही मजा लेनो है. नदीकी मजा तो हर स्थितिमें है. जाकु नदीसु थोड़ो भी स्नेह है, वाकु नदीकी मजा हर स्थितिमें आयेगी. आदमीमें हिम्मत चइये के नदी जा दिशामें बह रही है, वा दिशामें बहके मजा लेनो है तो कर्म करो आनन्दसु वा दिशामें बहके. कर्म नहीं करने होंय, ज्ञान करनो होयह्नविपरीत दिशामें बहनो होय, व्यक्तसु अव्यक्तकी दिशामें बढ़ो, बड़ो आनन्द है. कोई चिन्ताकी बात नहीं है. पर अन्तर इतनो ही है के क्लेश

है वामें. ये ध्यान रखियो. क्योंके नाम-रूपको प्रवाह, बहोत ही शक्तिसु बहोत सामर्थ्यसु, भगवान्के सर्वभवनसामर्थ्यसु प्रकट हो रह्यो है. वाकी काट कौन कर पायेगो? कर पायेगो तो चल आ. प्रश्न नहीं रह जाये. भगवान् कहें हैं ''तू मोकु ही प्राप्त करेगो आश्वस्त रह''. तू मनमें यह भय मत रखियो के व्यक्तमेंसु अव्यक्तकी दिशामें जावेसु 'मैं' भटक जाऊंगो. भटकनो कहीं भी यहां है नहीं. क्योंके सर्वत्र ब्रह्म है, भटकेगो कहां?

जहां भी जायगो वहां ब्रह्मही मिलेगो. ज्ञानमें ज्ञेयके रूपमें ब्रह्म मिलेगो. भक्तिमें भजनीयके रूपमें ब्रह्म मिलेगो. कर्मके कार्यके रूपमें ब्रह्म मिलेगो. ब्रह्म तो मिलेगो. तटपे खड़ो रहेगो तो ब्रह्म मिलेगो, प्रवाहमें विपरीत बहेगो तो ब्रह्म मिलेगो. अन्तर कितनो है के तीनोंके पहलु अलग-अलग हैं. या तरफ बहके गयो तो तोकु ब्रह्म मिलेगो, वा तरफ बहके गयो तो तोकु परमात्मा मिलेगो, तटपे खड़ो रहेगो तो भगवान् मिलेगो. अन्तर बस इतनो तो है.

ये जो मैंने तीन पहलु बताये ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्के, या बातकु सावधानीसु समझियो. एक-एक जो पहलु हैं वो तीनोंके तीनों पहलु एक ही ब्रह्मके हैं, या बारेमें कोई संशयकी बात नहीं है. पर भगवान्ने क्यों नहीं कह्यो अक्षरब्रह्मकु अहम्? वाको एक ही कारण है. भगवान् कह रहे हैं ''यदि अव्यक्तकी भाषा बोलनी है तो फिर मैं अक्षरकु अहम् भी नहीं कहूंगो. याकु अव्यक्त ही कहूंगो. अव्यक्तके लिये 'अव्यक्त' शब्द ही उचित है. वाके लिये 'अहम्' शब्द उचित नहीं है. तू भी तेरे लिये अहम् कहेगो तो फिर तू व्यक्तके चक्करमें फंस जायेगो पाछे. या लिये 'अहम्' मत कहियो. यासु उपनिषद्में कह्यो गयो है **''आत्मैव इदम् अग्रे आसीत्... सो अनुवीक्ष्य न अन्यद् आत्मनो अपश्यद्. सो 'अहमस्मि' इत्येव अग्रे व्याहरत् ततो 'अहं'नामा अभवद्. स यत्पूर्वो अस्मात् सर्वस्मात्... सो अबिभेत्. तस्माद् एकाकी बिभेति''** (बृह.उप.१।४।१-२). या वचनमें जगत्के व्यक्त होवेकी कारणावस्थाके रूपमें अहंबोध मान्यो गयो है और वा अहंबोधके भयमें परिणत होवेकी कथा साथमें कही गयी है. जगत्में प्रकट होती सारी भीतिके मनोभाव अपने अहंबोधपे अवलंबित होवे हैं. या लिये ही मरीजकु बेहोश करके वाके अहंकारकु बेअसर कर दें तो ऑपनहार्ट सर्जरीमें भी कोई तकलीफ या भीति होवे नहीं

यदि अव्यक्तकी उपासना करनी है **''ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः''** तो ये योगवित्तमताके आधारपे तू चकरा जायेगो क्योंके अहम्में भी कुछ न कुछ व्यक्तता तो आ ही गई. यदि अव्यक्ततताकु पकड़नी है तो या अहम्कु भी छोड़ दे. ये अहम्कु छोड्यो नहीं तेंने. वो एक सूफी संत कहे है **''खुदी कुफ्रस्त अग़र खुद पारसाईस्त''** जो खुदी है ये सबसु बड़ो कुफ्र है. पर ये कुफ्र कहां और कब होवे? 'खुदी' माने अहम्. ये खुदी कुफ्र है पर कहां कुफ्र है या बातको ध्यान रखियो, वो गलत नहीं कह रह्यो है, वो भी ठीक कह रह्यो है. खुदी कुफ्र है पर कौंनसे पहलुमें? जा बखत अपन् व्यक्तसु अव्यक्तकी दिशामें जा रहे हैं. ये खुदी कुफ्र हो जायेगी. ये ही खुदी जब भक्ति करवे लग जाओगे तो मजाको सबसु बड़ो साधन बन जायेगो. अपनी खुदीमें ही इतनी बेखुदी आ जायेगी के अपनेकु पता नहीं चलेगो के खुदी और बेखुदी के बीच अन्तर क्या है? पर वो पता कब चलेगो जब अपन्ने अपनो मन परमात्मामें डाल्यो. अपन् अपने आपकु परमात्मामें नहीं डाल रहे हैं, ज्ञानमें अपने आपकु अक्षरब्रह्ममें डालनो है, भक्तिमें अपन् तटस्थ होके अपने मनकु परमात्मामें डाले हैं. अन्तर ये है **''मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः''** मने अपने मनकु जा बखत भगवान्में डाल्यो तब तो भक्ति भई पर अपने आपकु भगवान्में डाल दियो, तो ज्ञान हो गयो. वो अपने आपकु भगवान्में डालवेको मतलब है, तुम व्यक्तसु फिर अव्यक्त हो जाओगे. अपने मनकु भगवान्में डाल्यो तो तुम खुद कायम रहोगे और एक ऐसी बेखुदी आ जायेगी वामें मनके डालवेके कारण, क्योंके जो भी कुछ खराबी पैदा भई थी, वो तो मनके कारण भई थी. वा मनकु यदि भगवान्में तन्मय कर दियो, मनकु तन्मय कियो खुद बाहर रह गये तो भक्ति हो गई. खुद तन्मय हो गये तो ज्ञान हो गयो. अन्तर इतनो ही है.

ज्ञानी खुद **''ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति''** (भग.गीता.१८।५४) बने है. भक्त ब्रह्मभूत नहीं होवे है, भक्त अपनो अहम् कायम रखे है. वो अहम् कायम रखते भये भी, ये अहम्के भीतर मनकी चंचलताके कारण जो खराब परिणाम हो सकतो हतो वासु बच जावे है. कौंनसे एक रहस्यसु? वो रहस्य ये है **''मयि आवेश्य मनो''** अपने मनकु वामें डाल देनो है. मन वामें डाल्यो नहीं के सारी बातको समाधान मिल गयो.

मन नहीं डाल पाये तो भक्तिमें भी थोड़ी खुराफात रहेगी. ये मैंने आपकु बतायो के आप भक्तपनेको अहंकार जगा लोगे. पर यदि मन वामें डाल दियो, मन यदि भगवन्मय हो गयो, तो फिर आपको अहंकार बाधक नहीं बनेगो. ये ही अहंकार आपकु प्रतीत होयगो **''भूमिः आपो अनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च. अहंकार इति इयं मे भिन्ना प्रकृतिः अष्टधा''** (भग.गीता.७।४). ये भगवान्को दियो भयो एक वरदान लगेगो अहम्. अहम् एक इतनो सुन्दर वरदान है, जा अहम्के कारण भगवान्कु 'तू' कहके भक्त पुकार सके हैं. कितनी बड़ी बात है? अव्यक्तकु 'मैं' 'तू' कहके पुकार सकूं हूं. ये कोई साधारण बात है या अहम्के कारण परमात्मा त्वम् बनेगो. **''पाहि मां त्वां प्रपन्नः शिष्यः ते अहम्''**. अर्जुन कहे है **''शिष्यः ते अहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्''** (भग.गीता.२।७). अव्यक्तकु अन्यथा कोई 'तुम' कैसे पुकार सके? वाकु ये कैसे कह्यो जा सके के ''तू मोकु ये बता के क्या युक्ततम है और क्या अयुक्ततम है?'' यदि ये अहम् कायम है तो वाको 'तू' कहके पुकार सकोगे. 'तू' कहके पुकार सकोगे. तो कुछ पूछ भी सकोगे. ''भई यहां बैठके बतिया ले के कौंनसी बात तोकु अच्छी लग रही है? कौंनसी बात मोकु अच्छी लग रही है?'' थोड़े से वासु बतिया लोगे तो ये अहम् सुधर जायेगो. ये ही अहम् बिगड़ भी जायेगो यदि मन भगवान्में नहीं मिल्यो तो.

(भक्तिकी आवश्यकता मनको भजनीयमें नित्ययोग परन्तु ज्ञानमें वो अनावश्यक)

याके लिये भक्तिकी पहली शर्त है **''मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः''** और ज्ञानकी पहली शर्त है अहम्-वहम्की पंचायत बादमें हो जायेगी पहले तू मेरेमें अपने आपकु मिलावेकु तैयार है के नहीं? या बातको खुलासा कर. यदि तू अपनी व्यक्तताको छोड़वेकु तैयार नहीं होवे और केवल अहम्को जोड़वे जायेगो तो अहम् वहां भी ठग लेगो तोकु. भार ब्रह्मकी बजाय अहम्पे आ जायेगो. **''अहम् ब्रह्मास्मि''** हो जायेगो. और यों फिर बात बिगड़ जायेगी. अहम् वहां भी ठगवे तैयार मिलेगो. पहली बात ये है के निश्चय कर के तू अपने आपकु मेरेमें मिलानो चाह रह्यो है के नहीं? अहम्की तो मैं संभाल लऊंगो. क्योंके अहम् तो भगवान्ने ही अपनेकु दियो है. भगवान्को दियो भयो अहम् है. वाको सुधारते भगवान्कु देर नहीं लगेगी. पर अहम्को

जैसे वहां बतायो **''दैवीहि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एतां तरन्ति ते''** (गीता.७।१४).

'प्रपद्यन्ते'के दोनों अर्थ हो सके हैं. याको एक अर्थ हो सके है शरणागति. एक दूसरो अर्थ ये भी हो सके है के जो मोकु अच्छी तरहसु जान जावे हैं. **''ये गत्यर्थकाः ते ज्ञानार्थकाः''** प्रकर्षेण ये बुद्ध्यन्ते जो मोकु अच्छी तरहसुं समझ जावे हैं वो ''मायाम् एतां तरन्ति ते''. यों ज्ञानमार्गमें भी उपाय सम्भव है. शरणागतिमें भी उपाय सम्भव है. पर प्रकर्ष होनो चइये. साधारण ज्ञान, खाली शास्त्रीय ज्ञानके आधारपे याको खुलासा नहीं आयेगो. क्योंके पंडित वोही जो गाल बजावा. गाल बजावे लग जाओगे. वो ज्ञान प्रकट नहीं होयगो. अच्छी तरहसु समझ जाओगे परमात्माकु, फिर कोई समस्या नहीं रह जायेगी. ज्ञानसु भी वाको समाधान हो सके है. शर्त केवल ये है के तुम अपने आपकु परमात्मामें मिलावेको तैयार हो के नहीं? **''यो अहं अस्मि ब्रह्म अहम् अस्मि अहमेव मां जुहोमि स्वाहा''** ब्रह्ममें अपने आपकी आहुति देवे तैयार हो के नहीं? अपने व्यक्त नाम-रूपकी आहुति अव्यक्त ब्रह्ममें देवे तैयार हो तो बात सुधर जायेगी ज्ञानमार्गकी. और यदि तैयारी नहीं है, तो भगवान् कह रहे हैं के युक्ततम तुम पूछ रहे हो या लिये कह रह्यो हूं. अभी युक्ततम नहीं लग रह्यो है. इट् इज् टू अर्ली. अभी इतनी उतावल मत करो. तटपे खड़े रहो. नहीं हिम्मत है तो पड़ो मत. पड़ो तो जा तरहसु बह रहे हो बहो, चिन्ता मत करो. क्योंके ये प्रवाह मैंने बहायो है, याको उद्गम् मेरेमेंसु निकल्यो है. कोई बह रह्यो है तो मेरे प्रवाहमें बहके जा रह्यो है. चिन्ताकी कोई बात नहीं है.

या लिये दोनों तरहसु भगवान् वाकु समझा रहे हैं **''ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च कूटस्थम् अचलं ध्रुवम्''** या विषयको विवेचन कल करेंगे.

ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च कूटस्थम् अचलं ध्रुवम्।।३।।
सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।४।।
क्लेशो अधिकतरः तेषां अव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिः दुःखं देहवद्भिः अवाप्यते।।५।।

इन तीन श्लोकन्में अब भगवान् अक्षरब्रह्मकी उपासनाको, अक्षरब्रह्मकी उपासनाके उपासक अधिकारीके स्वरूपको और उपास्य अक्षरब्रह्मके स्वरूपको वर्णन कर रहे हैं. कलके प्रसंगमें जैसे मैंने आपकु समझायो के अपन् छाछ बिलोवे और मख्खन तैरके ऊपर आवे. यदि दृष्टि केवल छाछपे ही है, मख्खनपे नहीं है तो ये लगेगो के ये तो नाम-रूप है. मख्खन नामको कोई तत्व नहीं है. तत्व तो छाछ ही है. दृष्टि यदि केवल मख्खनपे है छाछपे नहीं है, तो ऐसो लगेगो के मख्खन अपने आपमें कोई एक नयो तत्व है. मोकु बराबर ख्याल नहीं है पर यदि सामान्य बुद्धिसु सोचलें तो ऐसो प्रतीत होवे है के जितनी छाछमेंसु जितनो मख्खन निकल्यो, उतनी छाछ पियो और उतनो मख्खन खाओ, तो मैं नहीं समझू हूं के पेटके अन्दर जो जा रह्यो है, वामें कोई फरक पड़ेगो. फिरभी आदमी छाछ पिये तो सोचें के ये इतनी शक्तिदायक वस्तु नहीं है जितनी के मख्खन खावे तो सोचे के शक्तिदायक वस्तु है. तत्वके हिसाबसु सोचें तो जितनी छाछमेंसु जितनो मख्खन निकल्यो, वो हतो तो छाछमें ही, उतनी छाछ भी पीते तो शरीरमें जातो और मख्खन खायो तो भी उतनो ही शरीरमें जायगो. आदमी मख्खन खावे तो सोचे बड़ी शक्तिकी बात हो गई और छाछ पिये तो सोचे के ये तो खाली छाछ ही है.

(मुंहमें रखते ही गरमी सुहागसौंठकी नहीं पर वाके मसालाके महिमाकी)

एक प्रोफेसर् है बम्बईमें, उनने एक दिन आके हमकु कही ''महाराज ठण्ठी पड़े तो आपके यहां सुहागसौंठ बने?'' मैंने कही ''हां बने है'' बोले ''क्या क्या पड़े है वामें?'' मैंने कही ''बहोतसी चीजें पड़े है वामें. केसर पड़े, कस्तूरी पड़े, सौंठ पड़े.'' तो बोले ''एक दिन प्रसाद दो हमकु'' ठण्ठीके दिन ही हते. हमने

मंगाके दे दियो. एक टुकड़ा वाने मुंहमें डाल्यो और माथेपे हाथ रखके बोल्यो ''हाऽऽऽ खूब गरमी आ रही है'' मैंने कही ''इतनी जल्दी गरमी आ गई?'' गरमी वाको सुहाग सौंठकी नहीं आई पर जो वाने सुनी के केसर पड़ रही है, कस्तूरी पड़ रही है, वो सुनवेकी गरमी आ गई. उनकु भयो ''ओ हो गरमी आ गई खाते ही.'' खाते ही इतनी गरमी आती होती तो सबकु आनी चइये पर सबकु नहीं आवे. मतलब कहवेको क्या? जाकी दृष्टि मख्खनपे है वो यों समझे है, छाछ वाछ छोड़ो, अब छाछको क्या करनो? मख्खन खायो. ओ हो बड़ी शक्ति आ गई. सचमुचमें आदमी सोचवे लगे के शक्ति आ रही है तो आवे भी लग जाये. मनकी एक ऐसी खुराफात है के बैठके सोचो के शक्ति आ रही है, शक्ति आ रही है तो थोड़ी देरमें आवे लगेगी. पर बड़ो शक्तिशाली आदमी होय, वाके मनकु मार दो और कहो के शक्ति जा रही है, क्षीण हो रही है शक्ति. चेहरा उदास क्यों हो रह्यो है? शरीर क्यों दुबलो दीख रह्यो है? पांच दस पच्चीस जने मिलके रोज कहवे लग जायें, तो साल भरमें आदमी टी.बी. में आनन्दसु जा सके है. मने मनमें बड़ो भारी चक्कर है. सोचवे लग जाओ तो शक्ति आवे लग जाये, सोचवे लग जाओ तो शक्ति जावे लग जाये. अब शक्ति मख्खनकी आ रही है के सोचवेकी आ रही है, ये तो भगवान् जाने. बाकी आदमीके मनमें खुराफात ऐसी भरी है के जो सोचे वो होवे जरूर.

मेरे कहवेको मतलब क्या? मख्खनपे अपन् दृष्टि रखें तो अपनेकु लगे के छाछ वाछ तो सब ठीक है पर मख्खन अपने आपमें बड़ो भारी पदार्थ है. महान् तत्त्व है. जाकी छाछ और मख्खन दोनोंपे दृष्टि है, वो बराबर या बातकु समझेगो के चाहे छाछ लो या मख्खन लो, वो मंथन करके तैर गयो तो मख्खन हो गयो, नहीं मंथन कर्‌यो तो तरल रूपमें वो मख्खन छाछ ही हतो.

याई तरहसु अक्षरब्रह्मकु जा बखत अपन् ज्ञानसु, या विज्ञानसु, या कर्मसु मंथन करेंगे या परमात्मा ही जा बखत अपनेही संकल्पसु मंथन करे तो वो घनीभूत मख्खन सदृश एक साकार रूपमें प्रकट हो जाये. वा बखत वा मख्खनपे दृष्टि नहीं होय तो अपनेकु लगे के जो साकार रूप प्रकट भयो वो केवल नामरूप ही है और नामरूप तो सब मिथ्या होवे हैं. याके लिये असल तत्त्व तो अक्षरब्रह्म ही है. ये निराकार है, एक ऐसी दृष्टि. या दृष्टिकु भगवान् 'ज्ञान' कहें हैं, 'ज्ञानयोग' नहीं कहें हैं. ज्ञानके लिहाजसु ये बात ठीक है पर ज्ञानयोग कब होय? जैसे पंखा चले तो हवा फिंके अपने शरीरपे. पर वो हवा पंखा पैदा नहीं करे. पंखा तो घूमे है.

हवाकु पैदा नहीं करे है. पंखा तो हवा इक्ठ्ठी करके फैंके है. पर जा रूम्‌में हवा होवे ही नहीं और पंखा खूब तेज पूरी स्पीड्‌में चलादो तो भी हवा नहीं आयेगी. हवा तो आयेगी तब जब हवा रूम्‌में भरी होयगी. याही तरहसु साकार तत्त्व जब आ रह्यो है भक्तिके मंथनके द्वारा अथवा ज्ञान उपासनाके मंथनके द्वारा, आदमीने चित्त एकाग्र करके मंथन कियो वा अक्षरतत्त्वकु और अक्षरतत्त्वकी उपासनाके द्वारा मंथनसु, ये ज्ञानमार्गीय मंथन है अथवा अस्नेहात्मक मंथन.

(भक्ति और उपासना)

कुछ लोगन्‌कु भक्ति और उपासना आपसमें कन्फ्युज़न् पैदा करें. भक्तिकु उपासना समझें और उपासनाकु भक्ति समझें. उपासना और भक्तिमें थोड़ो अन्तर है. वाकी बारीकी समझोगे तो अक्षरब्रह्मकी बात समझवेमें बड़ी सुविधा होगी. अन्तर क्या है? उपासना संकल्पकी दृढ़ता, चित्तकी एकाग्रताके कारण कोई भी वस्तुकी हो सके है. जरूरी नहीं है के वा उपासनामें स्नेहको भाव होवे ही. भक्तिके लिये संकल्प भले ही थोड़ो कच्चो होय, पर स्नेह यदि मजबूत है तो बात संभल जायेगी. क्योंके भक्तिमें प्रधानता स्नेहकी है, संकल्प होनो तो चइये ही, संकल्प नहीं होयगो तो स्नेहमें भी आगे बढ़ नहीं पाओगे. संकल्प होनो चइये पर संकल्प वहां स्नेहको अंगभूत है और चित्तकी एकाग्रता उपासनामें बहोत बड़ो काम करेगी. भक्तिमें चित्तकी एकाग्रताके बजाय हृदयकी प्रधानता ज्यादा है. चित्तकी एकाग्रता और हृदयकी एकाग्रताको अन्तर अपन् कैसे समझें? समझ लो बहोत मोटे शब्दन्‌में मोकु आपकु समझाके कहूंगो तो चित्त मने बुद्धि. बुद्धि यहां है और हृदय यहां है. जा बातकु जैसे अपने घरमें कोई व्यक्ति आवे, वाको सत्कार करें, वो सत्कार यदि बच्चा है तो कोई बच्चा समझ पावे या रहस्यकु, कोई बच्चा नहीं समझ पावे या रहस्यकु के घरमें आये भये अतिथिको कैसे सत्कार करनो चइये. बच्चायें इधर उधर फिरते रहें, ध्यान नहीं दें आये भये अतिथिको. अपनेकु समझानो पड़े बच्चान्‌कु लड़के, फटकारके या स्नेहसु जैसी जाकी पद्धति होय, अतिथि आये हैं तो उनकु नमस्कार करो, अतिथि आये हैं तो उनके सामने नमस्ते करो, ये जो बात अपन् समझावें हैं, ये बात बच्चाके कहां जावे है, हृदयमें के बुद्धिमें? बुद्धिमें जाके जब बच्चाकु समझमें आ जावे के बाहरको जब कोई भी आये तो वाकु नमस्ते करनी चइये. स्नेह होयके नहीं होय, नमस्ते करनी चइये, ये बात बुद्धिसु समझमें आवे. पर स्नेहसु जा बखत कोई आवे, बच्चाके साथ जाको स्नेह सम्बन्ध

है, ऐसो व्यक्ति जब आवे तो वा बच्चाकु कहनो नहीं पड़ेगो के भई ये आयो है, याको तुम अेटेन्ड् करो. बच्चा दौड़के खुद वाकी गोदीमें बैठ जायेगो. बच्चा दौड़के वासु चिपक जायेगो. या वृत्तिमें स्वतः उत्साह है. यामें समझावेकी जरूरत नहीं पड़े है. जब स्वतः समझमें आ जाये बात, वामें वो शायद नमस्ते करे के नहीं करे, पर बच्चा जब दौड़के अपनी गोदीमें आ जाये, तो समझ लो के बड़ो स्नेह है आपके और वाके बीचमें. खाली नमस्ते करके, चाचाजी नमस्ते, करके चल्यो जाये, तो ये अपन्ने वाको डिसिप्लिन्तो समझा दी है, अनुशासन तो समझा दी है, ये कोई बुरी बात नहीं है, ये भी होनी चइये, पर ये बात वामें बुद्धिसु आई है, स्नेह होनो वामें जरूरी नहीं है. जा बखत हृदयकी बात है, वा बखत वाकी बुद्धिमें आई के नहीं आई है, स्नेह होनो वामें जरूरी नहीं है. जा बखत हृदयकी बात है, वा बखत वाकी बुद्धिमें आई के नहीं आई, पर वो आपको नमस्ते करे के नहीं करे. अपन् कोईके घरमें जायें और बच्चा आके चिपक जाये, तो अपनो उत्साह कितनो?

मने एक बात बुद्धिसु समझमें आई और एक बात समझमें आई के नहीं आई, हृदयने वा तरफ अपनेकु खींच लियो. इन दोमें जो अन्तर है वो ही ज्ञानको और उपासनाको और भक्तिको अन्तर है. उपासनामें अपन् बुद्धिसु या बातको निष्कर्ष लें है के चित्तको एकाग्र करनो है, क्योंके चित्त भटक रह्यो है तो वाको एकाग्र करनो है. अपन्ने संकल्प कियो, संकल्प कभी डगमगायेगो, दो दिन डगमगायेगो, भगवान् गीतामें आज्ञा करे हैं ''**अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोसि मयि स्थिरम्. अभ्यासयोगेन ततो माम् इच्छ आप्तुं धनञ्जय**'' (भग.गीता.१२।९). देखो तो भाषा कैसी है? कोई ब्याहके नवविवाहिता पत्नी घरमें आवे और अपन् वाकु कहें के ठीक है के तुमकु प्रेम नहीं हो सकतो होय तो थोड़ो अभ्यास करो हमसु प्रेम करवेको. आज्ञा करवेसु प्रेम होयगो? अभ्यास करवेसु प्रेम नहीं होयगो, प्रेम तो होयगो तो होयगो, अभ्यास रोज कर रहे हैं बैठके, अभ्यास करवेसु प्रेम प्रकट नहीं होयगो. अभ्यासके कारण प्रकट्यो प्रेम प्रेम होयगो के नहीं ये भी संदेह है क्योंके वामें बाहरी क्रियायें तो सब प्रकट हो जायेगी, पर अन्दरको उत्साह, अंदरकी उमंग नहीं होयगी. वो ''नमस्ते चाचाजी'' वालो ही हिसाब रहेगो. नमस्ते चाचाजी और ये जा वो जा. बच्चा कितनी देर खड़ो रहेगो? कई बखत ऐसी हो जाये घटना. मतलब अभ्यासकी बात अपन्ने बुद्धिसु समझी है और एक हृदयकी बात जाकु

समझवेकी जरूरत नहीं है. स्वतः प्रकट हो जाये. या तरहसु उपासना और भक्तिमें अन्तर है. उपासनामें अपनी तरफसु कुछ साधना है परमात्माके तरफ बढ़वेकी, वो ज्ञानमार्गीय प्रकार है. भगवान्में बुद्धिकु लगावेको प्रकार है. भक्तिमें भगवान्में बुद्धिकु लगावेको प्रकार नहीं है. भक्तिमें भगवान्के साथ हृदय लगावेको प्रकार है. हृदय लगेगो तो लगेगो और नहीं लगेगो तो नहीं लगेगो. पर जो आदमी भक्ति और उपासनामें गड़बड़ी करे है, वाकु समझमें नहीं पड़े. कभी वो भक्तिके नामपे उपासना करे, कभी उपासनाके नामपे भक्ति समझ ले और सब गड़बड़ हो जाये.

(भक्तिके अनुभाव बेबसीके पर उपासनाके ऐच्छिक)

हमारे एक परिचित शास्त्रीजी हैं. अब शास्त्रीजी हैं तो प्रवचन भी करें हैं. अब उनने पढ़ लियो के भक्त हैं तो आंखमें आंसू आने चइये, चित्त द्रवीभूत रहनो चहिये, कंठ गद्गद् होनो चइये. जब प्रवचन करें तो ऐसो मजेदार प्रवचन करें ''और फिर भगवान् मथुरा चले गये'' और रोवे लग जायें. फिर अक्रूरजी आ गये करके हंसवे लग जायें. अरे भाई रोवेको अभ्यास. कंठकु गद्गद् करवेको अभ्यास, ये कोई भक्ति नहीं है. ये तो कोई बाहरकी अपनी टेकनीक् हैं जो कोई भी अभिनेताकु सिद्ध हो जाये. ऐसे अपनेकु भी सिद्ध हो गई प्रवचन करते करते, ये टेकनीक् दूसरी चीज है और भक्ति दूसरी चीज है. हमने कही ''आप कायकु रोते रहो हो हर बखत?'' उनने कही ''हमकु भगवान्की याद आवे''. हमने कही ''याद आवे तो भगवान्के पास बैठे रहो, गाममें प्रवचन क्यों करो?'' तो बोले ''प्रवचन करनो तो मेरो धर्म है''. मैंने कही ''वा धर्मकु भगवान्के लिये छोड़ दो''. उनने कही ''वो तो नहीं छूट सके''. मैंने कही ''भगवान्कु याद करनो बन्द कर दो''. तो बोले ''प्रवचन करें तो याद आवे'' अरे भाई बातचीत कर रहे हो तब याद नहीं आ रही है. सो रहे हो तब याद नहीं आ रही है भगवान्की, खा रहे हो तब याद नहीं आ रही है, प्रवचनके बखत ही याद आ रही है भगवान्की ऐसी कैसी याद है भगवान्की आदमी भक्तिके नामपे ऐसे ऐसे उल्टे अर्थ समझ जाय. ये उपासना है भक्ति नहीं है. अन्तर समझो. बात बुरी नहीं है. अभ्यास कर रहे हो भगवान्की दिशामें जो कदम धर रहे हो वो सब अच्छें हैं. बात बुरी नहीं है, पर ये उपासना है. जब आपने चित्तसु बुद्धिसु निर्णय लियो और बुद्धिसु निर्णय लेके, संकल्प लेके, जो केलक्युलेटेड् स्टेप्स् हैं मने गिन-गिनके जो कदम आप धर रहे हो, वो तो सब उपासना है और बिना गिने कदम उठ जाये वा तरफ तब वा कदमकु भक्तिको कदम समझियो. जब गिनके

आपने कदम रखे, जब फूंक फूंकके आपने कदम रखे के अब ये करनो है, अब कंठकु गदगद बनानो है, अब थोड़ी देर रोती आवाजमें बोलनो है, अब थोड़ी देरमें आंसु पोंछ लेने हैं, ये सब प्रकार उपासनाके प्रकार हैं. ये भक्तिके प्रकार नहीं हैं, क्योंके उठाये गये कदम हैं, उठे भये कदम नहीं हैं. उठे भये कदम भक्तिके कदम हैं और उठाये भये कदम उपासनाके कदम हैं. इन बातन्को भेद समझनो चइये. नहीं समझें तो भगवान्की **''ये तु धर्म्यामृतम् इदं यथोक्तं पर्युपासते श्रद्दधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः''** (भग.गीता.१२।२०). रहस्य समझ नहीं पायेंगे. अपन् भक्तिके नामपे उपासना करके अपने आपकुं या तो ठगना चाहते होंयगे या भगवान्कु ठगना चाहते होंयगे. जैसे घरमें अतिथि आवे थके भये होंय अपन् फिर भी अतिथि आयो तो स्वागत स्वागत स्वागत, पर मनमें बाट देखते रहें के पाछे जावे तो अच्छो, अपन् लेटें. या तरहसु बुद्धिसु गिनी भई चालें हैं व्यवहारमें, वो चाल भगवान्के साथ भी चलनी हैं, कोई बुरी बात नहीं है. भगवान्के साथ तो हर बात हो सके है, ये बात भी हो सके है. या लिये भागवतको तो इतनो उत्तम दृष्टिकोण है **''गोप्यः कामाद् भयाद् कंसो द्वेषाद् चैद्यादयो नृपाः सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो''** (भाग.पुरा.७।१।३०) कोई कामसु भी भगवान्की तरफ आगे जाये, गोप्यः कामाद्. कोई भयसु भी भगवान्की तरफ आगे जाय भयात् कंसः. शिशुपाल द्वेषसु भगवान्की तरफ आगे जाय. जा तरहसु भगवान्की तरफ जावे, वो तो अच्छी बात है, कोई बुरी बात नहीं है. पर दो बातन्कु कन्फ्युज् मत करियो. मेरे कहवेको तात्पर्य इतनो ही है. वो बात बुरी नहीं है पर कभी भक्तिकु उपासना मत मानो, उपासनाकु भक्ति मत मानो.

ये बात के भक्तिमार्गपे आगे बढ्यो नहीं जायेगो वाके लिये भक्ति तैरनो नहीं है, भक्ति बहनो है. भक्तिकी सरितामें कोई कहे के मैं तैरूं तो वो तैरवेवाली बात भक्ति नहीं है. सरितामें बहवेकी बेबसीकी एक बात है. मस्तीकी बात है. या लिये भगवान् कह रहे हैं के तुम जब मेरेसु पूछ रहे हो ''श्रेष्ठ कौंन है?'' तो अक्षरकी जो उपासना कर रहे हो **''ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते''** ये उपासना है. उपासनाके कदम बड़े गिने भये होने चइयें. गिने भये कदमसु अपन्ने उपासना नहीं करी तो कुछ गड़बड़ी हो सके है. बिन गिने भये कदममें कुछ गड़बड़ी भी भई तो सम्भालवेवाले भगवान् हैं. आगे जाके भगवान् कहेंगे **''तेषाम् अहं समुद्धर्ता**

मृत्युसंसारसागरात् भवामि नचिरात् पार्थ'' (भग.गीता.१२।७) क्यों वाकी शर्त क्या है?

''मयि आवेशितचेतसाम्'' शबरीने झूठे बेर खवा दिये, ये कोई बात तो नही भई के भगवान्कु झूठे बेर खवाने. पर वो उपासनाकी बात नहीं थी, स्नेहकी बात थी, होश नहीं हतो के झूठे बेर खवा रही हूं. कैसे खवाने चइयें? रामको क्या स्वरूप है? वाकु कैसे बेर खवाने चइयें? राम आये स्नेह आयो बेर हते, चिन्ता प्रकट हो गई के बिना खाये कैसे पता चलेगो? झूठे बेर खवा दिये. ये बिना गिने भये कदम हैं. ये स्नेहके कदम हैं, ये उठ गये हैं कदम, उठाये नहीं हैं. पर यदि अपन् ठाकुरजीकु कलसु भोग घरे झूठे कर करके ''लो महाराज हमारो भी शबरीके जैसो अधिकार है.'' अरे भई वो अधिकार नहीं है, वो भक्ति नहीं रह गई. ये तो उपासना हो गई. तुम शबरीकी नकल कर रहे हो. तुम शबरी नहीं हो. तुम शबरी भी नहीं हो सको, ये बात समझो. शबरीने तो झूठे बेर धर दिये थे, धरवेको सोच्यो नहीं थो. उपासनाके कदम तो बड़े व्यवस्थित होने चइयें. नपे तुले होने चइयें. नपे तुले होयगें तो वाको परिणाम आयेगो. नपे तुले नहीं भये, वामें डगमगाये तो वाको दुष्परिणाम भी आ सकें हैं. भक्तिके कदम लड़खड़ा भी गये, कभी डगमगा भी गये तो कोई चिन्ताकी बात नहीं है, क्योंके वो स्नेहसु उठे भये कदम हैं. वो ठीक उठाये गये कदम नहीं हैं. दो बातन्को अन्तर समझनो चईये. ये बातको अन्तर समझे तो अपनेकु पता चलेगो. **''ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च कूटस्थम् अचलं ध्रुवम्''** भगवान् 'पर्युपासते'सु क्या कहनो चाह रहे हैं? **परि–उपासते** उपासना करनी है व्यक्तमें अव्यक्तकी. दिखलाई दे रह्यो है, सारो जगत् दिखलाई दे रह्यो है, उपासक अपने आपकु दिखवेमें व्यक्त समझ रह्यो है, दृश्य जो कुछ भी दुनियामें है, वो व्यक्त ही व्यक्त है और ये सारे या दृश्यमें वा अनिर्देश्यमें, अनिर्देश्यको मतलब क्या के जाको निर्देश कियो नहीं जा सके, जाकु दिखायो नहीं जा सके, वाकी उपासना करनी चइये. जाकु नहीं दिखायो जा सके वाकी उपासना करनी है, जाकु सोच्यो नहीं जा सके वाकी उपासना करनी है. जो दिखलाई नहीं दे वाकी उपासना करनी है. जो सुनाई नहीं पड़े वाकी उपासना करनी है. कहां करनी है सुनाई पड़ती ध्वनिन्में, दिखलाई देते भये रूपन्में, जो न दिखलाई देवेवाले तत्वकी उपासना करनी है, न सुनाई देवेवाले तत्त्वकी उपासना करनी है **''ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते.''** अब वो तत्व है कहां?

वो तत्व, अक्षरकी उपासना, अव्यक्तकी उपासना, वो ऊपर नहीं है. अपन् भगवान्के लिये यों कहें के भगवान् वैकुण्ठमें हैं, भगवान् कैलाशमें हैं, खुदा बहिश्तमें हैं. पर अक्षर ऊपर नहीं है. अक्षरतो आपके चारों और है. या लिये अक्षरकी उपासना कहां होयगी? **सर्वत्रगम्** कहीं भी हो सके है. जब आपने कोई एक ठिकानाको आग्रह पकड्यो के या ठिकानेमें अक्षरकी उपासना करो, तो समझ लो के अक्षरकी उपासनामें आपके उठाये भये कदममें कहीं कोई गल्ती हो गयी है. जब आपने सोच्यो के मैं यहां करूंगो और वहां नहीं करूंगो तो आपकी उपासनामें कुछ चक्कर है. आप अव्यक्तकी उपासना नहीं कर रहे हो, अव्यक्तके नामपे आपने फिर कोई व्यक्त प्रतीक खड़े कर लियें हैं. जब आपने व्यक्त प्रतीक खड़े कर लिये, तब फिर आप अव्यक्तकी उपासना कर नहीं पाओगे. क्योंके अव्यक्तकी उपासना अव्यक्तरूपमें होनी चइये. जब आपने व्यक्तरूपन्में उपासना करी तो वो उपासना अव्यक्तकी नहीं रह जायेगी. वाके लिये वाकी एक व्यवस्था बताई जाये ज्ञानमार्गमें. ज्ञानमार्गमें सारी उपासना साधनस्तरकी हैं. अव्यक्तोपासना साध्येतरकी उपासना है. व्यक्तोपासना ज्ञानमार्गमें स्टेपिंग्स्टोन् है. स्टेपिंग्स्टोन्को मतलब क्या?

(शाखारुन्धतीन्याय उपासनामें अच्छो भक्तिमें खराब)

जैसे कोई बहोत झीनो तारा होय, जो दिखलाई नहीं देतो होय. वाकु कोईकु दिखानो होय. अब वा आदमीकी वापे निगाह नहीं जाती होय तो अपन् कोई पेड़की डाल, पेड़की शाखा बतावें के या पेड़की शाखाकु देखो. दरअसल पेड़की एक शाखा दिखानी नहीं है. दिखानो है अपनेकु झीनो तारा. पर ऐसे झीने तारापे निगाह जा नहीं रही है, या लिये पेड़की एक शाखा दिखलाई जाये, जो पेड़की शाखा दिखलाई जाये, वो सिर्फ आंखकु बांधवेके लिये है. यहां वहां भटकती आंखकु एक दिशामें बांधवेके लिये है. यदि वा दिशामें आंख बंध गई तो वा झीने ताराकु देख पाई तब तो ठीक है और वा दिशामें आंख बंधी नहीं और यहां वहां भटकती रही, तो वो तारा दिखलाई नहीं देयगो. याके लिये **शाखा अरुन्धतीन्याय** कह्यो जाय. अरुन्धतीको झीनो तारा दिखलाई न दे तो वाको दिखलावेके लिये कोई वृक्षकी शाखा बतलाई जाये. फिर कह्यो जाय के अच्छा वृक्षकी शाखा देखी, या शाखाके उपर देखो. मने पहले कोई चीज स्थापित करी जाये. फिर वा चीजकु हटा दी जाये. अपन् शाखादर्शनकु उपासना समझें और ताराकु ज्ञेय समझें. तो उपास्य ब्रह्म और ज्ञेय ब्रह्ममें यहां भेद है. कोई चीज ब्रह्म तरीके उपासना करके चित्तकु एकाग्र

कियो जाय. चित्त एकाग्र भयो मने बुद्धिमें पनपी सामर्थ्य के वो एकाग्र हो सके है. एकाग्र होवेके साथ ही, कोई एक भी व्यक्तरूप नहीं होनो चइये. यदि व्यक्तरूप भयो तो अव्यक्त तक आपकी दृष्टि पहुंच नहीं सकेगी. याके लिये अव्यक्तकी उपासना अनिर्देश्यकी उपासना है. अनिर्देश्यकी उपासनामें निर्देश साधनस्तर तक होनो चइये, साध्यस्तर तक नहीं जानो चइये. साध्यपे यदि निर्देश पहुंच गयो, मने शाखापे ही आपकी आंखें अटक गई तो आपकी उपासनामें भी उठे भये कदम अटक गये हैं या भटक गये हैं, ये बात निश्चित समझो. शाखाकु छोड़ देनी पड़ेगी.

(अध्यारोपापवादसु आगे ज़ेनसाधनामें अपोहितांगीकारकी प्रक्रिया)

अपने यहां जैसे बौद्धधर्म है वैसे बौद्धधर्मको एक रूप चीन जापान में ज़ेनधर्म भयो. ज़ेनधर्ममें उपासनाकी पहली या दूसरी टेक्सट्में एक बड़ी मजेदार बात बताई जाये. उपासना करते भये साधककु बुलाके वो पूछें ''तुम कहां उपासना कर रहे हो?'' उपासक जहां उपासना करतो होय वा स्थलको नाम बतावे. मसलन ऐसे समझो के कोई कहे के मैं गांवके बाहर बगीचामें बैठके उपासना कर रह्यो हूं. अब वामें ऐसो कह्यो जाय के जो गुरु उपासनाकी शिक्षा दे रह्यो है वाकु पूछनो चइये ''अच्छा जहां बैठके उपासना कर रहे हो, वहांको तुम वर्णन करो''. अब वो वर्णन करे के मैं जहां बैठके उपासना कर रह्यो हूं, वहां एक इमलीको पेड़ है, एक आमको पेड़ है या एक पीपलको पैड़ है, कुछ पत्थर हैं, कुछ पहाड़ है, कुछ क्यारियें हैं, एक बैठवेकी बेंच् है या फुहारा है ये है वो है. जो कुछ भी वो बतावे, तो वा उपासककु वाको गुरु कहेगो ''अच्छा, अब जाके उपासना ऐसी करो, आंख मीचके के ये सबकुछ जो तुमने बतायो वो वहां नहीं है. वहां बैठके अब तुम ऐसी उपासना करो जामें ऐसो लगे के ये कुछ भी नहीं है. चित्तकु या तरहसु सुदृढ़ बनाओ के जो तुमकु दिखलाई दे हैं, आंख मीचवेकी जरूरत नहीं है, खुली आंखसु वो तुमकु दीखते होंय वा बखत अपने संकल्पकु इतनो दृढ बनाओ के वो तुमकु वा संकल्पशक्तिके कारण दिखलाई देते भये भी नहीं दिखलाई देतेसे लगें''. जब संकल्पशक्तिकी इतनी सिद्धि हो जायेगी, तब वो कहे ''अच्छा फिर सोचो पाछे के वो हैं. क्योंके एक बार तुमकु नहीं है पे आग्रह जुड़ गयो तो वोभी संकल्पशक्तिको भटकनो है''. वाके लिये वो यों कहें हैं के एक बखत जब तुमकु ये बात समझमें आ गई के तुम्हारी संकल्पशक्ति तुमने याके कारण इतनी सुदृढ़ कर ली के जो है वो ही वृक्ष नहीं भी है ऐसे तुम सोच सको हो, तो बस बात बन गई. अब वो

है ऐसे फिरसु सोचो. तब चिन्ताकी बात नहीं है क्योंके नहीं है सोचोगे तो नहीं है पे अटक जायेगी गाड़ी, तुमकु है और नहीं है, इन दोनोंसु ऊपर उठनो है.

वा दिन मैंने आपकु बतायो थो के है और नहीं है याको विचार बुद्धिके भीतर तर्कके जो डब्बा भर रखें हैं, उन् डब्बान्की बात है. वो यों कहें हैं के इन डब्बान्सु ऊपर उठके, एक स्थितिपे बुद्धिकु पहुंचानो है जो अव्यक्त है जामें न तो ''कोई है'' कह्यो जा सके और न ''नहीं है'' कह्यो जा सके.

जैसे भक्तिकी एक सामान्य बात आप लो. अपने यहां भक्तिके प्रकारमें ये बात समझाई जाये है के जा बखत अपन् भक्ति शुरु करें, वा बखत अपनेकु अनन्यासक्ति होनी चइये. हर रूपकी भक्ति नहीं हो पायेगी. हर रूपकी उपासना हो सके है. जब भक्ति अपनी पराकाष्टापे पहुंचेगी, तब सारे रूप वाके ही रूप हो जायेंगे. वा प्रेमकी प्रबलताके कारण हर रूप वामें ही दिखलाई देयगो. वा बखत फिर सारे रूप अलाउड् हो जायेंगे. पर जब वो भक्तिकी पराकाष्ठापे पहुंचे, वा भक्तिकी अवस्थाकु अपने यहां सर्वात्मभाव कह्यो गयो है. सर्वात्मभावको मतलब क्या? अपनो प्रेम वा प्रगाढ़तामें पहुंच गयो के हर चीज अपनेकु अपने प्रियतममें दिखलाई देवे लग जाये. जब हर चीज अपनेकु अपने प्रीतममें दिखलाई देवे लग जाये तो वो प्रेमकी प्रगाढ़ता है. जब हर जगह प्रियतम दिखलाई देवे लग जाये तो वाके प्रियतमके अव्यक्त होवेकी प्रक्रिया है. धीरे धीरे वो अपने रूपन्कु खो रह्यो है. रूपन्कु खोके वो हर जगह दिखलाई दे रह्यो है. सर्वत्र वाको भान होनो और सब कुछ वामें भान होनो, दोनोंमें अंतर है थोड़ोसो. सर्वात्मभाव और सर्वात्मबोधमें ये ही अंतर है. ज्ञानीकु धीरे धीरे ऐसो दिखलाई देवे लगे है के सर्वत्र ब्रह्म है और वो कौंनसो है? **''सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च कूटस्थं अचलं ध्रुवम्''** वाकु ब्रह्मको भान सर्वत्र होवे और भक्तकु सब कुछ ब्रह्ममें दिखलाई दे है. ये ज्ञानी और भक्त दोनोंके अप्रोच्में बेसिक् अन्तर है. भक्तकु सब कुछ ब्रह्ममें दिखलाई दे है और ज्ञानीकु सर्वत्र ब्रह्म दिखलाई दे है. बात बहोत थोड़ेसे अन्तरसु आ रही है. ध्यानसु देखोगे तो समझमें आयेगी के हर विषयमें, हर नाम रूपमें ब्रह्मको भान होनो, ये ज्ञानकी पराकाष्ठा है और हर नाम-रूपको ब्रह्ममें भान होनो, ये स्नेहकी पराकाष्ठा है.

(भर्ता सन् म्रियमाणो बिभर्ति)

आपकु एक सामान्य बात बताऊं. एक पति समृद्ध होवे, विवाह होवे वाको. समझो कोई कारणसु वो पति गरीब हो गयो. अब यदि पति गरीब हो गयो और पत्नी वा बखत ये सोचवे लग जाये के या बखत इनके पास गाड़ी भी नहीं है. या इनके पास एक टी.वी. दिलावेकी सामर्थ्य भी नहीं है. या इनके पास दो बखतको आटा जुटावेकी सामर्थ्य नहीं है. अब ये पति पत्नीको रिश्ता डिफाईन् हो जानो चइये. तो अपन्ने पतिको ज्ञान प्राप्त कियो के पतिकु स्नेह कियो? जाकु यदि स्नेह है पतिके प्रति, वो समृद्ध है तब भी पति लगेगो, असमृद्ध है तब भी लगेगो. सम्पदामें भी पति लगेगो. विपदामें भी पति लगेगो क्योंके वाकु सब कछु पतिमें ही दीख रह्यो है. टी.वी. भी पतिमें दीखेगो और गाड़ी भी पतिमें दीखेगी. वाकु सब कुछ पतिमें दीखेगो. वो गाड़ीमें पति नहीं खोजेगी. पतिमें गाड़ी खोज रही है. पतिमें टी.वी खोज रही है. टी.वी. में पति नहीं खोज रही है.

अब वो यों कह दे के टी.वी नहीं दिवायो तुमने, ट्रांजिस्टर् तुमने नहीं दिवायो, एक सोनोकी माला भी नहीं दिवाई तुमने, अब तुम पति क्या कामके? अब ऐसो पति कोई कामको नहीं है. पर याके पहले ये बात नक्की समझ लो के तुम पत्नी भी वाकी नहीं रह गई. क्योंके ये सम्बन्ध स्नेहको नहीं रह गयो, ये सम्बन्ध ज्ञानको रह गयो. एक अधिकारको रह गयो. ये स्नेहको नहीं रह गयो. स्नेहमें अधिकार दूसरे तरहको अधिकार है. ये अधिकार दूसरे तरहको अधिकार है दावाबाजीको अधिकार है के पति भये हो तो एक सोनाकी माला तो कमसु कम दिलानी चइये के नहीं हर महीना एक नई साड़ी नहीं दिलाई तो पति क्या कामको? वो साड़ीमें पति खोजे है. पतिमें साड़ी नहीं खोज रही है. जैसे सीताके लिये अपन्ने रामायणमें देख्यो के नहीं? सीताजीने जब राम राज्यपे हते, राज्यासीन हो रहे थे तब भी उनमें अपनो पति खोज्यो और जब वनवास उनको दियो गयो तब भी उनने कही के मेरे राज्यसु क्या मतलब है? मेरो मतलब तो रामसु है. तो जो रामको चुने है वो वनमें भी रामको चुन सके है और वो महलमें भी रामको चुन सके है. जो रामको नहीं चुन रही है तो वो यूरोप्में अक्सर कई बखत ऐसो होवे के पति नाकसु खुर्राटा लेतो होय सोते बखत तो कहे के नींदमें बहोत डिस्टर्ब करे, चलो तलाक दो. वहांको कानून भी याकु मान्य करे है के भई पति नाकसु बहोत खुर्राटा लेतो होय और नींद नहीं आती होय, ऐसी स्थितिमें क्या कियो जाय? यासु तलाक देवेकी आवश्यकता

है. अब नींद नहीं आवे खुर्राटाके कारण तो क्या करे? स्थिति ऐसी है क्योंके वहां सम्बन्ध ऐसे जटिल हो गये हैं, स्नेहको कोई प्रश्न ही नहीं रह गयो. वहां सीधीसी बात ये है के खुर्राटा ले रहे हो, डिस्टर्बन्स् हो रह्यो है, पति होवेके लायक नहीं हो.

हमारे गुरुजी लंदन गये तो सुपर बाजार घूमवे गये. वो बता रहे थे. हमारे गुरुजी अस्सी बरसके और उनकी पत्नी भी सत्तर-पचहत्तरकी तो होयगी. वहां खड़े भये थे. सब देख रहे थे. तो एक अंग्रेज औरत आई. वाने पूछ्यो आके ''वो बूढ़ो कौंन है?'' तो वाने कही ''हमारे पति है'' तो उनने पूछी ''कितनोवों पति है?'' उन बिचारीकु बुरो लग गयो हमारी गुरुआईनजीकु ''मतलब क्या तुम्हारो?'' ''मतलब क्या कितनोवों पति है इतनो बूढ़ो है तो?'' तो उनने कही ''हमतो सोलह बरसके हते तबसु'' तो वो अंग्रेज औरत बोली ''सित्तर बरससु एक ही पति'' उनने कही ''तुम्हारी धीरज बहोत गजबकी है.'' उनने सोची के इतने बूढ़े पति-पत्नी हैं तो कमसु कम तीसरो चौथो नहीं तो दूसरो तो होयगो उनने कहीं ''सत्तरह बरस तक एक ही पति खाली'' ये स्थिति के सत्तरह बरस तक एक ही पति, ये बात उनकु समझमें क्यों नहीं आवे? क्योंके वहां स्नेहको प्रश्न नहीं है. वहां सिर्फ समझौता को प्रश्न है. एक सामाजिक समझौता है, जा समझौताके तहत जैसे एक बैलगाड़ीमें दो बैल जुड़ जाये हैं, उनपे एक जुआ रख्यो भयो है, वा जुआमें बंधे भये हैं, उनकु गाड़ी ढ़ोनी पड़े है गृहस्थीकी. एक वो स्थिति और एक वो स्थिति जामें स्नेहको जुआ है. वो स्नेहके जुआसु आपसमें एक दूसरेकु ढ़ो रहे है. ये स्थिति है या लिये वेदमें बहोत सुन्दर कह्यो है **''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति''** परमात्माको स्वरूप कैसो है? भर्ता है, भर्ता मने तुम्हारो भरण करवेवालो. तुम्हारो भरण वो कब करे? **भ्रीयमाणो**. जब तुम वाको भरण करो हो तो वो तुम्हारो भरण करे है. जब वो तुम्हारो भरण करे है, तब तुम वाको भरण करो हो. ये अन्योऽन्याश्रित सम्बन्ध है परमात्मा और जीवात्माके बीचमें. वो एक स्वार्थ सम्बन्धपे निर्भर नहीं है. **''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति''** या न्यायसु स्नेहको सम्बन्ध एक अलग जातको सम्बन्ध है. वामें सहज ही पता नहीं चले. जैसे घरमें अपन् झाड़ू काढ़ें, घरमें अपन् रसोई बनावें, घरमें सब कुछ काम करें. पर न तो वाकु ये बोध होवे जो आज मोकु भंगी बना दियो के आज मोकु रसोइयानी बना दियो या जलगढ़िया बना दियो. समझो के पतिकु कुछ काम करनो पड़े तो वाकु ये बोध होवे पर जहां ये बोध होवे लग

जाये, वहां समझो के समझौता हो गयो है. ये स्नेह नहीं है. स्नेह और समझोता के स्वरूपमें बहोत अन्तर है. अक्षरके साथ समझौता करके चलनो पड़ेगो. वहां स्नेहको प्रश्न नहीं है. क्योंके एक बुद्धिसु की जावेवाली उपासना है. बुद्धिसु की जावेवाली उपासनाको स्वरूप और भक्तिके स्वरूपमें एक मौलिक अन्तर है के वो गिने कदम हैं और ये अनगिने कदम हैं.

मैंने रीडर्ड्डाईजेस्ट्में एक बात पढ़ी थी, एक घरमें नयो रंग-रोगान हो रह्यो थो. रंग-रोगान हो रह्यो थो तो वहां एक छोटी बच्ची हती. जब माँ कुछ खरीदारी करवेके लिये बाहर गई, तो बच्चीने देख्यो के माँकु बड़ो उत्साह है के घरकी दीवालन्पे रंग लग रह्यो है. वाने कही के ठीक है माँ बाहर गई तो ले ब्रश् टी.वी.पे, कुर्सीपे, यापे वापे जापे वासु ब्रश् चल्यो, सब पे चला दियो. वाकु क्या पता के क्या चक्कर है यामें? गिने भये कदम तो हैं नहीं. वाके मनमें सिर्फ इतनी भावना हती के मां खुश है के घरमें नयो रंग हो रह्यो है तो जो मेरेसु लगायो जा सके, जहां तक मेरो हाथ पहुंचे, वहां तक तो ब्रश लेके रंग लगा देनो जब आके माँने देख्यो के कुर्सीपे, टी.वी.पे सब जगह रंग पुतो भयो थो और वा बच्चीके हाथ भी रंगसु पुते भये हते. तो बच्चीको हाथ कहां तक पहुंचे, जहां-जहां पहुंचे वहां-वहां पोत दियो. माँने खुद अनुभव लिख्यो के एक बखत तो बहोत क्रोध आयो के सब चीजन्को सत्यानाश कर दियो. वाने पलटके पूछी ''तेनें क्यों कियो?'' बच्चीने कही ''माँ मैंने तेरे लिये कियो''. बस ऐसी बात है. गिने भये कदम नहीं हैं. अनगिने कदम हैं. गिन्यो भयो हाथ नहीं उठ्यो है, बिना गिनतीके हाथ उठ गयो. हाथमें ब्रश् आ गयो. मनमें बस इतनी खबर है के माँकी प्रसन्नता है. माँकी प्रसन्नता है मकानमें नयोरंग हो रह्यो है. जाने अनजाने हाथमें ब्रश् हाथमें उठाके जहां हाथ पहुंच्यो पोत दियो. थोड़ी असुविधा भी होयगी तो प्रेमके कारण भई असुविधा सह्य होनी चाहिये. पर गिनतीसु दी गयी असुविधा सह्य नहीं हो सके.

जैसे अपन् कोईके घरमें जावे. हमारे यहां गिरधरबावा पधारे यहां किशनगढ़के घरमें पहली बार. तब लक्ष्मी नहीं हती यहां. पधारे तो उनने कही के थोड़ो नमक लाओ. हमने कही के हमारे नमक तो है ही नहीं. पर वो असुविधा असुविधा क्यों नहीं मानी? क्योंके बावाको स्नेह है हमारे साथ. पर समझो के कोई होटल्में जाओ. वहां कोई कहे के नमक नहीं है. तो अपन् क्या कहेंगे? ''हत् खराब होटेल् है.

नमक नहीं रखते हो. पैसा दिया है, कोई साधारण बात है?'' क्यों ऐसो हो जाये? क्योंके वहां रिश्ता स्नेहको नहीं है. वो रिश्ता गिन्यो भयो रिश्ता है. हम पैसा फैंक रहे हैं गिने भये, वो गिनी भई चीजें वा क्वॉलिटीकी दे रहे हैं. वो सोदा गिन्यो भयो होनो चइये, वामें कमी-बेशी चलेगी नहीं. भोजनथाल परोस्यो है. नमक तैयार होनो चइये. वा बखत कोई बेऽरा आके यों कह दे ''नहीं साहब, नमक आज नहीं है''. तो फिर होटेल्को धन्धा बन्द हो जायेगो. घर बन्द नहीं होयगो. नमक है तो भी चलेगो घर. नमक नहीं है तो भी चलेगो घर. नमक नहीं है तो भी स्नेह चलेगो. क्योंके स्नेहमें होनो और नहीं होनो दोनों बात सहन हो जायेंगी पर स्नेह होय तभी. ऐसे ही भक्ति है तो हर चीज सहन हो सके है. भगवान् याई लिये कहे हैं के भक्ति है तो फिर चिन्ता मत करो. खुद संभल जायेगी बात. भक्ति नहीं है और गिन-गिनके यदि कदम रखने हैं, व्यक्तमें अव्यक्तकी उपासना करनी है, तो फिर तो बड़ी बड़ी लिस्ट् ठाकुरजी भी सप्लाई कर रहे हैं **''सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च कूटस्थम् अचलं ध्रुवम् सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः.''** भगवान् कह रहे हैं के तुमकु अपने इन्द्रियग्रामको संनियमन करनो पड़ेगो. नियमन मानें क्या? रोकनो. और संनियमन माने क्या? बहोत अच्छी तरहसु उनकु रोकनो पड़ेगो. सब इन्द्रियां यहां वहां भटकें. फिर तुम ये नही कहे सको के ये चीज अच्छी लग गई और वो चीज अच्छी लग गई. कोई रूप अच्छो लग्यो, कोई ध्वनि अच्छी लगी, कोई स्वाद अच्छो लग्यो और व्यक्तकी उपासना तुमने शुरु कर दी. अव्यक्तोपासना खंडित हो गई. अव्यक्तोपासनाकी पहली शर्त है **''संनियम्य इन्द्रियाणि'' ''परांचि खानि व्यतृणोत् स्वयंभुः तस्मात् पराक् पश्यति न अन्तरात्मन्. कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षद् आवृत्तचक्षुः अमृतत्वम् इच्छन्''** (कठोप.२।१।१). यदि अव्यक्तोपासनामें तुमकु व्यक्तमें अव्यक्तकु खोजनो है तो पहली शर्त है इन्द्रियन्के बाहरी तरफ दौड़ते भये घोड़ान्कु, आत्मासु विषयन्की तरफ दौड़ते भये घोड़ान्कु, आत्मानन्दसु विषयानन्दके तरफ दौड़ते भये घोड़ान्कु लौटाने पड़ेंगे. लौटाके फिर आत्माकी तरफ दौड़ाने पड़ेंगे.

व्यक्तसु उनकु फिर अव्यक्तकी तरफ खेंचनो पड़ेगो. क्योंके सारी व्यक्तकी अभिव्यक्ति सबसु पहले तो इन्द्रियन्में ही स्फुरित हो रही है. सारे व्यक्तकी अभिव्यक्ति इन्द्रियन्में ही हो रही है. इन्द्रियन्सु अपनेकु जो ग्रहीत नहीं होवे, वाहीकु तो अपन् अव्यक्त कहे हैं. नहीं तो अव्यक्त काय चीजको नाम है? सबसु पहली शर्त है के इन्द्रियन्के घोड़ा जो बाहर दौड़ रहे है विषयानन्दकी तरफ, उनकु तुमकु लौटाने पड़ेंगे. यदि तुम लौटा नहीं पाये तो अव्यक्तोपासना खंडित हो जायेगी. आदमी

उपासना करवे लग जाये और सावधानी नहीं बरते तो वामें भारी अड़चने आ जायें. यहां वहां गड़बड़ी हो जाये.

''संनियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः'' और जा बखत इन्द्रियग्रामको संनियमन कियो तो फिर उतनेसु काम नहीं चलेगो. क्योंके भगवान्ने पहले ही या बातको खुलासा कियो है. अपने इन्द्रियन्को जो विषयकी तरफ दौड़ रही हैं उनकु रोक लियो तुमने, ये तो शुरुआत है. या शुरुआतके बाद, एक अच्छी शुरुआतके बाद एक गलत अन्त भी तो हो सके है और वो गलत अन्त क्या है?

(निन्दकन्की निन्दाकी निन्दारसानुभूति)

सच्ची शुरुआतको गलत अन्त ये है के इन्द्रियग्रामकु तो तुमने रोक लियो और अन्तःकरणग्राम तुम्हारे रुके नहीं. मने आदमी एकादशीको तो व्रत कर ले पर रात भर भोजनको सपना देखतो रहे तो एकादशी भंग. याई लिये एकादशीके नियममें ये एक बात और समझाई गई है के एकादशी करी है तो दिनमें सोइयो मत. क्यों दिनमें नहीं सोनो? क्योंके दिनमें सोये नही भूखे पेट और सपना आने शुरु भये खावेके तो समझलो के काम खतम हो गयो. एकादशी खतम. बाहर खतम नहीं भई पर अन्दर खतम हो गई. जब आदमीके एकादशी तो बाहर चल रही होय तो क्या और चल नहीं रही तो क्या? याके लिये ऐसे कह्यो है **''सकृदेव दिवास्वापात् सकृत ताम्बूलचर्वणात् असकृद् जलपानात् च नश्यति एकादशी व्रतम्''** मने एक बखत एकादशी करके तुम दिनमें सो लिये, तो एकादशी खतम, वो क्यों बतायो है, क्योंके **''संनियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः''** शुरुआत तो अच्छी है, इन्द्रियग्रामन्को संनियमन कियो, ये तो अच्छो है पर अन्दर सपना देखने शुरु कर दिये, ढ़ोकला भी आ रह्यो है, लड्डू भी आ रह्यो है, वो सपना तुम्हारी एकादशी खतम कर देगो. याके लिये ''संनियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः.'' भगवान् कह रहे हैं, खाली इन्द्रियग्रामके संनियमनसु काम नहीं चलेगो. सर्वत्र समबुद्धि रखनी पड़ेगी. देखो कितनी मजेदार बात भगवान्ने समझाई है. समबुद्धि रखनी पड़ेगी. जैसे इन्द्रियग्रामन्को नियमन बतायो है, वैसे बुद्धिको नियमन नहीं कह रहे हैं. बुद्धिमें समताको उपदेश दे रहे हैं. क्यों? बुद्धिको नियमन करके आदमी हर विषयसु द्वेष करवे लग गयो तो बात फिरके फिर वहीं हो गई. जैसे प्रवचनकार बिचारे निन्दकन्की निन्दा डेढ़-दो घंटा तक अनवरत करेके निन्दा करनी खराब बात है बात तो वहींकी

वहीं आ गई पाछे. आदमी कहे के निन्दा मत करो. वो आदमी एक दूसरेकी निन्दा करें. प्रवचनकार बैठके एक घंटा निन्दककी निन्दा करे. बात निन्दापे कायम रही ना? जब तक निन्दापे काबू नहीं आयो, तब तक तो निन्दककी निन्दा भी निन्दा है और अनिन्दककी निन्दा भी निन्दा ही है. निन्दा तो निन्दा ही है. अन्तर कितनो पड़ेगो? प्रवचन करनो आ जाये आदमीकु, तो आपसकी निन्दा नहीं करके निन्दककी निन्दा करे. एक आदमी आपसमें एक दूसरेकी निन्दा करे. जो निन्दाकी मूल वृत्ति है, वापे काबू नहीं आवे आदमीको. वापे काबू नहीं आयो तो बात कुछ बनी नहीं. अन्तर कुछ है तो अपन्ने विषय बदल दियो. कोई आपसमें काका-भतीजाकी कर रह्यो है. भतीजा काकाकी कर रह्यो है. दुकानदार ग्राहककी कर रह्यो है. ये आदमी थोड़ो सिद्ध हो गयो है. ये इन सबकी निन्दा नहीं करके निन्दकन्की निन्दा कर रह्यो है. पर मजा यदि निन्दककी निन्दामें आ रह्यो है, डेढ़ घंटा, दो दो घंटा निन्दककी निन्दामें चलते होंय तो बात तो वहींकी वहीं है. आदमी एक भी कदम बढ़्यो नहीं आगे जरा. वहींके वहीं खड़ो भयो है. अन्तर क्या है? अन्तर वामें ये है **''संनियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः''** बुद्धिमें समता आनी चइये. मने नही तो कही निन्दाको विषय रह जाये, न कहीं स्तुतिको विषय रह जाये.

जब पाकिस्तान हिन्दुस्तानको युद्ध चलतो थो हमारे यहां बम्बईके मन्दिरमें एक अत्तर बेचवेवालो बैठतो. अत्तर बेचे परन्तु वाकु पोलिटिक्स्की बड़ी चिन्ता रहती. जो दर्शन करवे आवें उनकु बैठा बैठाके राजनीतिकी चर्चा करे. ये बुरी बात हती के मन्दिरमें आवेवाले दर्शनार्थीन्के साथ राजनीतिकी चर्चा करनी. मन्दिरके व्यवस्थापकन्ने वाकु बुलाके हिदायत दी के मन्दिरमें तुम राजनीतिकी चर्चा मत करो. वो नहीं मान्यो. युद्ध बढ़्यो तो चर्चाभी गरमाने लगी. वाके बाद वाकु और कड़ी हिदायत दी गई के जब तक युद्ध चल रह्यो है तब तक कोई भी मन्दिरके अन्दर राजनीतिकी चर्चा करतो भयो मिलेगो तो वाकु मन्दिरके बाहर निकाल दियो जायगो. आदत तो जाये नहीं जन्मकी. फिर भी वो अत्तर बेचवेवालो एक दिन कोइकु अपने पासमें बैठाके गुपचुप निन्दा कर रह्यो थो. कोईने हल्ला मचायो और व्यवस्थापकने सुनी के अभी राजनीतिकी चर्चा कर रह्यो है. वो एक पार्टीको हतो और व्यवस्थापक दूसरी पार्टीके हते. उनने वा पार्टीकी वो निन्दाको बहोत बुरो मान्यो. दो-ढ़ाई घंटा आपसमें एक-दूसरेके साथ इतनो झगड़ा भयो के तुम मन्दिरमें निन्दा करते हो. तुम मन्दिरमें झगड़ा करते हो, आखो मन्दिर सिरपे उठा

लियो. बात तो वहींकी वहीं रह गई. एक आदमी झगड़ रह्यो थो और आपने वासु भी बड़ो झगड़ो खड़ो कर दियो. बातको समाधान नहीं भयो. समाधान कब हो सके?

जब वाकु **''सर्वत्र समबुद्धयः''** जब समबुद्धि आयेगी तब अव्यक्तके तरफ बढ़ेगी. नहीं तो आदमी एकके बजाय दूसरो आग्रह पकड़ लेगो. दूसरो आग्रह पकड़्यो नहीं तो आग्रह तो आग्रह ही है. मने आप वाकु चाह नहीं रहे हो, आप वासु द्वेष कर रहे हो. अन्तर इतनो ही भयो. एक वस्तु, संसारमें आसक्त व्यक्ति संसारके विषयन्कु चाह रह्यो है. आप क्योंके अव्यक्तकी उपासना कर रहे हो, यासु संसारके विषयन्सु द्वेष करवेकी छूट नहीं है. समबुद्धिता आनी चइये. ऐसी समबुद्धिता के ना तो आसक्ति और न द्वेष. ये जो दूसरो कदम आयो तब वो दूसरो कदम सच्चो पड़ेगो. पहली बात ठीक हती **सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं** पर दूसरो कदम फिर ऐसो आनो चइये **सर्वत्र समबुद्धयः** . समबुद्धिता नहीं आई, तो इन्द्रियग्रामन्के संनियमन करवेके बावजूद भी अव्यक्तोपासक भटक सके है. ये एक स्टेप् भगवान् गिना रहे हैं के अव्यक्तोपासनामें आगे बढ़नो है तो कैसे केलक्युलेटेड् स्टेप् तुमकु रखने पड़ेंगे. **समबुद्धि** के बाद **सर्वभूतहिते रत** होनो पड़ेगो.

एक बहोत बड़े वैज्ञानिक हते नीलबर्ग्स जिनने अेटम्की थियरी खोजी. नीलबर्ग्सकु कोईने पूछ्यो के इतनी बड़ी तुमने अेटम्की थियरी खोजी, कोई दिन समझो ये एटम्बम् फूट गये ता क्या होयगो? नीलबर्ग्सने जबाब दियो ''हां कोई खास फर्क नहीं पड़ेगो, ये ब्रह्मांड अनन्त है, या अनन्त ब्रह्मांडमें पृथ्वी एक धूलकणके बराबर है और एक धूलकण खतम हो जायेगो''. अरे भाई तुम विज्ञान कर रहे हो और पृथ्वीकु धूलकण मानके खतम कर रहे हो, तुम्हारो विज्ञान ऊंचो है, कोई बुरी बात नहीं. पर दूसरेन्के प्राण लेवेको विज्ञान मने बात सच्ची है. ज्ञान सच्चो है. या अनन्त ब्रह्मांडमें एक पृथ्वीकी हैसियत धूलकणके बराबर है. पर आदमीको प्रयास क्या ऐसो होनो चइये? ये नहीं के तुमकु ये रहस्य समझमें आ गयो तो तुम अेटम्बम् बना दो. आदमीको प्रयास ये होनो चइये के धूलकण है तो वाको भी हित होवे. अहित नहीं होवे तुम्हारे जरिये. धूलकणको जो अपने आप होनो होय सो होय पर तुम्हारे जरिये वाको अहित नहीं होनो चइये. तुम्हारे या ज्ञानमें कोई प्रकारकी समबुद्धिताकी कमी है? कितनी समबुद्धि है? कोईके प्रति राग नहीं है, कोई के प्रति द्वेष नहीं है. सारी दुनियां खतम हो जायेगी तो हो जाने दो. या तरीकेकी समबुद्धि

अव्यक्तोपासनामें घातक है. क्योंके तुम अव्यक्तउपासना कर रहे हो. वाको मतलब दुनियांकु खतम करवेको अधिकार तुमकु नहीं है. अव्यक्तोपासना तुम्हारो शौक है, पर दुनियांकु अव्यक्त करवेको शौक नहीं है. भगवान् कह रहे हैं के यदि तुम अव्यक्तोपासना कर रहे हो, तो तुम्हारे काममें इतनो कन्ट्रोल् होनो चइये के तुम्हारी कृतिसु कोइको अहित नहीं होय.

याई लिये संन्यास लेते बखत एक **अभयव्रत** को नियम बनायो जाय है. मने ज्ञान वैराग्य सिर्फ पर्याप्त नहीं है. ज्ञान तुमकु प्राप्त भयो, वैराग्य तुमकु प्राप्त भयो, तो तुमकु अभयव्रत भी लेनो पड़ेगो. **अभयव्रत** को मतलब क्या? ''मैं कोईसु डरूंगो नहीं''. ''मैं कोइकु डराऊंगो नहीं''. अगर **अभयव्रत** नहीं लियो तो संन्यास सच्चो नहीं कहवावे. संन्यासकी पहली शर्त है के मेरे द्वारा सब प्राणीभूतकु अभय, मोकु सब प्राणीन्सु अभय. शेर मोकु खा ले तो भय नहीं. बिच्छू मोकु काट ले तो भय नहीं. मैं कोईकु मारूंगो नहीं. मेरेकु मरवेको भय नहीं. या तरीकेको यदि अभयव्रत आवे है, तो अव्यक्तोपासना आयेगी. अभयव्रत नहीं आयो, यदि तुम डर रहे हो, तो तुम सबसु ज्यादा खूंख्वार हो जाओगे. ज्ञानी यदि डर रह्यो है, तो ज्ञानी सबसु ज्यादा खूंख्वार होयगो. अज्ञानी इतनो खूंख्वार नहीं होयगो.

जैसे सर्प बिचारो मनुष्यसु डरे है. पर सर्प अज्ञानी है. अज्ञानी है या लिये सर्प आदमीकु खोजके नहीं काटे. कभी आदमी दीख जाये तो वो दीखवेके अपराधको वो ऐसो दण्ड नहीं दे के क्यों दीख्यो आदमी, चलो काटो. सर्प ऐसो नहीं करे. पर मनुष्य क्योंके ज्ञानी है, ज्ञानी होवेके कारण सर्प दीख्यो नहीं तो वो कहे ''मारो, मारो, मारो''. अरे भई तुमकु काट नहीं रह्यो है, तुम्हारे ऊपर फुंकार नहीं रह्यो है, अपने रास्तासु जा रह्यो है. क्यों हल्ला मचा रहे हो ''मारो मारो मारो''. क्योंके तुम ज्ञानी हो और भयभीत हो गये हो. अज्ञानी यदि भयभीत होयगो तो वो इतनो खूंख्वार नहीं होयगो. वाके अज्ञानके कारण वामें एक गुण है के वो भयभीत हो गयो तो भाग जायेगो. इतनो हिंस्र नहीं बनेगो. पर ज्ञानी जब भयभीत भयो, तो सबसु ज्यादा हिंस्र बन जावे है. सर्प इतनो हिंस्र नहीं है जितनो हिंस्र मनुष्य है सर्प काटे पर कब काटे? जब सर्पकी पूंछपे अपन् पैर धर दें तो काटे. आदमी दीख गयो तो दौड़के नहीं काटे. मनुष्य इतनो हिंस्र है के बिचारो बिलमें घुस गयो होय, तो वहां भी धुंआ लगाके निकालें और फिर मारे वाकु. क्यों दीख्यो? दीख्यो तो

भई वाको क्यों ये ही अपराध हतो? भगवान्ने बनायो जगत्में या लिये दीख्यो. तुम्हारी आंख हती या लिये दीख्यो. आंख तुम्हारी हैं तो ये तो वाको अपराध नहीं है. भगवान्ने तुमकु अन्धो बनायो होतो तो नहीं दीखतो. वाकु बनावेवालो और तुम्हारी आंख बनावेवालो, भगवान् एक ही है. वा भगवान्की मायाके कारण तुमकु दीख रह्यो है. आदमी क्योंके ज्ञानी है और भयभीत है, वासु भयंकर हिंस्र है. सर्प बिचारो अज्ञानी है और भयभीत है तो भागके अपनी जान बचावे पर मनुष्य जितनो सर्प हिंस्र नहीं हो सके. मनुष्यके जितनो हिंस्र बिच्छू नहीं हो सके.

या लिये अज्ञानीके भयभीत होवेको प्रश्न नहीं है. अज्ञानी भयभीत है तो कोई बात नहीं, बात संभल जायेगी. पर जो ज्ञानमार्गपे आगे बढ़्यो तो भगवान् वाकु कह रहे हैं के पहली शर्त ये है के अभय प्राप्त करो. अभय दो और अभय प्राप्त करो.

(संसारीके ब्रह्मज्ञानकी गुरुपादुकाकी नौटंकी)

हमने एक कथा सुनी थी. एक स्वामीजीको मठ हतो. उनके खूब खेत हते. अब उनने अभयव्रत ले लियो थो. संन्यासी हते यासु. किसानन्कु पता चल गयो के अभयव्रत ले लियो है. उनने कही अभयव्रत ले लियो तो वो किशान लगान ही नहीं देते. अब बेचारे परेशान मठ कैसे चले? तो उनके चेलान्ने कही महाराज आपने अभयव्रत ले लियो कोइकु दण्ड नहीं दे सको पर ब्रह्मज्ञान देवेको तो अधिकार है. तो उनने कही ब्रह्मज्ञान देवेको तो अधिकार है ही. उनने कही ''क्या करनो?'' तो बोले गुरुपादुकासु ही ब्रह्मज्ञान मिले. लकड़ाकी ऐसी मोटी मोटी गुरुपादुका बनाई और उनने कही जा किसानने लगान नहीं भर्‍यो, तो पचास ब्रह्मज्ञान दे दो उनकु. जब ब्रह्मज्ञान मिलनो शुरु भयो तो लगान आनी शुरु हो गई टाईम्पे. कोईकु पचास ब्रह्मज्ञान दे दिये, कोईकु पांच ब्रह्मज्ञान दे दिये. जैसो लगान वैसो ब्रह्मज्ञान. ये अभयव्रत नहीं है. अभयव्रतको मतलब है ''अभयं सर्वभूतेषु''. दे लगान के नहीं दे लगान, ये चक्कर अव्यक्तोपासनामें नहीं चलेगो. व्यक्तोपासनामें चलेगो पर अव्यक्तोपासनामें ऐसो ब्रह्मज्ञानोपदेश नहीं चलेगो.

पहली शर्त है याके लिये भगवान् कह रहे हैं ''**संनियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः.**'' पहली शर्त है इन्द्रियग्रामको

संनियमन. दूसरी शर्त है सर्वत्र समबुद्धि. तीसरी शर्त है अपने मनसु कोईको अहित मत करो. सर्वभूतको बिना पक्षपातके तुमसु जो बने वो हित करो. तुम तो अहित मत करो. ये तीन केलक्युलेटेड् स्टेप् तुम्हारे बराबर रखे जा सकें, तब तो तुमकु व्यक्तमें अव्यक्त दिखलाई देवे लगेगो. पर यदि इन कदमन्में, कहीं तुम लड़खड़ा गये तो तुम फिर अव्यक्तमें कोई न कोई व्यक्त खड़ो कर दोगे. अव्यक्तज्ञानमें गुरुपादुका व्यक्त हो जायेगी. अव्यक्तज्ञानमें गुरुपादुका व्यक्तको चक्कर चल गयो तो वो अव्यक्तोपासना खंडित हो जायेगी. **''ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते.''** याके लिये भगवान् कहे हैं **''क्लेशो अधिकतरः तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्.''** उन कदमनकु रखवेमें बड़ो क्लेश है. क्योंके तुमकु इतने कदम बराबर गिनके रखवे पड़ेंगे, याके लिये अधिकतर क्लेश है. क्लेशतो व्यक्तोपासनामें भी है अधिक क्लेश है पर अव्यक्तोपासनामें अधिकतर क्लेश है. ये अधिकतर लगायो है भगवान्ने **''क्लेशो अधिकतरः तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम् अव्यक्ता हि गतिः दुःखं देहवद्भिः अवाप्यते''**. या उपासनाकी सिद्धिके बाद एक निर्णय भगवान्ने दियो के जो अव्यक्तगति है, याके लिये तुमकु तैयारी करनी पड़ेगी.

वो तैयारी कौनसी? जो मैंने कलके प्रवचनमें आपकु बताई. भक्तिमें आदमीकु सिर्फ अपने मनकु परमात्मामें लगानो पड़े है. परमात्मामें होमनो पड़े है. पर अव्यक्तोपासनामें अपने आपकु होमनो पड़ेगो. यदि अपने आपकु होमवेकी तैयारी नहीं है, तो अव्यक्तोपासनाकी दिशामें कदम मत रखियो. यदि कोई तरहसु अपने आपकु बचावेकी ललक है मनमें, उपदेष्टाके रूपमें, कोई आश्रम चलावेवालेके रूपमें, याके रूपमें वाके रूपमें, तो अभी जल्दी मत करो अव्यक्तोपासनाकी. भगवान् कहे हैं के व्यक्तोपासना करो. अभी वो अधिकार नहीं आयो है तुम्हारो. जब वो तैयारी तुम्हारी पक्की है, अपने आपकु होमवेकु तैयार हो. मने **''अव्यक्ता हि गतिः दुःखं देहवद्भिः अवाप्यते.''** अव्यक्तकी गति दुःखवाली है. बहोत अच्छी तरहसु भगवान्ने एक शब्द रख्यो है कौनके लिये? जाकु देहाभिमान है, जो देहवान् हैं, वाके लिये वो गति दुःखवाली है. यदि तुम्हारी तैयारी है तो या देहमें जो तुम्हारो रूप व्यक्त भयो है, वा व्यक्तरूपकु तुम होमवे तैयार हो तो फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं है. फिर सब काम चलेगो. पर छेल्ली कसौटीमें यदि तुम अव्यक्तकी उपासना करते करते, या बातमें डर गये के अब क्या होयगो? तब बस खतम हो

गई बात. याईके लिये वो कहें हैं **''अव्यक्ता हि गतिः दुःखं देहवद्भिः अवाप्यते ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः. अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते तेषाम् अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् भवामि न चिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसाम्.''** याकी तुलनामें एक बात सावधानीसु देखो **''ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः''** या श्लोकमें भगवान्ने ''ते प्राप्नुवन्ति मामेव'' जो कह्यो ये बहोत ही महत्वपूर्ण बात है. दो अतिवाद मैंने आपकु बताये. एक या बाजू अतिवाद ये है के अव्यक्त पुरुषाकार नहीं हो सके है. दूसरो अतिवाद ये है के पुरुषाकार परमात्माको स्वरूप अव्यक्त नहीं हो सके है. मने कुछ लोग पुरुषाकारवादी हैं. वो लोग यों कहें के अव्यक्त नामकी कोई चीज ही नहीं है. वा अव्यक्तके बड़े बड़े विचित्र अर्थ निकालें हैं. वो कहें के अव्यक्तको मतलब प्रकृति है. अरे भई प्रकृतिकी बात नहीं है यहां. प्रकृतिकी बात होती अव्यक्तके रूपमें तो भगवान् यों कभी नहीं कहते है के **''ते प्राप्नुवन्ति मामेव''** भगवान् यों कह रहे हैं के अव्यक्तोपासक भी मेरे तक पहुंचेगो. ये या बातको स्पष्ट प्रमाण है.

न तो भगवान् या बातकु स्वीकार रहे हैं के अव्यक्त मेरेसु जुदो है. न भगवान् या बातकु स्वीकार रहे हैं के अव्यक्त नामकी कोई चीज है ही नहीं. केवल साकार साकार ही मैं हूं. निराकार हूं ही नहीं. भगवान्ने निराकारवादी और साकारवादी दोनोंन्के झगड़ाकु यहां खतम कर दियो है ये कहके **ते प्राप्नुवन्ति मामेव** जो अव्यक्तोपासक है, वो भी मोकु प्राप्त करेगो. याको मतलब स्पष्ट ये भयो माम् को मतलब यहां जो कृष्ण सारथी बनके अर्जुनके रथपे बैठ्यो भयो है, वो या बातकु कह रह्यो है के अव्यक्तोपासक भी अन्तमें मिलेगो तो मोकु ही. अव्यक्तोपासक अन्तमें जब मोकु मिलेगो, जब ये बात सारथी बन्यो भयो कृष्ण कह रह्यो है, तो या बातकु निश्चयतर दृढ़तासु समझ लो के निराकारमें और साकारमें कोई भेद नहीं है. भेद अगर है तो सिर्फ पहलुन्को भेद है. एक पहलुसु वो साकार है, दूसरे पहलुसु वो निराकार है. जैसे सूर्य और सूर्यके प्रकाशको मैंने उदाहरण दियो. वाके लिये **ते प्राप्नुवन्ति मामेव** पद बड़ो महत्वपूर्ण पद है या बातको समझवेके लिये. निराकार और साकार को झगड़ा, कितनो क्षुद्र झगड़ा है. अपन् परमात्माके एकांगी स्वरूपकु अन्धहस्ती न्यायसु जैसे एक अन्धो हाथीको पग पकड़ ले और वो कहे के हाथी खम्भा जैसो है. दूसरो अन्धो हाथीकी पूंछ पकड़ ले और वो कहे के हाथी रस्सी जैसो है. तीसरो अन्धो हाथीकी सुंढ़ पकड़ ले और वो कहे के हाथी

अजगर जैसो है. अब सब झगड़वे लग जायें तो वामें कौंनकी बात सच्ची और कौंनकी बात खोटी? जो अंग हाथीको उनके हाथमें आयो है, वाको वर्णन वो खोटो नहीं कर रह्यो है. वो वर्णन सच्चो है, पर जो कह रह्यो है के हाथी रस्सी जैसो है, वो बात भी गलत नहीं अ, क्योंके हाथीकी पूंछ रस्सी जैसी है. हाथीकी समग्रतामें रही भई **''द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैव अमूर्तं च मर्त्यं च अमृतं च''** (बृह.उप.२।३।१). ब्रह्मके दोनों रूप हैं. वो मूर्त भी है वो अमूर्त भी है. वो क्षर भी है और वो अक्षर भी है, वो अन्तर्यामी भी है, वो पुरुषोत्तम भी है, वो परमात्मा भी है, वो भगवान् भी है, वो व्यक्त भी है और अव्यक्त भी है.

ये बातके झगड़ा बहोत आधे-अधूरे झगड़ा हैं, ये बात समझो. भगवान्ने या भक्तियोगके प्रसंगमें, या बातको कितनो स्पष्टतम खुलासा दे दियो **''ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः क्लेशो अधिकतरः तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम् अव्यक्ता हि गतिः दुःखं देहवद्भिः अवाप्यते.''** आज यहां रखेंगे. कल अपनो भक्तिको प्रकरण चलेगो. महाप्रभुको उत्सव है. कल अपन् प्रयास करेंगे के भक्तिके बारेमें प्रभुने जो कुछ समझायो है, वो अपन् भी समझेंगे.

सातवें दिनको प्रवचन
(भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डश्रीमदाचार्यचरण)

वर्तमानमें अपन् गीताके द्वादशाध्यायके अन्तर्गत भक्तियोगको विचार कर रहे थे. श्रीमदाचार्यचरणकु 'भक्तिमार्गाब्जमार्तण्ड' कह्यो जाय. भक्तिमार्गरूपी कमलकु खिलावेवाले सूरज जैसे अपने महाप्रभु हैं. कौंनसे अर्थमें आपने भक्तिमार्गके कमलकु खिलायो है, याकु अपन् थोड़ो विचारेंगे. कल जो लोग उपस्थित हते, यद्यपि सांझकु बारिशकी बोछारके कारण थोड़ी ठण्डक हो गई और साथ ही साथ बत्ती भी गुल हो गई, अन्धेरा हो गयो, यासु अन्धेरामें अव्यक्तोपासनामें सबकु नींद आवे लग गई प्रसंग भी अव्यक्त आत्माको हतो, सो वा अव्यक्तके साक्षात्कार जैसो नींदको झोका भी आ गयो अब जैसो जाको अधिकार हतो वाकु उतनी अव्यक्तोपासनाकी उपलब्धि तो सिद्ध भयी ही होयगी आज, परन्तु, अपन् व्यक्तोपासना और भक्ति को रूप समझेंगे. क्योंके भगवान्की कृपासु अभी लाईट् जुड़ी भयी है. बुझ जायेगी तो फिर अव्यक्तोपासना करेंगे

(भक्ति दुर्लभ भी और सुलभ भी)

महाप्रभुके मतानुसार जैसो के इतने दिनसु आप सुन रहे हो, भक्तिको स्वरूप बड़ो विलक्षण है. भक्ति कर्म नहीं है, क्योंके कर्म बिना भी स्नेहके हो सके है. भक्ति निष्क्रियता नहीं है, क्योंके सचमुचमें यदि भक्ति है तो कुछ न कुछ क्रियास्पन्दन तो भक्तके भीतर होयगो ही. क्योंके भक्ति स्वयं भी तो हृदयको एक विलक्षण स्पन्दन है. सो जा बखत हृदय स्पन्दित भयो, तो कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय देह आदि सभीन्में कुछ न कुछ स्पन्दन तो होयगो ही. अपने घरमें कोई प्रिय आ जाये तो अपन् सहज ही उठ खड़े हो जावें, शरीरमें स्पन्दन क्यों-कैसे आ गयो? हृदय अपनेकु प्रेरणा देवे. भक्ति केवल कर्म नहीं है. मने जब स्नेहके कारण स्पन्दन नहीं आ रहे हैं अपने हृदयमें या अपने व्यवहारमें, जैसे मैंने कल आपकु बतायो तब गिने-गिनाये कदम अपन् उठावें. ये भये कर्मके कदम है और उठावें तो उठें पर जो अपने आप उठ जाते होंय वो भक्तिके कदम हैं. क्यों उठे कैसे उठे, पता नहीं चले, कोई प्रयोजन नहीं. कोई हेतु नहीं. **''अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेः गरीयसी''** (भाग.पुरा.३।२५।३३). या तरहको भक्तिको स्वरूप बतायो वो मुश्किल तो नहीं परन्तु सर्वसुलभ भी कहां होवे? आदमीकु सिद्धि मिल सके है. भक्ति मिलनी बहुत

मुश्किल है, बहुत दुर्लभ है. वैसे मिल जाय तो सरल भी बहोत है, भक्ति बहुत सुखद है. जाकु सुलभ है वाकु बहुत सुलभ है. जाकु सुलभ नहीं है वाकु ये भक्ति बहुत दुर्लभ है. **''अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेः गरीयसी.''** भागवत अपनेकु ये समझावे है के सिद्धि मिल सके है पर भक्ति मिलनी मुश्किल है. कर्म अच्छी तरहसु कर सके आदमी, जो कर्म कहो वो कर सके, जैसे मैंने कल आपकु समझायो के आदमीमें, शास्त्रीजीने सुन लियो के भक्तकी वाणी गद्‌गद् होनी चईये, भक्तिमें रोनो आनो चईये, या तरहके सब काम कर्म अपन् भक्तिके नामपे कर सकें है. पर जा बखत कर्म कर रहे हो, गिनके कदम रख रहे हो, उठाये भये कदम भक्तिके कदम नहीं है. वो तो उपासनाके कदम है. वा बखत भक्ति भी कुछ उपासनाको रूप ले ले है. जा बखत अपने आप हृदयमें कुछ स्पन्दन हो जाये. नाचवेकी इच्छा हो जाये, गावेकी इच्छा हो जाये. रोवेकी इच्छा हो जाये, आंसू आ जाये. रोनो पड़े वो भक्ति नहीं है, रोनो आ जाये वो भक्ति है. मने आदमीको निर्लज्ज हो जानो भक्ति नहीं है पर लज्जा छूट जानो भक्ति है. **''विलज्य उद्‌गायति नृत्यते च मद्‌भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति''** (भाग.पुरा.११।१४।२४). या न्यायसु जो व्यक्ति निर्लज्ज है वाकु अपन् 'भक्त' नहीं कहेंगे पर जाकु प्रेमके आवेगमें लज्जा छूट गई, वो 'भक्त' कहवावेगो. सामान्य आदमी नाच नहीं पायेगो.

जैसे अपने यहां मीराकी कथा कहें. आज भी राजस्थानमें परदाको कितनो जोर है तो वा जमानामें राजघरानेके परदाकु तोड़के बाहर निकल जानो कितनी मुसीबतको काम होयगो क्या वाने गिने भये कदम उठाये होयंगे? गिनके रखे होते तो रखे ही नहीं जा सकते थे. ना जाने कौंनसो क्षण आयो होयगो भक्तिको, ना जाने कौंनसो प्रवाह आयो होयगो भक्तिको के जामें लज्जा बह गई, जामें परदा टूट गये, जामें बन्धन तूट गये और मीरा महलसु बाहर निकल गई. **''विलज्य उद्‌गायति नृत्यते च मद्‌भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति''**. या तरहके उठे भये कदम भक्तिके कदम हैं. उठाये भये कदम भक्तिके कदम नहीं हैं. छूट जाये जो लाज वो भक्तिको स्वरूप है. जो निर्लज्ज हो रह्यो है वो भक्तिको स्वरूप नहीं है. यासु भक्तिको स्वरूप न तो कर्म है, न निष्क्रियता है.

कर्म तो आदमी कर सके है और निष्क्रिय भी आदमी हो सके है, बैठ्यो रहे निकम्मो. निकम्मो बैठे रहेनो भक्ति नहीं है. भक्ति सचमुचमें प्रभुके प्रति स्नेह है. जामें आदमी निकम्मो बैठ नहीं सके, कर्म करेगो ही. जब कुछ कर्म करेगो

तो भक्तिकी स्थितिकु अपनेकु समझनो होय तो कैसे समझेंगे? कर्म और नैष्कर्म्य इन दोनोंके बीचको भाव भक्ति हो सके.

भक्तिको भाव न तो ज्ञान है और न ही अज्ञान है. संस्कृतमें बड़ी मजेदार बात है. ज्ञानी विद्वान् और संस्कृतमें इनको एक पर्याय है 'दोषज्ञ'. जो ज्ञानी विद्वान् होवे वो दोषज्ञ होवे. वाकु पहले दोष दिखलाई देवे. ये गलती हो गई वो गलती हो गई. उठवेमें ये गलती हो गई, बैठवेमें वो गलती हो गई, खावेमें वो गलती हो गई. क्योंके ज्ञानी है. यासु ज्ञानीको पर्यायवाचक पद 'दोषज्ञ' मान्यो गयो है. भक्त दोषज्ञ नहीं होवे है, भक्त गुणज्ञ होवे है. जब गुण अपनेकु दिखलाई देवे लग जाये तो भक्ति आई समझो. जब दोष दिखलाई देवे लग जाय तो पंडित हो गये, ज्ञानी हो गये. जब गुण ही गुण दिखलाई देवे लगें, परमात्माके गुण दिखलाई दें, परमात्माकी लीलामें गुण दिखलाई दे, परमात्माकी लीलाके अन्तर्गत जब प्राणीमात्रमें गुण ही गुण दिखलाई देवे लगें तो समझो भक्तिको कमल पूरेपूरो खिल गयो. जैसे सूर्य उदय होवेके साथ कमल पूर्ण विकसित हो जाये, ऐसे ही तरहको कमल फूल्यो जब अपनेमें गुणदृष्टि आ गई. जब तक अपनेमें दोषदृष्टि कायम है, तब तक ज्ञानी हो सके हैं.

ज्ञानी और भक्त को ये अन्तर हो सके के ज्ञानी दोषज्ञ होवे है, इतने हद तक दोषज्ञ होवे है के जो सृष्टि परमात्माने अपने आनन्दकी अभिव्यक्तिके लिये करी, ज्ञानीकु ज्ञानके बलके कारण, वामें क्षणभंगुरता दिखलाई दे, नश्वरता दिखलाई दे, व्यामोहकता या मायिकता दिखलाई दे. ज्ञानी याई लिये विरक्त हो जाये. भक्त विरक्त नहीं हो पावे है. भक्तकु अनुरक्त होनो पड़े है. एक अज्ञानीकी अनुरक्ति और दूसरी भक्तकी अनुरक्ति है.

भक्तकी अनुरक्ति विषयन्में नहीं है. वो विषयके पीछे रहे भये छिपे परमात्मामें है. अपनी आंखे पुष्पके रंग, पुष्पकी आकृति, आदिनकु देखवेके लिये बंधी भयी हैं. इन पुष्पन्की आकृति और रंगन्के पीछे छिप्यो भयो परमात्मा भी भक्तकु प्रकटतर दिखलाई दे सके है, पर शर्त क्या है? पुष्पके गुण दिखलाई दें. ज्ञानी हो गयो तो वाकु दिखलाई देगो के पुष्प खिले है और फिर मुरझा जाये है. परमात्मा तो कभी मुरझावेवालो तत्व नहीं है. पुष्प खिले भी है, पुष्प मुरझावे भी है. परमात्मा कभी

मुरझावे नहीं है. बात बिल्कुल सच्ची है. यदि दोष दिखलाई दे जाये तो ज्ञान प्रकट हो जाये. यदि वामें परमात्मा दिखलाई दे जाये तो भक्ति दिखलाई दे जाये. परमात्माकी सनातनतामें, नित्यतामें जब पुष्पकी नश्वरता दिखलाई दे रही है, तो समझो के ज्ञान है. पर जब पुष्पकी नश्वरतामें परमात्माकी नित्यता दिखलाई दे रही है तो समझलो के भक्ति है. बहुत थोड़ो अन्तर है. चाहे बात एक ही है पर निगाहको ध्यान कहां चौंट गयो?

जैसे सच्ची है के खोटी पर सुनी भई कथा है. महाभारतमें जा बखत द्रोणाचार्य अर्जुनकु युधिष्ठिरकु दुर्योधन वगैरहकु तीर चलानो सिखाते थे, तब एक दिन उननें सबकी परीक्षा लेनी चाही. सबकु बुलायो. भीमकु बुलायो. पूछ्यो ''पेड़पे कुछ दीख रह्यो है?'' वाने कही ''सब कुछ दीख रह्यो है. कहो तो अभी पेड़कु तोड़के रख दूं? जो होयगो सो सामने आयेगो''. तो उनने कही ''ये पहलवानीकी बात नहीं है. ये तीर चलावेकी बात है''. आदमी पहलवान है वो कहे क्या जरूरत है ऐसे देखवेकी? अभी पेड़ तोड़के सामने रख दंऊ. डाली डाली अलग करके रखदूं. देखवेकी क्या जरूरत है? तो उनने कही ''अभी बैठ. अभी तीर मत चलाइयो. अभी पेड़ तोड़वेकी तैयारी है तो तीर अच्छी तरहसु नहीं चल पायेगो''. वा कथामें फिर आवे हैं के अन्तमें अर्जुन आवे है. अर्जुनकु बुलाके पूछ्यो ''तेरेकु कुछ दिखलाई देवे है?'' वाने कही ''एक तोताकी आंख दिखलाई दे रही है''. तो उनने कही ''आंख दिखलाई देती होय तो अब आंखपे तीर चला''. इतनी एकाग्रता जा बखत होय तब भक्ति है. जा बखत सर्वग्राहिता है तो ज्ञान है. अब इतनी एकग्राहिता है तो स्नेहको तीर अच्छो चल जायेगो. ऐसो तीर चलेगो, यद्यपि अपने यहां कह्यो नहीं जाय, पर साहित्यकी भाषामें कहनो होय तो कह सको ''वो भक्तिको तीर जो चल्यो तो वासु परमात्मा भी घायल तो होयगो''. परमात्मा भी कहेगो के ऐसो तीर चल्यो. ऐसी एकग्राहितासु भक्तिको तीर चल्यो. अब भीमकी तरह सारो पेड़ तोड़के सामने रख दो के ले महाराज जो होयगो सो आयगो सामने. ये कर्म बड़ो भारी कर्म है, बहुत सुन्दर कर्म है तो क्या जरुरत है तीर चलावेकी? पेड़ तोड़के सब चीज सामने आ गई. तोड़-फोड़के सब चीज सामने आ गई तो कर्म तो फिर बड़ो भारी है. अन्तमें तीर जो चलानो थो, वो पोपटकु देखके चलानो थो, तोड़ दो तो सब सामने आ गयो और तोता भी गिरेगो. पर वो कर्म है भक्ति नहीं है. भक्ति न तो ज्ञान है न भक्ति अज्ञान है. भक्ति ज्ञान और अज्ञानसु बचके, इन

दोनोंन्के बीचमें चलवेवाली कोई स्वतन्त्र वृत्ति है, जाकी तुलना न तो ज्ञानमें अपन् पूरी तरहसु तोल सके हैं, न जाकु अपन् अज्ञान कहके तोल सके हैं. भक्ति इन दोनोंन्सु अलग एक स्वतन्त्र वृत्ति है.

भक्ति न तो अहंकार है और न दैन्य है. क्योंके आदमी दीन हो सके है. मैंने वा दिन आपकु बहुत सुन्दर श्लोक बतायो थो के तुम कौंनसे दीन? तो कही हम गधाके पैरमें लगी भई मिट्टीके बराबर दीन. उनने कही हम वाके बराबर घास खाते भये...वगैरे बहुत लम्बो चौड़ो वर्णन उननें सुनायो. वो गन्दो जल, वा जलसु जो घास उगी, वा घासकु जो गधाने खाई, वा गधाके पैरमें जो लगी भई रज, वा रजमें डोलवेवाली चींटी, वा चींटीके पैरमें लगी भई जो रजकण वाके दासके दास हैं. दीनता तो इतनी हो सके है पर वो दीनता भक्ति नहीं हो सके है. ये दीनता भक्ति नहीं है. भक्ति न तो अहंकार है, न भक्ति दीनता है. भक्ति दोनोंन्के बीचमें चलवेवाली वृत्ति है. जामें अपन् परमात्माके सामने दीन भी होवें तो इतने दीन नहीं, इतने अस्वाभाविक दीन नहीं, दीन भी दैन्य भी एक स्नेहको दैन्य है. या तरहसु अपनेकु नीचे गिरावेवालो दैन्य नहीं है. अपने आपकु ऊंचो उठावेवालो दैन्य है. याके लिये महाप्रभु बहुत सुन्दर कहे हैं के तुम्हारे दैन्यसु भगवान् तुम्हारे आधीन होवें हैं. तो भक्तिको दैन्य एक ऐसो दैन्य है के जा दैन्यके कारण भगवान् आधीन हो जाये. वा तरहको स्नेहमय दैन्य है. जैसे एक प्रियतमको प्रियतमाके प्रति जो दैन्य है. या एक प्रिय शिष्यको अपने गुरुके प्रति जो दैन्य है, वामें कोई नीचे गिरवेकी बात नहीं है. वो ऊंचे उठावेवाली बात है. ऐसो दैन्य है वामें अहंकार बिल्कुल नहीं है.

क्योंके अहंकार आदमीमें बड़े विचित्ररूपमें प्रकट हो सके है. भक्ति अहंकार नहीं है. भक्ति अहंकार और दैन्य सु बचके चलवेवाली कोई वृत्ति है. अहंकार भी है तो स्नेहको अहंकार है. जैसे वाके अहंकारमें अपनो अहंकार जुड़्यो भयो अहंकार है. जैसे अपने घरमें ब्याहके कोई नई बहू आवे, तो वाको अहंकार अपने परिवारके अहंकारमें जुड़ जाये वाकु के ये मेरो घर है. ऐसे परमात्माके अहंकारमें अपनो अहंकार जब हिस्सा बन जाये, तब भक्ति है. परमात्माके अहंकारसु जब अपनो अहंकार सामना करतो होय तो भक्ति नहीं है. ये बात समझनी चइये. तो दैन्य लो चाहे अहंकार लो. भक्ति इन दोनोंके बीचमें चलवेवाली कोई वृत्ति है. न तो केवल दैन्य है न तो केवल अहंकार है.

भक्ति न तो केवल त्याग है और न केवल भोग है. भक्ति त्याग और भोगके बीच चलवेवाली कोई अलग वृत्ति है. आदमी त्याग दे, क्यों त्यागे? क्योंके आदमीकु वस्तुमें दोष दिखलाई दे. यदि दोष दिखलाई नही देतो होय कोईकु, तो आदमीकु त्यागवेकी जरूरत पड़े? बस दोष दिखलाई दे है अपनेकु वस्तुमें वा बखत वा वस्तुकु त्यागे है. पर भक्ति त्यागकी बात नहीं है. भक्ति भोगकी बात भी नहीं करे. क्योंके भक्तिकु एक कमलकी तरह बतायी हैं. भक्तिमार्गाब्ज बतायो है. कमल क्या है? कमल जा कीचड़में उगे है. वाही कीचड़के न तो गंध, न तो वाकी मलीनता, वो भले वा कीचड़में उगे है पर उगे कितनो स्वच्छ, कितनो सुगंधित, कितनो निर्मल, कितनो सुन्दर उगे है. या तरहसु भक्ति भोगमें उगे है. परमात्माके प्रति जो सूर्यकी तरह है. वाके प्रति उन्मुख होती भई एक वृत्ति है मनकी, वामें स्वच्छता है. वो भोगकी वृत्तिमें भी, भोगकी जो एक पंकरूपता है कीचड़पनो, वो पंकरूपता नहीं है भक्तिमें भोगकी. वो भोगमेंसु ही **''या प्रीतिः अविवेकीनां विषयेषु अनपायिनी त्वाम् अनुस्मरतः सा मे हृदयाद् मा अपसर्पतु''** (विष्णु.पुरा.१।२०।१९). या न्यायसु विषयानन्द विषयासक्तिके पंकमेंसु पनप्यो भयो एक कमल है भक्ति. जो विषयासक्तिकी दुर्गंध लिये भये नहीं है. जो विषयासक्तिकी मलीनता लिये भये नहीं है. बड़ी निर्मलता, बड़ी स्वच्छता लिये भये है. भक्ति न तो त्याग है न भोग है. भक्ति इन दोनोंके बीच चलती भई कोई वृत्ति है.

यदि महाप्रभुके शब्दनमें कहें तो भक्ति समर्पण और विनियोग को भाव है. समर्पण और दान के भावमें थोड़ो अन्तर है. अपन् दान करें. 'दान'को मतलब क्या? जाकु अंग्रेजीमें ट्रांस्फर् ऑफ् ओनरशिप् कहें. **''स्व–स्वत्वनिवृत्ति–पूर्वक–परस्वत्वापादानम्''** कुल मिलाके बात इतनी है के दान जा बखत अपन् दें वा बखत अपनेकु कोई अहंकार है और वो अहंकार क्या के कछु मेरो है और वो मैं तोकु दे रह्यो हूं. आदमी दान तब ही दे सके के जब कोई चीजकु अपनी मानें. मैं पार्लामेन्ट् तो दानमें नहीं दे सकूं मैं यहां बैठके राष्ट्रपतिभवनको कोईकु दान तो नहीं कर सकूं क्योंके जब तक मैं वाकु अपनो न मानूं, तब तक वाको दान मैं नहीं दे सकूं. दान देवेके लिये अहंता चइये. अब ये बात दूसरी है के कोईकु मिथ्या अहंता जग जाये.

(मिथ्या अहंता)

हमारे यहां बम्बईमें एक रामदासभाई हते. उनकु मिथ्या अहंता जग गई के वो वैजयन्तीमालाके पति हैं. सत्तर बरसको डोकरा. हाथमें सब खुजली और बड़ो विकृत रूप हतो. उनकु अहंता जग गई के वो वैजयन्तीमालाके पति. जब भी मोकु मिलते तो मोकु कहते ''क्यों श्यामबाबा पिक्चर्में हमारो नाम देख्यो के नहीं? वैजयन्तीमाला रामदास कापड़िया''. मैंने कही ''पिक्चर् देखवेतो मैं जाऊं नहीं''. तो बोले ''तुम मन्दिरकी चारदीवारमें पड़े रहो हो. तुमकु क्या पता के दुनियांमें क्या हो रह्यो है?'' मैंने कही ''आपकी बात सच्ची है. मंदिरकी चारदीवारमें रेहवेवालेकु क्या पता चल सके के तुम वैजयन्तीमालाके साक्षात् पति हो'' एक दिन हमारेकु बसमें मिल गये. हमारेकु कहवे लगे ''अरे क्या बताऊं? बालीने मेरेपे केस कर दियो है के तुम मेरी पत्नीकु बहका रहे हो''. अब बसवाले सब मोकु देखें, फिर वाकु देखें. अब परिस्थिति ऐसी भई तो मोकु बिना स्टोप्के ही उतर जानो पड्यो. आदमीमें ऐसी मिथ्या अहंता जग जाये और कोई बखत कह दे के सारो ब्रह्म मैं ही हूं. जैसे ''अहं ब्रह्मास्मि'' के खोटे अर्थ आदमीकु आ जायें के लो अब मैं ही ब्रह्म. वैसे बैठे–बैठे उनकु मिथ्या अहंता जग गई के ''वैजयन्तीमालाको पति मैं हूं''. बिचारी वैजयन्तीमालाकु पता होय के नहीं होय, मालूम नहीं के ये क्या चक्कर है? ऐसी खोटी अहंता जग जाये तो बात दूसरी है, बाकी खोटी अहंता नहीं जगे, दान तभी दियो जा सके के जा बखत अहंता अपनी वापे होय के ये मेरो.

जब तक मैं मेरो नहीं मानूं तब तक दान नहीं दे सकूं. दानको विरोधी भाव है खुदको भोग करनो. भोग करवेमें ममता चइये. अच्छो भोग अपन् तभी कर सकें के जब अपनेकु वापे ममता होय. नहीं तो चोरकी तरह चोरी करके वाकु भोग लो वो बात दूसरी है, वो भोग सच्चो नहीं है, वामें उत्तेजना रहे पर सच्ची ममता नहीं. जब तक ममता नहीं है तब तक स्वस्थ भोग नहीं हो पायेगो.

(भक्तिको भाव समर्पणको भाव)

भक्ति न तो भोग है न तो दान है. भक्ति समर्पणको भाव है. समर्पणको भावको मतलब क्या? केवल मेरो होय तो मैं तेरेकु दऊं. केवल मेरो है ही नहीं तो तेरेकु देवेको क्या? नहीं दऊं तो याको मतलब ये नहीं के मैं ही याकु पूरो भोगतो रहूं.

समर्पणको मतलब है के जो मेरो है वो तेरो है, जो तेरो है वो मेरो है. तेरे और मेरेमें कोई तरहको भेद नहीं है. या तरहको भाव समर्पणको भाव है. जो कुछ मेरे पास सुन्दर है, जो कुछ मेरे पास श्रेष्ठ है, वो सब तेरो है. जो तेरो दियो भयो है या लिये मेरे पास है. मेरो है या लिये नहीं के यापे मेरो कोई अधिकार है. मने भक्त यहां तक कहे के मेरी अहंता, मेरी ममता, मेरो ज्ञान, मेरी बुद्धि, मेरो बल, मेरो ऐश्वर्य, मेरी इन्द्रिय, मेरी देह ये सब मेरे कहां हैं? यदि मेरे होते तो कौंन छुड़वा सकतो मोसु? कोई छुड़वा नहीं सकतो थो. मेरे नहीं हैं येई या बातको प्रमाण है के क्षण भरमें छूट जाये.

हमारे डॉक्टर्ने एक बार हमकु कही ''महाराज तुम्हारो शरीर मोटो हो रह्यो है. थोड़ी खुराक कम करो.'' मैं बोल्यो ''डॉक्टर् साहब, चार रोटी खाऊं.'' तो बोल्यो ''दो रोटी खाओ.'' मैं बोल्यो ''दो रोटीमें भूख मिटे नहीं.'' तो बोल्यो ''मैं एक रोटी खाऊं हूं. तुम्हारी लाइफ्स्टाईल् खराब है. दिन भर बैठवेकी है.'' अब वाई बरस डॉक्टर्साहबकु हार्टएटेक् आ गयो. हमकु कह रहे थे के वो एक ही रोटी खावें हैं. हमने कही एक रोटी खाते भी हार्टएटेक् आयो तो चार रोटी खावेमें क्या नुक्सान है? आदमी सोचे नहीं. आदमीकु चक्कर लगे. कहवेको मतलब क्या मेरो? समर्पणको भाव दोनोंन्के बीचमेंसु जा रह्यो है. अपन् प्रभुकु दें नहीं हैं. क्योंके देवे लायक अपने पास है क्या? अपनो है क्या जो अपन् प्रभुकु दे सकें? समर्पणको मतलब त्याग नहीं है. अपन् छोड़ें नहीं हैं. क्योंके प्रभुकु दियो भयो अपने पास है. प्रभुने जो कुछ अपनेकु दियो, वाकु फैंकवेमें क्या फायदा? भक्त अपनी हर चीज संजोके रखे है पर स्वार्थके लिये नहीं. प्रभुके साथ वाके उपभोगके लिये रखे है. गार्हस्थ्य प्रभुके लिये है, भक्तको ज्ञान प्रभुके लिये है. भक्तको कर्म प्रभुके लिये है. भक्तकी हर चीज प्रभुके लिये है.

जब ये भाव अपनेमें जग्यो तब भक्तिमें चाहे दान करनो होय या त्याग या विराग. समझो के पिता अपनेकु कोई चीज दे, वामें अपन् कहें के हमकु विराग है, यामें पिताको आदर भयो के अनादर भयो? जो कुछ दियो भयो है वो परमात्माको दियो भयो है, हम वाकु छोड़वेवाले कौंन? हम वाकु तोड़वेवाले कौंन? हमकु जो दियो है, हम वाको दुरुपयोग नहीं करें, सदुपयोग करें. जो हमकु दियो वाको दुरुपयोग करें तो वो बुरी बात है. वाको अनुपयोग करूं तो मेरी मूर्खता है. क्योंके दियो

है वाको अनुपयोग क्यों करनो चईये? भक्तिको भाव सदुपयोगको है. दोनोंके बीचमें चलवेवालो एक भाव है. भक्तिको भाव जो कुछ मिल्यो है वाकु फैंक देनो नहीं है. जो मिल्यो है वापे सांपकी तरह कुंडली मारके बैठ जानो भी नहीं है. भक्तिको भाव, समर्पणको भाव है. यदि समर्पणको भाव अपनेसु निभ्यो तो भक्ति निभी. अपन्ने ये वहम पाल लिये के हम दान करेंगे. अपन्ने ये वहम पाल लिये के हम त्याग करेंगे. अपन्ने ये वहम् पाल लिये के हम भोग करेंगे, तो निश्चित समझो के न तुम त्याग कर पाओगे, न तुम भोग कर पाओगे. तुम्हारी गति अधबीचकी है और अधबीचकी ही रहेगी. वासुं ज्यादा जा नहीं सकोगे. जब अधबीचकी ही स्थिति है तो भक्ति अपनेकु ये समझावे है के वा अधबीचकी स्थितिको अच्छी तरहसु समझके वाको सदुपयोग करो.

प्रभुके सन्दर्भके बिना वस्तुके सदुपयोगको रहस्य, वाको सच्चो स्वरूप समझ नहीं पायेंगे. याके लिये भक्तिको सच्चो स्वरूप न तो अनुपयोग है, न दुरुपयोग है. अपनेकु जो प्राप्त भयो है, वाके सदुपयोगमें भक्ति रही भई है. सदुपयोगरूप भगवत्समर्पणमें भक्ति रही भई है. ये भक्तिको सिद्धान्त जीवनमें एक बैलेन्स् लावेवाली बात है. जैसे कहें हैं के ''अतिको भलो न बोलनो अतिकी भली न चुप'' ये न तो अतिमौन हो जानो है भगवान्के सामने के जब भगवान् आवें तब भी अपन् चुप रहें और न तो अतिको बोलनो है. भगवान्कु अपन् बैठके गीताही सुनावे लग जायें.

(भक्ति एक अकृत्रिमभाव)

एक भाई मन्दिरमें भगवान्कु गीता सुना रहे थे ''**बहूनि मे व्यतितानि जन्मानि तव च अर्जुन तानि अहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप**'' (भग.गीता.४।५). मैंने कही ''भगवान्कु ये सुनाके क्या फायदा होयगो? तूने कई जन्म बिताये हैं, सो मैं जानू हूं तुम नहीं जानो हो'' ये सुनावेसु भगवान्कु क्या लाभ होयगो? उनने कही ''भगवान्ने कही है के गीता गाओ'' तो मैंने कही ''भगवान्ने गीता गावेकी कही है पर भगवान्कु सुनावेकी थोड़े ही कही है गीता तुम अपनी आत्माकु सुनाओ'' आदमी मौन रहनो पसन्द नहीं करे. कुछ न कुछ सुनावे.

कई लोग मन्दिरमें जावें. वहां आंख मींचके खड़े हो जायें. वहां मन्दिरमें कई लोग हाथ देखें. अरे हाथ तो तुम्हारे दिन भर दीख रहे हैं. मन्दिरमें जाओ तो भगवान्‌कु निहारो, पर सब गड़बड़ा जायें. आंख मींचके हाथ जोड़के खड़े हो जायें. हाथ उंचो करें. हाथमें कुछ धर्‌यो होतो तो घर बैठे ही सिद्ध हो जातो. मन्दिरमें आवेकी गफलत भी नहीं रहती. आदमी घपलाबाजीमें रहे. मन्दिरमें जाये तो हाथ देखे. घरमें जाये तो फिर भगवान्‌कु भूल जाये. ये स्थिति भक्तिकी नहीं है. भक्तिको भाव बड़ी मधुरताको भाव है. जामें जीवनकी संतुलना आवे है. वो भक्तिको कमल सहजतामें खिल सके है. न अहंकारकी कृत्रिमता, न कर्मकी कृत्रिमता, न त्यागकी कृत्रिमता और न वैराग्यकी कृत्रिमतामें खिल सके है. भक्तिको भाव अकृत्रिम है.

(‘भक्ति’शब्दके विभिन्न अर्थ)

महाप्रभुके मतमें भक्तिको स्वरूप अपनेकु समझनो होय, तो एक बात बहोत ध्यान देवेकी है. अपन् कई सन्दर्भन्‌में ‘भक्ति’शब्दको प्रयोग करते रहें हैं. शब्दके तो कई अर्थ होवें. जैसे शब्दको एक अर्थ रूढ़ि होवे. एक अर्थ यौगिक होवे. एक अर्थ पारिभाषिक होवे. एक अर्थ लाक्षणिक होवें. एक अर्थ विपरीत होवे. अलग अलग वृत्तिन्‌सु अनेक अर्थ शब्दके होवे जैसे अपन् ‘गाय’ कहें. गायको संस्कृत भाषामें ‘गो’ कह्यो जाय. ‘गो’ मने क्या? ‘‘गच्छति इति गो’’ चले वाको नाम गाय. चले क्या गाय ही है? सभी चीज चलें. गधा भी चलें, घोड़ा भी चले. हाथी भी चले. पर अपन्‌ने रूढ़िमें नक्की कियो के भले चले है और तेज भी चले है पर घोड़ाकु अपन् ‘गाय’ नहीं कहेंगे. क्यों नहीं कहेंगे? या बातको कोई जवाब नहीं है. रूढ़िमें ये निश्चित कियो के अपन् ‘गाय’ या प्राणीकु ही कहेंगे. ये रूढ़ि है. गायकु ‘गो’ कहनो ये रूढ़ि है. ऐसे ही यौगिक अर्थ भी हो सके है. जैसे अपन् कमलकु ‘पंकज’ कहें. ‘पंकज’को मतलब क्या? पंकमे जो पैदा होतो होय वो पंकज. ये यौगिक अर्थ कहवावे. शब्दके एक एक जो हिस्सा है, उनकु तोड़के जब अर्थ निकले, तो यौगिक अर्थ कहवावे. ऐसे ही शब्दके कोई पारिभाषिक अर्थ भी होवे हैं. पारिभाषिक अर्थको मतलब क्या? शब्दके चालू वपराते अर्थ कुछ और होवें और पारिभाषिक अर्थ दूसरो ही कछु होवे.

हमने सरकारी खातामें यहां एक एप्लीकेशन् दियो हतो. हम कह रहे थे के भई हम धर्माचार्य हैं. वो बोले ‘‘धर्माचार्य कोई क्लोज् ही नहीं है. पुजारी है.’’

हम कहें ‘‘भई पुजारी नहीं है धर्माचार्य हैं.’’ उनने सुनवेके बाद कही ‘‘पुजारी हैं’’ हमने कही ‘‘पूजारीको मतलब क्या? हमने क्या पूजाके साथ दुश्मनी करी के हम पूजाके अरि होवें?’’ वाने फिर कही ‘‘तुम पुजारी हो.’’ ये क्या है के उनने परिभाषा भर रखी है के धर्माचार्य होय वो भी पूजारी है. पूजाको अरि है. पूजा करतो होय वो भी पूजाको अरि है. एक ऐसी परिभाषा कर रखी है. सब पुजारी हैं. जनता दर्शनार्थी या पूजनार्थी है यासु देवस्थानके अलावा और सब पूजारी हैं. ये परिभाषा है. अपनी घड़ी भई परिभाषा. ऐसे कुछ शब्दन्‌के पारिभाषिक शब्द होवें. वो शब्द भले वाको अर्थ होवे के नहीं होवे पर वाने जो परिभाषा घड़ी वो वा शब्दको पारिभाषिक अर्थ.

ऐसे ही ‘भक्ति’शब्दके भी अनेक अर्थ हो सके हैं. ‘भक्ति’शब्दपे भी ध्यान दोगे तो पता चलेगो के जो मूल तात्पर्य अर्थ है, तात्पर्यार्थ कहा? जैसे सांझ हो गई होय और अपन्‌कु बत्ती जुड़वानी होय, तो अपन् अपने घरमें कोई व्यक्तिकु यों नहीं कहें के बत्ती जोड़ो. अपन् बस इतनो ही कहें के सांझ हो गई. कह तो रहे हैं के सांझ हो गई और वाको अर्थ क्या निकल रह्यो है? बत्ती जोड़ो. क्यों बत्ती जोड़ो अर्थ निकल रह्यो है? क्योंके उन शब्दको तात्पर्य बत्ती जुड़वेमें है. तात्पर्यार्थ अलग हो सके है एक ही शब्दके. वाको रूढ़ि अर्थ अलग हो सके है. वाको यौगिक अर्थ अलग हो सके है. वाको पारिभाषिक अर्थ अलग हो सके है. वाको लक्षणार्थ अलग हो सके है. लक्षणाको अर्थ क्या? जैसे अपन् कहें ‘‘गंगापे गांव बस्यो भयो है’’. तालाबपे गांव बस्यो भयो है. अब तालाबपे गांव बस्यो होय तो सब डूब जायें. पर लक्षणासु अपन् वाको अर्थ समझेंगे के गंगापे गांव बस्यो वाको मतलब ये के गंगाके किनारेपे या तालाबके किनारेपे गांव बस्यो भयो है. ऐसे लक्षणाको अर्थ होवे.

एक विपरीतार्थ भी होवे है शब्दन्‌को. कोई दुबलो पतलो आदमी होवे और अपन् वाकु कहें ‘‘कहो पहलवानजी कैसे हो?’’ आदमी दुबलो पतलो, हड्डी-हड्डी दीख रही हैं और तुम कह रहे हो के पहलवानजी कैसे हो? कोई महान् मूर्ख होवे और वाकु अपन् कहें ‘‘आओ पंडितराज आओ’’. ये विपरीतार्थ हैं. जो अपन् कह रहे हैं वो अर्थ नहीं है पर वाको विपरीत अर्थ होवे. जैसे संस्कृतमें अपन् कहें प्रखर. खरको मतलब क्या? गधा. प्रकृष्ट खर होय वो गधा. जाकु कुछ समझमें

नहीं आवे वाकु कहें बहुत प्रखर विद्वान है. जो प्रखर होय वो गधा. ये विपरीत अर्थ हैं. शब्दके ऐसे विपरीत अर्थ भी चले हैं.

ऐसे कई अर्थन्में अपन् 'भक्ति'शब्दको प्रयोग करें हैं. पर समझनो चइये के 'भक्ति' जब अपन् कहनो चाह रहें हैं, तब 'भक्ति'शब्दको तात्पर्य क्या? 'भक्ति'शब्दको तात्पर्य है **परमात्मामें निरुपाधिक प्रेम** . जब भी अपन् कोईके साथ, जगत्की कोई भी वस्तुके साथ प्रेम करें हैं तो कुछ न कुछ शर्त रखके करें हैं. बिना शर्तके कोई प्रेम जगत्की कोई वस्तुसु हो नहीं सके है. एक दुकानदारकु ग्राहकके साथ बड़ो प्रेम होवे है. प्रेम है बड़ो प्रेम है. प्रकट कैसे होवे है? अरे हमारे बड़े पुराने स्नेही ग्राहक हैं. स्नेही ग्राहकको मतलब क्या? बहुत समयसे माल खरीद रहें हैं. यदि माल खरीदनो बन्द कर दियो तो वो ग्राहक स्नेही नहीं रहेगो. बेटा अपनेकु बड़ो प्रिय लगे है. कब तक प्रिय लगे जब तक अपनी बात मान रह्यो है, आज्ञाकारी है. सिर उठायो तो अपनेकु लगे के नालायक है, प्रेम खत्म. जब भी अपन् जगत्की कोई भी वस्तुसु प्रेम करे हैं तो अपन् कुछ न कुछ शर्त रखके करे हैं. बिना शर्तके जगत्की कोई वस्तुसु प्रेम हो नहीं सके है. या तरहकी शर्त रखके, जब अपन् प्रेम करे हैं. तो वो निरुपाधिक प्रेम नहीं है. वो प्रेम तो हो सके है, पर वाकु भक्ति नहीं कही जा सके है. भक्तिको मतलब है बिना शर्तको प्रेम होय तो होय, नहीं तो नहीं होयगो. जाके हृदयमें है, जो शर्तके साथ प्रेम कियो जाय, वो प्रेम प्रेम तो हो सके है पर वाकु भक्तिको दरजा नहीं दियो जा सके है. भक्ति वाही वक्त कही जाये जब कोई शर्त रह नहीं जाय. 'भक्ति'शब्दको तात्पर्य क्या? जैसे मैंने आपकु समझायो के अपन् यों नहीं कहें के बत्ती जोड़ो, अपन् इतनो कहें के सांझ भई और सुनवेवालेकु समझ जानो चइये के याको तात्पर्य बत्ती जोड़वेमें है. बत्ती जोड़नो तात्पर्यार्थ कहवावे सांझ होवेको. या तरहसु जब भी 'भक्ति'शब्दको प्रयोग आवे वाको तात्पर्य अर्थ ये ही समझनो चइये के ये भक्तिको मतलब निरुपाधिक मतलब बिना शर्तके. यदि कोई शर्त स्नेहके साथ चल रही है तो भक्तिको तात्पर्य आप समझे नहीं. भक्तिको तात्पर्य आपने खंडित कर दियो. भक्तिकु आपने अवरुद्ध कर दियो. भक्तिको मूल तात्पर्य आपने खंडित कर दियो.

ऐसे ही भक्तिको रूढ़ अर्थ क्या है? रूढ़ि शब्दको मतलब क्या? जैसे मैंने आपकु बतायो के 'गाय'शब्दकी रूढ़ि है, या जैसे अपन् याको लालटेन कहें. रूढ़ि

है. क्या अर्थमें लालटेन है? क्या पता? क्यों ये लालटेन है? न तो ये लाल है और न ये टेन है. अपन् कहें के ये लेनटर्न हती. लेनर्टन हती तो वामे भी चमकती वस्तुके बारेमें योगरूढ़ हती. चल रही है व्यवहारमें. कोई चीजकु अपन् कुछ नामसु पुकार रहे हैं. ऐसे भक्तिकी रूढ़ि कहां? ये बात समझवेको प्रयास करो. भक्तिकी रूढ़ि है **''माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ो सर्वतोधिकः स्नेहो भक्तिः इति प्रोक्तः.''** मने परमात्माके माहात्म्यकु समझके परमात्मामें सुदृढ़ स्नेह करनो, भक्ति है. यदि परमात्मासु सौदाबाजीपे स्नेह कर रहे हो, तो भक्ति नहीं है. वो उपासना तो हो सके है. परमात्माके साथ कुछ सौदाबाजी हो सके है. जैसे मैंने वा दिन आपकु बतायो थो **''आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च''** आर्त होके, जिज्ञासु होके, अर्थार्थी होके यदि आप भक्ति कर रहे हो तो वा भक्तिमें कोई तरहकी सौदाबाजी रही भई है. भक्तिको जो रूढ़ अर्थ है, वाके विपरीत बात हो गई. 'भक्ति'शब्दसु या बातकु कह्यो नहीं जायगो. ऐसी बात अपनेकु ये गिननो चइये कि ठीक है परमात्मासु कुछ सौदेबाजी कर रह्यो है पर भक्ति नहीं कर रह्यो है.

ऐसेही भक्तिको यदि यौगिक अर्थ पूछो तो पंकसु जो पैदा होवे वाकु 'पंकज' कहें. ऐसे भक्तिको यौगिक अर्थ क्या? यौगिक अर्थ भी समझवेको प्रयास करो. 'भज्' धातुको अर्थ होवे है सेवा. भज्के साथ जब क्तिन् प्रत्यय लगे तो 'भक्ति' कह्यो जाय. भज्+क्तिन्=भक्ति. मने सेवा करवेकी जाकी तैयारी है परमात्माकी सो भक्ति है. नहीं तो भक्ति नहीं है. ये वाको यौगिक अर्थ है.

अब एक और अर्थ, लक्षणा. जैसे अपन्ने कही के नदीपे गंगापे गांव बस्यो भयो है. अपनो मतलब नदीके ऊपर गांव बसवेसु नहीं है पर नदीके किनारे गांव बस्यो भयो है. या तरहसु जब अपन् यों कहें, ये आदमी या मनोकामनासु भक्ति कर रह्यो है तो समझ लो के 'भक्ति'शब्दको वहां लाक्षणिक प्रयोग है. वो भक्ति नहीं है. वो तो गंगापे नदीके किनारेपे गांव बस्यो भयो है. ये कुछ सौदेबाजीपे काम चल रह्यो है. भक्ति नहीं चल रही है. बहुतसे लोग कहें हैं, हम शीरड़ीके सांईबाबाके अथवा तिरुपति या श्रीनाथजीके बड़े भक्त हैं. वाको मतलब क्या? सांईबाबाकी मानता मानें और वो पूरी हो रही है. पूरी हो रही है या लिये भक्त हो. दो चार मानता मानो पर पूरी नहीं भई तो तुम सांईबाबाकी जगह कोई दूसरे बाबाको खोजवे लग जाओगे. जा बखत मानता मान रहे हो और पूरी हो रही है, या तरहकी अपन्

भक्ति सोचें तो लोग सोचें के हमारी भक्ति बहुत ज्यादा है सांईबाबामें पर सांईबाबामें महाशय आपकी भक्ति या लिये है के आपकी मानता पूरी हो रही है.

अपने यहां महाप्रभुने ना पाड़ी के भगवान्के साथ या तरहकी दुकानदारी मत करो. अपन्ने कही भगवान्के साथ नहीं करेंगे. ऑलराईट् पर भक्ति करेंगे तो मनोकामनाके लिये ही. अपन्ने कोईकु 'गधा' कही. गधाको मतलब ये नहीं के वाके लम्बे लम्बे कान हैं और ढेंचू ढेंचू करके बोले. 'गधा'को मतलब ये के एक ठिकाने खड़े रहें हैं. ट्राफिक् आती होय के जाती होय, वापे कोई ध्यान नहीं है. इनके दिमागमें कोई भी बात आती होय के जाती होय वापे ध्यान नहीं है. या बातके कारण गधा हो. चार पैरवाले गधा नहीं है, दो पैरवाले गधा हैं. ऐसे जा बखत अपन् कहें के मानता मनावेके कारण भक्ति कर रहे हैं या कारणसु जा बखत भक्ति कर रहे हैं, तो वो भक्ति जाकु अपन् गधा कहें, वा तरहकी भक्ति है. वो सच्चे अर्थमें भक्ति नहीं है. वो गौण अर्थमें भक्ति है. कुछ एकाध गुण दिखा रहे हो तुम वाको, पर अपने आपमें अन्दर वो तत्व है नहीं जो शब्दसु कह्यो जा रह्यो है. भक्तिके एकाध गुणको प्रकट करवेवालो कोई तत्व है, पूरो पूरो तत्व वहां प्रकट नहीं हो रह्यो है.

एक रूप ऐसो भी हो सके है के जामें अपन् परमात्माके स्वरूपको समझे बिना वासु असूया करें हैं. जैसे परमात्माको रूप अपन्ने सर्वाकार समझ्यो. वा सर्वाकार होवेके कारण परमात्मा साकार होवे है. वो सर्वाकारी परमात्माके साकार स्वरूपके साथ असूया करे है और असूया करके अपने आपकु भक्त भी मानतो होय परन्तु जो सर्वाकार है वो निराकार कैसे हो सकेगो? असूया कैसे करे परमात्माके साथ? परमात्मा साकार बन्यो. वो सोचे के मैं भी परमात्मा बन जाउं. अब मैं भी परमात्मा बन जाउं तो परमात्मा तो है ही, बनवेकी बात कहांसु आई? वो परमात्माके रूपकु पसन्द नहीं करे और आदमी सोचे के मैं परमात्मा बन जाउं. तो जो वाको रूप है वाकु तो पसन्द करे नहीं और वो परमात्मरूपकु धारण करनो चाहे, तो वो परमात्माके साथ प्रकट होती असूया है. भगवान्ने गीताके प्रारम्भमें ही या बातको खुलासा कर दियो है के गीताको उपदेश जो मेरेमें असूया रखतो होय उनकु नहीं देनो चइये. उनकु लेनो नहीं चइये. **''इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्यामि अनसूयवे ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्षस्यसे अशुमात्. राजविद्या राजगुह्यं पवित्रम् इदम् उत्तमम्''**, **''इदं ते न अतपस्काय न अभक्ताय कदाचन नच अश्रूशुषवे वाच्यं नच मां यो अभ्यसूयति''** (भग.गीता.९।१-२,१२।६७). क्योंके जो असूया करतो होय और वो अपने आपकु भक्त मानें, तो भक्तिको अर्थ ऐसो भयो जैसे कोई सीकियाकु अपन् 'पहलवानजी' कहें. या तरहको विपरीतार्थ है. असूया करे है परमात्माके साकार स्वरूपसु और अपने आपकु परमात्माको भक्त माननो परमात्माके साकाररूपसु असूयाको मतलब ईर्ष्या. परमात्माके साकाररूपकु कबूले नहीं और फिर माने के मैं परमात्माको भक्त हूं. अब वो परमात्माको भक्त कैसे हो सके है? मने जो कुछ परमात्माने अपनेकु दियो है. वाके प्रति अपन् निन्दाको भाव रखें, वाके प्रति अपन् हेयताको भाव रखें, ईर्ष्याको भाव रखें और फिर कहें के हम तुम्हारे भक्त है तो वा भक्तिमें विपरीतता आ गई. कैसी विपरीतता? जैसे अपन् किसी मूर्खकु 'पंडितराज' कहें. जैसे कोई दुबले पतले आदमीकु 'पहलवानजी' कहें. या तरीकेकी विपरीतता आ गई. यासु असूयाके कारण 'भक्ति' शब्द विपरीतार्थक हो जाये है. वाको सीधो अर्थ नहीं रहे है.

यासु भक्तिके कई तरहके अर्थ हो सके हैं. इन बातन्कु अपनेकु समझनो चइये. हर आदमी 'भक्ति' शब्दको प्रयोग करे. पर अपन् अपने पास या हृदयमें या कागजमें लिखके चार्ट रखियो के ६तरीकेके भक्तिके अर्थ हो सके हैं. तात्पर्यार्थ हो सके है, रूढ़ि हो सके है, यौगिकार्थ हो सके है, पारिभाषिक हो सके है, गौणार्थ हो सके है और भक्तिको विपरीतार्थ भी हो सके है.

इन सारे शब्दन्के और इन सारे अर्थन्के संदर्भन्में आदमी 'भक्ति'शब्दको प्रयोग करतो होवे है. सावधानीसु अपनेकु पहचानते रहनो चइये. कोई क्या कह रह्यो है? जा बखत असूया करतो होय और कहे के ''मैं भक्त हूं'' तो अपनेकु समझ जानो के यहां 'भक्ति'शब्दको अर्थ विपरीतार्थक है. जा बखत सकाम भक्ति करतो होय तो अपनेकु समझ जानो के ये भक्तिको रूढ़ार्थ नहीं है, ये भक्तिको तात्पर्यार्थ नहीं है. ये भक्तिको केवल गौण या लाक्षणिक अर्थ है. जैसे अपन् आदमीकु 'गधा' कहें वैसे. पर जाकु निरुपाधिक स्नेह है, बिना शर्त जाके हृदयमें परमात्मासु स्नेह है. हर प्राणीके हृदयमें है स्नेह, ये मत भूलियो के कोई प्राणीके हृदयमें स्नेह नहीं है ऐसो नहीं है. क्योंके परमात्माके प्रति यदि अपनेकु स्नेह नहीं होय तो निश्चित समझो के और कोई भी विषयमें अपनेकु स्नेह हो ही नहीं सके है. दरअसल जितनो

स्नेह विषयमें अपनेकु प्रकट हो रह्यो है, परमात्माके स्नेहके कारण ही प्रकट हो रह्यो है. पर वामें परमात्मा छिप जाये और स्नेह प्रकट रह जाये, ये स्थिति है.

जैसे एक सामान्य बात बताऊं के अपन्ने अध्ययनकी शुरुआत करी थी, स्कुलकी शुरुआत भई थी, विद्यार्जनकी शुरुआत भई थी, ज्ञानार्जनके लिये. ज्ञानार्जन होवेके बाद आदमी समर्थ बने तो धनार्जन भी करे. पर धीरे-धीरे क्या भयो के उन दोनोंको जो नियत चक्कर चल्यो, वामें एक स्टेज् ऐसो आ गयो के वामें आदमी धनार्जनके लिये ही ज्ञानार्जन करे. मूल उद्देश्य हतो ज्ञानार्जनको के विद्या और विनय प्राप्त करनो, वो खो गयो. अर्थार्जन ही वाको एक स्वरूप रह गयो. ऐसे आदमी निरन्तर कोई बात करतो रहे तो वो गड़बड़ा जाये. जैसे कहे के 'राम राम' जपते रहो तो थोड़ी देरमें 'मरा मरा' निकले और 'मरा मरा' कहो तो थोड़ी देरमें 'राम राम' हो जाये. ऐसे ही एक काम कोई निरन्तर करतो रहे तो वामें कुछ घोटाला हो जाये. या तरहसु जो निरन्तर अपन् करते रहे हैं, वामें कुछ उलट-पुलट हो जाये, अपन् विपरीतार्थमें लक्षणार्थको प्रयोग करवे लग जायें. जैसे खावेकी बात सोचो. आदमीके शरीरमें खावेकी रुचि क्यों पैदा करी गई? क्योंके जीनो थो. पर आदमी खा खाके मर जाये. इतनो खावे के मर ही जाये.

हमारे एक मुखियाजीकु श्राद्धमें भोजनमें कोईने बुलायो. एक ठिकाने गये. दो ठिकाने गये. तीन ठिकाने गये. चार ठिकाने गये. कम खाओ तो उनकु संदेह हो जाये के कहीं और खाके आये होओगे. सब ठिकाने खूब खायो और इतनो खायो के मर ही गये. खावे क्यों आदमी के जीनेके लिये और खावेके ही कारण मर गये ये जो उलटो चक्कर चल गयो है वो क्यों चल्यो? आदमी समझ नहीं पावे और साध्यके बजाय साधनन्पे जोर पकड़ जाये. आदमीकु शराब पीवेकी आदत होवे, सिगरेट फूंकवेकी आदत होवे, क्यों पड़े? लोग कहें के बात भुलावेके लिये पीवें हैं, सिगरेट फूंकते-फूंकते दिन भर उन लोगन्कु सिगारेटकी ही स्मृति बनी रहे और भूलनो-भुलानो कुछ होवे नहीं. बस आदत वो एक पड़ जाये. साधनको एक चक्कर नयो कौभाण्ड शुरु हो जाये. या तरीकेकी अपने यहां व्यवस्था है अपने शरीरमें. अपन् काम करें एक उद्देश्यसु और वो उद्देश्य अपन् भूल जायें और साधनन्कु अपन् पकड़के बैठ जायें. या तरह साधन पकड़के बैठ जावेकी वृत्ति भक्तिकी नहीं है.

भक्तिकी वृत्ति परिपूर्ण वृत्ति है. जामें साधन और साध्य दोनोंको बैलेन्स् होय, वो भक्तिकी वृत्ति है.

जा तरहकी भक्तिकी वृत्तिको स्वरूप महाप्रभुने समझायो वैसो सांगोपांग निरूपण महाप्रभुजीके अलावा अन्यत्र मिलनो दुर्लभ है. या लिये महाप्रभुकु **'भक्तिमार्गाब्जमार्तण्ड'** कह्यो है. जो भक्तिमार्गके हर पत्ताकु, जैसे कमलको एक-एक पत्ता खिल जाये सूरजके खिलवेसु, ऐसे महाप्रभुने भक्तिके एक-एक पत्रकु खिला खिलाके समझायो है के यहां याके अन्दर पराग है. कहां बाहर केवल हरो पत्ता है. कहां याके अन्दर गुलाबी पत्ता हैं कमलको. कहां वामें पराग है. कहां वामें केसर है. कहां वामें कमलगट्टा है जहां वाको तात्पर्यार्थ रह्यो भयो है. उन् सारे अर्थन्की विवेचना महाप्रभुजीने करी और भक्तिको एक सशक्त पथ अपनेकु समझायो.

आठवें दिनको प्रवचन

अपन्ने अव्यक्तोपासनाके बारेमें विचार कियो थो. कल प्रसंगोपात्त भक्तिके रूप बताये. क्योंके अब आगेके जो श्लोक हैं, छट्ठे श्लोकसु लेके आठवें श्लोक तक **''ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते. तेषाम् अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् भवामि नचिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसाम्. मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्द्धं न संशयः''** (गीता.१२।६-८). इन श्लोकन्में भगवान्ने भक्तियोग स्थापित कियो है. वाके आगे नवें श्लोकसु लेकर बारहवें श्लोक तक भगवान्ने या बातको प्रतिपादन कियो है जिनके हृदयमें या तरहकी भक्तिको अनुभव नहीं होतो होय. देखो एक अनुभव होवे और एक अनुव्यवसाय होवे. अनुभवको मतलब क्या? जैसे अपनेकु ये पुस्तक दीख रही है, तो ये पुस्तकको 'अनुभव' कहवावे. पर जा बखत अपन् यों सोचे के ये पुस्तक मोकुं दीख रही है तो 'अनुव्यवसाय' कहवावे. अनुव्यवसायमें विषय और विषयी दोनोंको ज्ञान होवे. दोनों विषय बन जायें और अनुभवमें केवल विषय ही ज्ञानको विषय बने. ये अन्तर है. अपनेकु या तरहको अनुव्यवसाय नहीं होतो होय, अपनेकु यों लगे के ये सब भक्तिको रूप है, भक्तिको व्यवसाय अपने हृदयमें नहीं होतो होय तो भगवान् कहे हैं के अभी इतनी जल्दी ये समझवेकी उतावली मत करियो के मैं भक्ति कर रह्यो हूं.

(प्रभुसु सगाई-विवाहकी तरह भक्तियोगकी साधनदशा-सिद्धदशा)

जैसे अपन् विवाह करवेके पहले कुछ थोड़े दिन सगाई रखें. ऐसे परमात्माने कुछ सगाई रखवेकी बात बताई है. जैसे पहले सगाई होवे, वाके बाद विवाह होवे और वाके बाद गौना होतो. आजकल गौनाको रिवाज खतम हो गयो. पर अभी भी अपने यहां सगाई और विवाहको अन्तर कायम है. वा बातसु थोड़ो समझ सकोगे. सगाईको मतलब क्या? सगेपनको भाव. कुछ सगोपन के हम याके सगे हैं. ये भाव हृदयमें पैदा करनो. अभी तक सगे बने नहीं पर सगे बनवेकी प्रक्रियामें रहनो, वो सगाई. एक तो विवाह. विवाहको मतलब क्या? एक दूसरेको उत्तरदायित्व जीवनमें ढोनो. ये एक दूसरेकु ढोवें और वो ढोनो कोई भार रूपसु नहीं. वो ढ़ोनो स्नेहसु ढोनो. वो विवाह है. एक दूसरेपे निर्भर हो जानो. ढोनो जरा कठोर लगे है पर विवाहको मतलब है एक दूसरेपे निर्भर हो जानो है. जा बखत परमात्मासु भक्तिरूपी

विवाहकी तैयारी नहीं है पूरी-पूरी तो भगवान् गीतामें आज्ञा करे हैं के इतनी जल्दी ससुराल जावेकी इच्छा मत करो. थोड़ी देर प्रतीक्षा करो. विवाहके पहले सगाई रखो थोड़े दिन और वो सगाईके द्वारा मनमें ये भाव, ये सपनायें संजोओ के हम यासु विवाहित होवेवाले हैं. सपनानुकु संजोनो सगाई है और सपनाको साकार होनो विवाह है. आगेके श्लोकन्में यथा :

''अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोसि मयि स्थिरम् अभ्यासयोगेन ततो माम् इच्छ आप्तुं धनञ्जय. अभ्यासेऽपि असमर्थो असि मत्कर्मपरमो भव मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिम् अवाप्स्यसि. अथ एतदपि अशक्तोसि कर्तुं मद्योगम् आश्रितः सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्. श्रेयो हि ज्ञानम् अभ्यासाद् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् शान्तिः अनन्तरम्'' (भग.गीता.१२।९-१२).

यहां तक सगाई करवेके अलग-अलग कर्म प्रभुने बताये हैं के कैसे-कैसे परमात्माके साथ सगाई रखी जा सके है. याके बाद तेरहवें श्लोकसु लेके उन्नीसवें श्लोक यानि **''अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्''**सु लेकर **''प्रियो नरः''** तक भगवान्ने सगाई समझाई है. जैसे अपने घरमें कन्याकी सगाई भई होय, तो अपन् थोड़ी घूमने-घामनेकी छूट भी दे सकें हैं. थोड़ो वाकु कह सकें हैं के रसोई बनानी होय तो बनाओ नहीं बनानी होय तो मत बनाओ. पर सगाई होनेके बाद थोड़ी-थोड़ी इन्स्ट्रक्शन् शुरु हो जाये. या तरहसु भगवान्ने, सगाई जब स्थापित कर रहे हो, वाकी अलग-अलग लेवलकी पांच तरहकी इन्स्ट्रक्शन् दी हैं. अन्तिम बीसवें श्लोकमें **''ये तु धर्म्यामृतम् इदं यथोक्तं पर्युपासते श्रद्धधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः''** (भग.गीता.१२।२०) उपसंहारके श्लोकमें प्रभुने या बातको खुलासा दियो है के ये जो जितने सुझाव दिये गये हैं भक्तियोगके आरम्भके अथवा भक्तियोगकी सिद्धिके, साधनदशाके अथवा सिद्धदशाके, उन् दोनों दशान्मेंसु जा भी दशामें तुम हो, वा दशामें जा तरहसु समझायो है, वा तरहसु यदि तुम भक्तियोग कर पाये **''धर्म्यामृतम् इदं यथोक्तं पर्युपासते श्रद्दधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः''** तो वो भक्त मोकु अत्यन्त प्रिय है. अतीव प्रियाः यों प्रभु कह रहे हैं. याके बिना अगड़म्-बगड़म् तरहसु भक्ति करो, तो यामें प्रभुकु भी मजा नहीं आवे. भक्ति तो ठीक है कर रहे हो, अच्छी बात है, जैसे मैंने कल आपकु बतायो ६प्रकार

हैं भक्तिके, मने गूढ़तम प्रकार परमात्माके साथ निरुपाधिक स्नेह होनो चइये, कोई शर्त नहीं, बिना शर्तके, कोई कामना नहीं, कोई हेतु नहीं पर हर हृदयमें या तरहको स्नेह प्रकट नहीं हो पावे तो याके लिये एक दूसरे स्तरकी भक्तिको स्वरूप समझायो गयो है. सचमुचमें परमात्माके प्रति अपने हृदयमें या तरहको स्नेह प्रकट नहीं हो पावे, यदि कोई पूछे के याको गुनहगार कौंन? याको कारण कौंन? यदि आरोप लगानो ही है तो परमात्मापे ही लगायो जा सकेगो. बिना परमात्माके कोई और पे याको आरोप लग नहीं सके. क्योंके उद्धवजीने या बातको खुलासा दियो है के **''सर्वात्मभावो अधिकृतो भवतीनाम् अधोक्षजे''** (भागवत.१०।४७।२७). अधोक्षजको ज्ञान होनो मुश्किल है, तो वामें स्नेह कैसे प्रकट हो सके? बड़ी समस्या कोई मानवके हृदयकी है तो ये है के स्नेह नहीं है अपने हृदयमें परमात्माके प्रति. ऐसो तो कोई हो ही नहीं सके, नास्तिकमें नास्तिक है, कट्टरमें कट्टर अनीश्वरवादी है वो कहीं न कहीं हृदयके गूढ़तम कोनामें परमात्माकु चाह तो रह्यो है. पर जैसे बड़ो बच्चा जो बोलवे लग जाये, वाकु जाकी भूख लगी होय वाकी वो हल्ला मचाके रोवे, पर छोटे बच्चाकु जब भूख लगे तो वाकु समझ नहीं पड़े के भूख लग रही है, क्या हो रह्यो है? बस खाली रोवे है. वाकु रोनो आवे. ऐसे नास्तिक, अनीश्वरवादी, वो सिर्फ रोवे है, वो समझ नहीं पावे है के वाकु भूख लगी है परमात्माकी. वो रोवे तो है अपने पतिकु देखके रोवे है, अपनी पत्नीकु देखके रोवे है, धनकु देखके रोवे है. जब वो रो रह्यो है तो या बातको प्रमाण है के भूख वाकु लगी है, भूख नहीं होय तो रोवे कायकु? जाकु भूख नहीं होवे, दूध पीयो होवे वो तो चैनसु सोवे. **''स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव स्थितधीः कें प्रभाषेत किम् आसीत व्रजेत किम्''** (गीता.२।५४). पर ऐसे जो भूख लगी है, वो रोवे पर वो समझ नहीं पावे के वाकु भूख लगी है तो करनो क्या? या तरहसु अनीश्वरवादी समझ नहीं पावे है के ईश्वरकी मोकु भूख है. पर अनीश्वरवादीकु भी सचमुचमें परमात्माकी भूख है.

(अज्ञानी–शास्त्रज्ञानी–भगवद्ज्ञानी)

एक दूसरे तरीकेसु आप समझो तो यों समझो. यहां जयपुरमें लालूभट्टजी करके भये हैं. उन्ने या बातकु बहुत सुन्दर समझायी है. तीन तरहको ज्ञान होवे. एक अज्ञानी होवे, दूसरो शास्त्रज्ञानी होवे और तीसरो भगवद्ज्ञानी होवे. वाको अन्तर समझाते वक्त उनने बहुत सुन्दर बात कही है और वो कहें है के अज्ञानी, शास्त्रज्ञानी,

और भगवद्ज्ञानी तीनोंमें अन्तर कितनो है? जैसे कोई छोटो बच्चा वाके आंखपे यदि आपने गोगल्स् पहरा दिये, हरो चश्मा, तो वो ये नहीं समझ पायेगो ये चश्माके कारण हरो दीख रह्यो है. वाकु लगेगो के सब चीज हरी हो गयी हैं. अपन् यदि गोगल्स् पहरें तो अपन् जानें हैं के चीज हरी नहीं है, कपड़ा सफेद है पर दिखलाई तो हरो ही देयगो. क्योंके गोगल्स् पहर रखे हैं. हरे चश्मा पहर रखे हैं. अब एक व्यक्ति ऐसो जाने चश्मा उतार दियो है, वाकु हर रंग साफसुथरो दिखाई देयगो. जो सफेद है वो सफेद दिखाई देगो, जो हरो है वो हरो दिखाई देयगो. वाकु रंगन्में गड़बड़ी नहीं होयगी. या तरहसु अज्ञानीकु दिखलाई दे रह्यो है पर वो समझ नहीं पा रह्यो है के ये क्यों ऐसो दिखलाई दे रह्यो है. वाकु जैसे दिखलाई दे वैसो वो मान ले. शास्त्रज्ञानीकु शास्त्र पढ़के इतनी तो समझमें आवे है के जो दिखलाई दे रह्यो है वो वैसो नहीं है. पर दिखलाई तो हरो रंग ही देगो. रंग तो कितने सारे होवें पर ये समझके कारण ये हरो रंग दिखलाई देनो बंध नहीं हो जावे, जब तक आंखन्पे चश्मा चढ़्यो भयो है तब तक. ब्रह्मज्ञानीकु साक्षात्कार है परमात्माको, वाने समझो के चश्मा उतार दियो है. चश्मा उतारवेके बाद वाकु हर रंग अपने रूपमें दिखाई देगो. ये एक स्वरूपको भेद है. या तरहसु नास्तिककु जो भी कुछ दिखलाई दे रह्यो है वो वैसो ही दिखलाई दे रह्यो है जैसे आस्तिककु दिखलाई दे रह्यो है. वामें अन्तर नहीं है. पर वाकु जैसो दिखलाई दे रह्यो है, ऐसो वो मान रह्यो है. आस्तिककु जैसो दिखलाई दे रह्यो है, वाकु वो जाने है के ये ऐसो नहीं है पर दिखलाई तो वाकु भी वैसो ही दे रह्यो है जैसो नास्तिककु दिखलाई दे रह्यो है. यदि सचमुचमें नास्तिककु जो दिखलाई दे रह्यो है, वासु अलावा कुछ शास्त्रज्ञानीकु दिखलाई देतो होतो तो मात्र शास्त्र पढ़वेसु जीवनकी हर समस्या हल हो जाती. फिर तो साधनाको कोई प्रश्न ही नहीं रह जातो जीवनमें. फिर तो हर व्यक्ति जाने दो चार पुस्तक पढ़ी, तो वाकी हर समस्याको समाधान हो जातो. पर समाधान पुस्तक पढ़वेसु हो जाये, मुद्दा इतनो सरल नहीं है.

याई लिये उपनिषद्ने कह्यो हैं **''श्रवणायापि बहुभिः यो न लभ्यः श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः. आश्चर्यो वक्ता कुशलो अस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः''** (कठोप.१।२।७). मने जो सुनें अपन् पर सुनवेके बाद भी वो बात समझमें नहीं आ सके. सुनवेसु समझमें आ जायगो, ये बात नहीं है. सुनवेसु अपन् शब्द समझ गये, पर वासु अर्थ समझमें आ जायेगो ये बात जरूरी नहीं है.

जैसे समझलो के एक आदमी यों कहे के मोकु प्यास लगी है. अपनेकु शब्द तो समझमें आ गये के वाकु प्यास लगी है पर वो प्यास अपनेकु समझमें नहीं आ सके. वो प्यास तो प्यासेकु ही समझमें आवे है. अपनेकु तो केवल शब्द शब्द समझमें आवें. ये व्यक्ति कह रह्यो है के ''मैं प्यासो हूं'' और याकु प्यास लगी है पर वाकी प्यास अपनेकु समझमें नहीं आ सके. अपनेकु लगे जैसे मीरा कहें ''घायलकी गति घायल जाने और न जाने कोय.'' या तरहसु प्यास लगी है वाकु ही प्यास समझमें आ सके. जो अपन् सुनें के प्यास लगी है, कह रह्यो है कोई के ''मोकु प्यास लगी है.'' तो वासु अपनेकु प्यास क्या है ये समझमें नहीं आ सके. शब्द-शब्द तो अच्छी तरहसु समझमें आ गये. ऐसे शास्त्रज्ञानी जितनो है, वाकु शास्त्रकी सब बात समझमें आ जाये के जो दिखलाई दे रह्यो है, वो वा तरहसु नहीं है. वाके अलावा भी वामें कुछ और रंग हैं पर वो दिखलाई तो वाकु वैसो ही देगो जैसो के एक नास्तिककु दिखलाई दे है. आस्तिककु दिखलाई तो उतनो ही दे है. वाके अलावा आस्तिककु अधिक दिखलाई नहीं दे है. अन्तर इतनो है. वो समझे है के ये हरे चश्माके कारण दिखलाई दे रह्यो है. मेरेमें रही भई अहंता-ममताके कारण मोकु ऐसो दिखलाई दे रह्यो है. मेरी अहंताके कारण मैं यों मान बैठ्यो हूं के मैं ये हूं और ये मेरो है. पर परमात्माने जो चश्मा मेरी आंखन्पे चढ़ाये है याके कारण मोकु ऐसो दिखलाई दे रह्यो है. हकीकत कुछ यासु ज्यादा रंगीन है. जितनो के एक रंग मोकु दिखलाई दे रह्यो है वाके बजाय.

(ईश्वरको स्नेही और भक्त)

या स्थितिमें जो नास्तिक है, अनीश्वरवादी है, वामें और ईश्वरवादीमें ये अन्तर नहीं है के अनीश्वरवादी ईश्वरको स्नेही नहीं है. स्नेही तो वो भी है पर अन्तर थोड़ो समझोगे शान्त चित्तसु, तो ख्यालमें आयेगो. नास्तिक या अनीश्वरवादी ईश्वरको भक्त नहीं है पर ईश्वरको स्नेही है. स्नेही और भक्तमें थोड़ोसो अन्तर हो गयो. स्नेहीको मतलब क्या? ईश्वरके प्रति मन वाको दौड़ नहीं रह्यो है, ऐसी बात नहीं है. दौड़ रह्यो है पर ईश्वरकु जैसे भक्त पहचान जाये है, मान ले है के ये ईश्वर है, वो मान नहीं पावे है. वो सिर्फ चाह रह्यो है ईश्वरकु. जैसे एक बच्चा बड़ो हो जाये तो मान ले के जब मोकु भूख लगे तब मोकु रोनो चइये, तब 'दूध' कहके रोवे या 'रोटी-पूड़ी' कहके रोवे, छोटो बच्चा समझ नहीं पावे, भूख लगे तो वो रोवे. वाकु समझ नहीं पड़े के दूधके कारण मैं रो रह्यो हूं. भूखके कारण वो रोवे

है. जब थोड़ो बड़ो होवे है, वो दूध मिले या लिये रोवे लगे है. इतनो अन्तर भक्त और स्नेहीमें है. स्नेही चाह तो रह्यो है पर मान नहीं पायो है अभी तक के जाकु मैं चाह रह्यो हूं वाकी मोकु जरूरत है. वो केवल चाह रह्यो है, वो पहचान नहीं पा रह्यो है के वाकु भूख है पर भूख मिटेगी कायसु? याके लिये छोटो बच्चा समझ नहीं पावे के दूधके कारण भूख मिटेगी तो वो अंगूठा चूसे, या खिलौना चूसे. जो चीज वाकु पासमें मिले उन् सबकु वो मुंहमें धरे. ये वाकु पता नहीं है के कायसु भूख मिटेगी. जो मिल जा रह्यो है, हाथमें जो चीज आई, वाकु मुंहमें डालके देखे के कोई तरहसु भूख मिटेगी. दरअसल अंगूठासु भूख मिटती होती, तो समस्याके समाधान बड़े सरल होते. हर आदमी अंगूठा चूस-चूसके तृप्त हो जातो पर अंगूठासु भूख मिटे नहीं. अंगूठा तो अपन्ने एक भुलावा खड़ो कियो है अपनी भूख मिटावेके लिये.

(विषयानन्द एक भुलावा)

याई तरहसु जितनो विषय है वाको आनन्द अपनेमें रही भई परमात्माकी भूखकु भूलावेके लिये एक भुलावा है जो अपन्ने खड़ो कियो है. वो अनीश्वरवादीमें भी है और ईश्वरवादीमें भी है. अन्तर सिर्फ इतनो ही है के ईश्वरवादी या हकीकतकु अच्छी तरहसु समझे है, जैसे बड़ो बच्चा हो जाये और बहुत दिन तक अंगूठा चूसे. कई बच्चा बड़े हो जायें तो भी उनकु आदत छूटे नहीं. बहुत बड़े होवेके बाद लोग वा अंगूठा चूसवेकी निन्दा करें तो चुपचाप घरके कोनामें छिपके अंगूठा चूसें. अब बड़े हो गये, अंगूठा चूसवेकी जरूरत नहीं है, ये समझवेकी बात है. मैंने रोटी खाते बच्चान्कु भी अंगूठा चूसते देख्यो है. रोटी खावें और कोई जरूरत नहीं है अंगूठा चूसवेकी पर आदत जो पड़ गई चूसवेकी तो नींद नहीं आवे अंगूठा चूसे बिना. शर्म आती होय तो रजाई ओढ़के चूसे अंगूठा, पर चूस जरूर रहे हैं. या तरहसु भक्त अंगूठा चूसें है. पर ऐसे उनकु रोटी मिल रही है, तब भी उनकी वो अंगूठा चूसवेकी आदत जावे नहीं. भक्त परमात्माको पहचान लेवे है पर विषयके प्रति वाकी आसक्ति छूटे नहीं. जैसे बड़े बच्चाकी अंगूठा चूसवेकी आदत छूटे नहीं. बातमें अन्तर इतनोसो ही है और यासु ज्यादा अन्तर नहीं है. जैसे जैसे बड़ो होयगो, मेच्योर् होयगो, तब धीरे-धीरे एक दिन ऐसो आयेगो के वाकु ये समझमें आयेगी के अब अंगूठा चूसनो बहुत हो गयो, अब छोड़ो. जैसे अठारह, उन्नीस बरस तक बच्चा जब पहुंचे, तब वो चुपचाप चूसवेकी आदत भी छूट जाये. ऐसे

जब एक मेच्योरिटी जा बखत आवे, भक्तिकी मेच्योरिटी, चाहे ज्ञानकी मेच्योरिटी, वा बखत वा विषयासक्तितके अंगूठा चूसनो आदमी छोड़ सके. वा बखतसु पहले छोड़ नहीं सके. अपन् करें जरूर भक्ति, भक्तिसु अपनो पेट भरतो भी जाये है पर वो विषयासक्तिके अंगूठा चूसवेकी आदत जो पड़ गई बचपनसु, वो जावे नहीं. कहें के चोर चोरीसु जाय पर हेराफेरीसु नहीं जाय. चोरपे बहुत नियंत्रण रखो, निगरानी रखो, तो वो माल तो नहीं उठायेगो पर यहांको माल उठाके वहां तो रख ही देगो. क्योंके आदत पड़ गई होवे के कुछ उठानो. वो घरसु उठाके नहीं ले जाये पर या कोनासु उठाके वा कोनामें रख दे. इतनो नहीं करे तो फिर चोरकु चले नहीं. अपच हो जाये पेटमें. ऐसे ही जितनो ईश्वरवादी भक्त है, वो बिचारो क्या करे? आदत जो पड़ गई है, आदत जो पड़ी भई है विषयासक्तिकी, वाको चक्कर चलतो रहे. वा स्थितिमें जा बखत आदत पड़ी भई है, वा स्थितिकु संभालवेके लिये भगवान्ने, कई तरहके उपाय बताये हैं. अभ्यासके, ज्ञानके, ध्यानके, कर्मफल त्यागके, ऐसे कई तरहके उपाय बताये हैं. **''श्रेयो हि ज्ञानम् अभ्यासाद् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् शान्तिः अनन्तरम्''** (गीता.१२।१२). मने या तरहके उपाय बताये. उन उपायन्कु जा बखत अपन् अपनावें, वा बखत कैसी सावधानी रखवेकी जरूतत है, वो सावधानी भी बताई. जैसे बच्चाकी अंगूठा चूसवेकी आदत नहीं छूटती होय, तो क्या करें? होंठ काटवेकी आदत नहीं जाय तो अक्सर मांयें होंठपे कुछ कड़वो तेल वगैरह लगा दें. जब वो कड़वाहट मुंहमें जाये तो वो थू-थू करके आदत छूट जाये बच्चाकी. तो कुछ ऐसी कड़वी बातें लगानी पड़ेंगी विषयन्पे के उन बातन्के कारण विषयासक्तिके होंठ या अंगूठा अपन् छोड़ पावें, या तरहकी बातें प्रभुने बताई हैं जो तेरहवें श्लोकसु लेकर उन्नीसवें श्लोक तक बताई हैं के कैसे-कैसे ढंगसु मनपे काबू पायो जा सके. सीधी निगाहसु देखें तो वाको भक्तिके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है पर भक्तिकी तरफ पहुंचवेकी उपयोगिता वाकी बड़ी भारी है, ये बात मत भूलियो. जैसे के सीधे तरहसु देखें तो वो होंठपे या अंगूठापे कुछ कड़वो तेल लगा दो, तो जासु चूसवेमें मजा नहीं आवे, मजा आनी बंद हो जाये. वाकी पेट भरवेमें कोई उपयोगिता नहीं है, पर एक गलत आदतकु छुड़ावेमें वाकी परम उपयोगिता है. या तरहके तेरहसु लेके उन्नीस तकके श्लोकन्कु, ये शायद पूरो होवे के नहीं होवे, विषय बहुत विस्तीर्ण है. पर मैंने आपकु पूरे अध्यायकी एक समरी बता दी के जा तरहसु कभी आप घरमें पुस्तक लेके बैठो, तो आपकु ख्याल आयेगो के कितने श्लोकमें, कहांसु क्या बतायो गयो है. ये याकी आखी समरी है.

(अव्यक्तोपासना-व्यक्तोपासना)

अव्यक्तोपासनाके बाद व्यक्तोपासनाको निरूपण करते भये, भगवान् बता रहे हैं **''ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते. तेषाम् अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् भवामि न चिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसाम्. मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः''** ये जो तीन श्लोक हैं, उनमें भगवान्ने भक्तियोगको स्वरूप समझायो है. बहुत संक्षिप्तमें समझायो है पर बहुत स्पष्ट समझा दियो है के अव्यक्तोपासनामें तुमकु कुछ करनो पड़ेगो. भक्तिमें तुमकु कुछ करनो नहीं है. सब तुमने मेरेपे छोड़ दियो है तो सब कुछ मैं करूंगो.

कभी आप एअर्पोर्टपे जाओ तो आपकु ये बात दीखेगी. जहां सामान बहुत होवे तो आदमीकु सामान लेवे जानो नहीं पड़े. वहां वो एक कन्वेअर् बेल्ट् लगा देवें. आदमी जहां खड़ो है वहां खड़ो रहे, धीरेसु वाको सामान वाके पास चलके आ जाये. तुम जहां खड़े हो वहां खड़े रहो. वहांसु अपनो सामान उठाके चलते बनो. दौड़ादौड़ी करवेकी वहां जरूरत नहीं है. ऐसे भक्तिमें एक सरलता है. अव्यक्तोपासनामें सारे कदम तुमकु रखने पड़ेंगे. व्यक्तोपासनामें परमात्माकी भक्तिमें अन्तर ये है के तुमकु कुछ करवेकी जरूरत नहीं है. परमात्मा तुमकु तुम्हारी तरफ दौड़के आतो दीखेगो यदि स्नेह है तो.

अब ज्ञान है, ज्ञानके कारण तुमकु वाकी दूरी इतनी दिखलाई देगी के तुमकु निरन्तर वाके पीछे दौड़नो पड़ेगो. स्नेहके कारण तुमकु सामीप्य इतनो प्रतीत होयगो तुमकु वो दौड़के आतो दिखलाई देगो. बात एकही एक है. वो दूर भी है और वो पास भी है. परमात्माके दोनों ही रूप हैं. पर ज्ञानसु, दूरबीन् आपने कभी देखी होय, तो आपकु पता चलेगो के दूरबीन्सु या छोरसु देखो तो दूरकी चीज पास दिखलाई दे. वाकु उलटके दूसरे छोरसु देखो तो वोही पासकी चीज बड़ी दूर दिखलाई दे. वो एक दूरबीन दोनों काम करे. तो ज्ञान और भक्तिमें अन्तर सिर्फ इतनो ही है के ज्ञानके कारण परमात्मा पास होते भये भी दूर दिखाई देगो. क्योंके वो अव्यक्त हो गयो. अपनी आंख अव्यक्तकु ग्रहण नहीं कर सके, केवल व्यक्तकु ही ग्रहण कर सके. अपने कान व्यक्तकु ग्रहण कर सकें. बड़ी गहराई दिखलाई देगी. बहुत

दूर चलवेकी स्थिति, ज्ञानकी प्रतीत होयगी पर भक्तिके कारण परमात्मा निरन्तर पास आतो दिखलाई देगो. स्नेहकी दूरबीन्सु देखो तो पास आतो दिखलाई देगो. अन्तर सिर्फ इतनो है. परमात्मा, अभी तकके वर्णनसु अपन् अच्छी तरहसु या बातकु समझ गये के दूर भी है पास भी है. ऊपर भी है, नीचे भी है, सर्वत्र है. पर दूरबीन्को आपने कैसो उपयोग कियो है और ज्ञानसु क्या स्थिति है, याको विवेचन समझनो जरूरी है.

(ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः)

या लिये कहे हैं **''ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः''** देखो कर्मको त्याग एक चीज है और ''मयि संन्यस्य'' दूसरी. ''मयि संन्यस्य''के दो अर्थ होवें. कर्मको संन्यास नहीं प्रत्युत कर्मको भगवान्के हेतु संन्यास है. अथवा भगवान्में कर्मको संन्यास. अपन् अपने कर्मकु छोड़ें, कहां छोड़ें? भगवान्में छोड़ें, वहां अपन् कर्मकु छोड़ें, कायकु छोड़ें? भगवान्के लिये छोड़ें. दो तरहसु कर्मसंन्यास हो सके है. भगवान्में छोड़े कर्मकु अथवा भगवान्के लिये कर्मकु छोड़ें. दरअसल कर्मकु छोड़नो नहीं है. जो भी कर्म आप कर रहे हो, वो आप करते रहो पर वामें आपकु ये भाव जग्यो के ये कर्म प्रभुके लिये है. जैसे हमारे घरन्में एक नियम रख्यो गयो है. शादीब्याह होय, कोई भी काम होय, **'श्रीगोपीजनवल्लभप्रीत्यर्थम्'**, ऐसे कह्यो जाय. शादी भी होय तो **''श्रीगोपीजनवल्लभप्रीत्यर्थं करिष्ये''**. विवाह कर रहे हैं तो विवाह कायके लिये कर रहे हैं? भगवत्प्रीतिके लिये. जनेऊ कायके लिये कर रहे हैं? भगवत्प्रीतिके लिये. धन्धा कर रहे हैं कायके लिये, भगवत्प्रीतिके लिये. भोजन कर रहे हैं, सो रहे हैं, भगवत्प्रीतिके लिये. जैसे एक मां उठे तो अपने बच्चाकु दूध पिलावेके लिये. सोवे तो बच्चाकु पास सुलावेके लिये. खावे तो बच्चाकु दूध पिलावेके लिये. जैसे मांको सारो कर्म अपने बच्चाके लिये संन्यस्त है, या तरहसु भक्तके सारे कर्म भगवान्के लिये छोड़े जाय हैं. कर्म नहीं छोड़े जायें. कर्म जो कर रहे हो, जब मां नहीं बनी थी तब खा रही थी तो खुदके लिये खा रही थी. पर मां बने सो सावधानी रखनी पड़ेगी के कोई चीज ऐसी नहीं खाई जाये के जाके खावेसु बच्चाकु दूधमें इतनो भारीपन् आवे के बच्चाको पेट बिगड़े. या बातकी सावधानी रखी जाती थी. आजकल नहीं रखें पर शास्त्र और बड़े-बूढ़े समझाते थे के जब बच्चाकु दूध पिलानो है तो कैसी खुराक खानी चइये. ऐसी-वेसी खुराक खायेंगे तो बच्चाकु दूध भारी हो जायेगो. वो खाती थी पहले भी खाती थी, बादमें

भी खा रही है. जब पहले खा रही थी तब खुदके खावेके लिये खा रही थी पर बादमें जब खा रही है, तब बच्चाकु दूध पिलावेके लिये खा रही है. पहले भी वो जगती थी पर खुदके लिये जगती थी. बादमें भी जग रही है पर बच्चाकु जगावेके लिये जग रही है. पहले भी सोती थी, खुदके लिये सोती थी और बादमें जब सो रही है तो बच्चाकु अपने सुलावेके लिये सो रही है. तो कर्मसंन्यास, भगवान्के लिये कर्मको संन्यास नहीं है पर भगवद्हेतुसु कर्मसंन्यास है. मने तुम भोजन करो घरमें, तुम रसोई बनाओ घरमें, वामें कोई बुरी बात नहीं है पर प्रभुकु भोग धरवेके लिये रसोई बनाओ. तो वो रसाई बनावेको कर्म ही ''मयि संन्यस्य'' हो गयो. धन्धा करो वामें कोई बुरी बात नहीं है पर वो ही धन्धा ऐसे सोचो के मोकु भगवत्कार्य करनो है. वो जो तुमने एक शुभसंकल्प स्थापित कियो, तो वो ही धन्धा भक्तिको एक अंग बन जायेगो. वो ही ब्याह भक्तिको अंग बन गयो. मने महाप्रभु या बातकु बहुत सुन्दर कहें हैं के सर्व इन्द्रियन्के व्यापारन्कु भगवान्की तरफ मोड़ दो. देखनो कोई बुरी बात नहीं है. भगवान्के दर्शन करो. गावेकी इच्छा कोई बुरी बात नहीं है. भगवल्लीलाको संगीत सुनो. मने जब इन्द्रियन्के व्यापारन्कु अपन्ने परमात्माके तरफ मोड़ दिये, तो वो ही कर्म जो कर रहे हैं ''मयि संन्यस्य'' हो जायेंगे. भगवान्के निमित्त अपन्ने वो कर्म छोड़ दिये हैं. अब अपन् अपने लिये नहीं कर रहे हैं. जो कुछ कर्म कर रहे हैं प्रभुके लिये कर रहे हैं. ये भाव जग्यो नहीं के भक्तिको स्वरूप खड़ो हो जायेगो. जा बखत कर्म अपन्ने अपने लिये कियो, वाई बखत भक्तिको विरोधी भाव प्रकट हो जाये है.

(अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते)

ये कर्मको पहलु बतायो. वाके बाद देहकी क्रिया. जैसे देहकी इन्द्रियन्की क्रियान्को संन्यास बतायो. ऐसे ही मनकी वा बखत क्या स्थिति होनी चइये? **''अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते''**. जैसे बहुत प्रसिद्ध उदाहरण दियो जाय है जल भरवेवालीन्को. वो जल भरवे जावें, वो बातें भी करती होवें, वो चलती भी होवें, गप्प भी लगाती होवें पर ध्यान उनको वो घड़ापेसु छूटे नहीं. वो अनन्ययोगसु उपासना. काम सब कुछ कियो जा सके है पर ध्यानमें प्रभु रहनो चइये. ये अनन्ययोगसु भगवान्में ध्यान बन्यो रह्यो तो भक्ति बन जायेगी और जब भक्ति बनी तो फिर तुमकु कुछ करवेकी जरूरत नहीं पड़ेगी. भगवान् कह रहे हैं के तुम निश्चिंत रहो,

तुमकु कुछ करवेकी जरूरत नहीं पड़ेगी. भगवान् मेरो उद्धार करेगो, मेरेकु मेरे उद्धार करवेकी क्या जरूरत है?

अरे तुम क्या पूछ रहे हो? अर्जुनने ये प्रश्न कियो थो **''तेषां के योगवित्तमा एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते. ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः''** दोनोंमेंसु योगवित्तम कौंन है? यदि उद्धारकी चिंता कर रहे हो, तो ये बात समझो. यदि ज्ञानयोगसु तुमकु उद्धार करनो है, तो वहां स्पष्ट निर्देश दे दियो गयो है **''उद्धरेद् आत्मना आत्मानं न आत्मानम् अवसादयेत्.''** ज्ञानयोगमें तुमकु अपने-आप मने आत्मासु आत्माको उद्धार करनो है. ये भवसागरकु तैरनो है. वो या लिये के दोनों भगवान्के चरण हैं. आत्मा भी भगवान्को एक चरण है. तुम्हारे अन्दर रह्यो भयो स्नेह, भक्ति भी भगवान्के चरण हैं. या लिये ही **''चरणं पवित्रं वित्ततं पुराणं येन पूतः तरति दुष्कृतानि तेन पूतेन पवित्रेण पूता अति पाप्मानम् अरातिं तरेमः''** (महानारायणोपनिषद्). ऐसे उपनिषद्में कह्यो है. ये भक्ति भी भगवान्को चरण है. जब तक भगवान् अपनो चरण हृदयमें स्थापित नहीं करें तब तक भक्ति प्रकट हो ही नहीं सके. स्नेह तो रह सके परमात्माके प्रति पर भक्ति नहीं हो सके. भक्तिको मतलब क्या? वाको पहचानके वाकु चाहनो. स्नेहको मतलब है के बिन पहचाने अपन् वाकु चाह रहे हैं. हम पहचान नहीं रहे हैं, हम जान नहीं रहे हैं, हमकु क्या चीज चइये? भूख लगी है पर भूख मिटेगी कैसे, ये जान नहीं रहे हैं. भक्तिको मतलब है ये पहचान लेनो के भूख यासु मिटेगी और वाकु चाहनो. इतनो अन्तर है. भक्ति जा बखत अपने हृदयमें प्रकट हो गई, तो भगवान्को चरण अपने हृदयमें स्थापित भयो है. अब वो स्थापित कितनी दृढ़तासु भयो है? या बातके अलग अलग स्वरूप हो सके हैं. कोईके हृदयमें अस्थिर स्थापित होवे है, कोईके हृदयमें स्थिर स्थापित होवे है. वाके हिसाबसु थोड़ो फर्क पड़ सके है पर जाके भी हृदयमें भक्ति प्रकट भई है, वो परमात्माके चरण स्थापनके बिना प्रकट नहीं हो सके. जितनी भक्ति है उतनो परमात्माको चरण हृदयमें उतनी स्थिरतासु स्थापित है. याई लिये कहें हैं **''तेषाम् अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागराद् भवामि नचिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसाम्''** मने उनकु उद्धारकी चिन्ता नहीं है. क्यों उद्धारकी चिन्ता नहीं करनी चइये? क्योंके भगवान्को चरण हृदयमें स्थापित भयो. याई लिये अपने यहां श्रीनाथजीके स्वरूपमें ध्यानसु देखो तो एक बात बताई जाये है. श्रीनाथजीको दक्षिणचरण मुक्तिरूप मान्यो गयो है और वामचरण भक्तिरूप मान्यो गयो है. मुक्ति

और भक्ति के दो चरणन्सु श्रीनाथजी ठाड़े हैं. याई लिये मोरकु मुक्तजीव मान्यो गयो है जो श्रीनाथजीके दक्षिण चरणकु निहार रह्यो है. गायकु भक्त मान्यो गयो है जो भगवान्के वामचरणकु निहारे है. ऐसे श्रीनाथजीकी पीठिकामें मोर और गाय, कभी ध्यानसु देखियो चित्रन्में आवे है. एक मोर होवे है और एक गाय होवे है. गाय अपने यहां भक्ति है परमात्माके प्रति रही भई. परमात्माके चरणमें रही भई मुक्तिकु मोर निहार रह्यो है. याके लिये ज्ञानी और भक्त या तरहके दो चरण हैं. इन दोनों चरणन्पे परमात्मा खड़ो भयो है मुक्ति और भक्ति के. भक्त याई लिये भक्तिवाले चरणकु निहारे. ज्ञानी मुक्तिवाले चरणकु निहार रह्यो है. दोनों चरण परमात्माके हैं मगर एक चरण पास लगे है और दूसरो चरण थोड़ोसो दूर लगे है, अन्तर क्या है? क्योंके मुक्तिवाले चरणमें अव्यक्तता रही भई है. भक्तिवाले चरणमें व्यक्तता आ गई है. अन्तर इतनो ही है. बाकी दोनों चरण परमात्माके हैं. याके लिये कहें हैं **''तेषाम् अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागराद् भवामि नचिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसाम्''** उनकु ये नहीं लगेगो के दूरकी साधना करनी पड़ेगी, ये करनो पड़ेगो. क्यों? उनके लिये न तो कोई भवको प्रश्न रह जाये है, क्योंके तैरनो होय तो हिलोरें अपनेकु डुबा सकें हैं. जब अपन् नावमें, बड़ी बोट्में बैठे हैं, तो हिलोर क्या कर सके अपनो? ऐसी एक आश्वस्तता अपने मनमें आ जाये के भगवच्चरणारविन्दपोतमें अपन् बैठ गये तो **''तेषाम् अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्. भवामि नचिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसाम्''** याके लिये भगवान् कहे हैं **''मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय.''** मनको आधान यदि तोकु करनो है, तो कहां करेगो? तो भगवान्ने वाको खुलासा दियो के मनको आधान मेरेमें कर. बुद्धिकु यदि कहीं लगानी है, प्रवेश करानो है, तो मेरे साकार रूपमें करा. सारी बात सुलभ हो जायेगी. तेरेकु लगेगो के परमात्मा तेरे पास है. यदि निराकारमें करेगो तो बुद्धिको पहुंच पानो ही वहां बड़ो कठिन है. बड़े-बड़े कठिन स्टेपस् हैं. बुद्धि वहां पहुंच नहीं पायेगी.

(अभ्यासयोग)

पर एक बात ये है के या तरहको भक्तिको भाव हृदयमें प्रकट नहीं हो सके. याके लिये भगवान् कह रहे हैं **''अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्''** यदि चित्तकु मेरेमें समाहित करवेमें समर्थ नहीं है तो **''अभ्यासयोगेन ततो माम् इच्छ आप्तुं धनञ्जय''** तो फिर अभी बाट देख. अभी तेरी विवाहकी तैयारी नहीं

है. अभी थोड़े दिन मेरे साथ सगाई रख. सगाई कैसे रखवेकी? **''अभ्यासयोगेन ततो माम् इच्छ आप्तुं धनञ्जय''** अभ्यासयोगसु मेरेकु पावेकी इच्छा कर. अभी तू भक्ति शुरु मत कर. देखो थोड़ीसी बात या लिये मैंने पहले बताई थी के इच्छा करके तो वासु स्नेह होतो हो, तो वो स्नेह नहीं कहवायेगो. पर यहां मूलतः प्रभु जो बात कह रहे हैं वो यों नहीं कह रहे हैं के इच्छा करवेसु स्नेह पैदा होयगो. भगवान् जो बात समझानो चाह रहे हैं, वो ये बात हैं के जैसे तू सगाई कायम रखेगो मेरे साथ, तो जितनो भी स्नेह है, वो प्रकट होयगो. लौकिक कोई भी विषयमें स्नेह प्रकट होवे है, वो भी सगाईके कारण प्रकट होवे है. जैसे संस्कृतमें कह्यो जाय है **''सख्यं साप्तपदीनम् उच्यते''** सात कदम साथ चलें तो स्नेह हो जाये.

हम बनारसमें रहे धर्मशालामें. जा धर्मशालामें रहे वो धर्मशाला हमारी नहीं. वो धर्मशालाके रूम हमारे नहीं. पर दो बरस रहके वहां पढ़े. अभी भी वहां जावें तो यों लगे के ये रूम हमारो है.

अरे धर्मशालाको रूम मेरो कायको? पर दो बरस रहे ना तो इतनी सख्यता वामें आई. इतनी सख्यता वामें आई के जब भी वहां जावें तो मनमें ये भाव आवे और जो भी साथ होवे तो वाकु बतावें के देखो ये हमारो रूम हतो धर्मशालामें. इतनी ममता तो पैदा होवे ही है. क्योंके मनको ये स्वभाव है. **''संगात् संजायते कामः''** (भग.गीता.२।६२) संगसु काम पैदा होवे है. फिर थोड़ो संग रख. भगवान्को संग रख. भगवान्को संग कैसे रहेगो? भगवत्कथासु, नवविधा भक्तिसु. **''श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम्''** (भाग. पुरा.७।५।२३). जा तरहसु तू भगवान्को संग रख सकतो होय उतनो संग रख. वो संग ही धीरे-धीरे परमात्माके प्रति रह्यो भयो स्नेहकु प्रकट होवेको अवसर दे देगो.

(भक्तिकी जड़न्को सिंचन)

जैसे हमारे यहां पिछवाड़ेमें एक तुलसीजी हैं. वो प्रायः सूखी रहें. कोई उनकु जल पिवावे ही नहीं. पर जब भी उनकु जल डालें हम आवें तब, दस-पन्द्रह दिन जल डालें तो वो खिलवे लग जाये. कैसे खिल जाये? क्योंके अन्दर उनकी जड़

है. जड़ हैं पत्तायें क्यों नहीं निकले उनमेंसु? या लिये नहीं निकलें के संगको जलको सिंचन उनमें नहीं हो रह्यो है. संगको सिंचन भयो नहीं और वो खिलवे लग जायें पत्ता. ऐसे ही परमात्माके संगको सिंचन होवे, तो अपने आप भक्तिरूपी अंकुरण वामें स्पष्ट हो जायेगो. हृदयमें जड़ तो है ही भक्तिकी. मैंने आपकु बतायो के कोई व्यक्ति नहीं है, जाके हृदयमें परमात्माके प्रति प्रेम नहीं होय. हर व्यक्तिमें परमात्माके प्रति प्रेम है पर अन्य-अन्य आवरणन्सु वो खिल नहीं पा रह्यो है. नहीं खिल पा रह्यो है तो थोड़ोसो सिंचन वाको शुरु हो जाये तो अपने आप खिलनो शुरु हो जाये. या तरहसु हर व्यक्तिके हृदयमें परमात्माके प्रति रहे भये स्नेहको थोड़ो थोड़ो परमात्माको संग जा तरहसु आप स्थापित कर सकते हो, जा प्रक्रियासु आप कर सकते हो, जा बातके अभ्याससु श्रवणके अभ्याससु कर सकते हो तो करो. अभ्यास माने क्या? घड़ी-घड़ी वाको आवर्तन. जो अभ्यास आपकु ठीक पड़े, वो या लिये नहीं के अभ्यास कायको करनो, जो अभ्यास आपकु लगतो होय के ये अभ्यास करवेसु मनमें परमात्माके प्रति सगाईको भाव पैदा होवे, स्थिर होवे है. जा अभ्यासकु करवेसु परमात्माको सामीप्य अनुभव होवे वा अभ्यासकु करो. **अभ्यासयोगेन ततो** इच्छा अपने आप होवे लग जायेगी. जैसे दो बरस धर्मशालामें रहे, तो अपने आप इच्छा होवे के ये हमारो रूम है. ऐसे थोड़ोसो अभ्यास आपने शुरु कियो तो इच्छा आपके हृदयमें है. जैसे अग्निके अंगार राखमें ढ़क जायें, वाको मतलब ये नहीं है के वो बुझ गयो हैं, वो हैं अन्दर ढ़क गये, ऐसे परमात्माकु पावेकी इच्छा अपने हृदयमें रही भई है. थोड़ी राख हटानी पड़ेगी हवा मारके, फूंक मारके तो वो अंगार अपने आप प्रज्वलित हो जायेंगे. वो जड़े कायम हैं अभी भी अपने हृदयमें. बस थोड़ोसो सिंचन करनो पड़ेगो अभ्यासको. श्रवणको होय कीर्तनको होय, स्मरणको होय, अर्चनको होय, वंदनको होय, सख्यको होय, दास्यको होय या आत्मनिवेदनको होय. जा तरहसु आप वाको सामीप्य अनुभव कर सकते होओ, आपके हृदयमें जाको बीजभाव होय. भक्ति अन्तमें क्या है? परमात्माके प्रति हृदयमें रह्यो भयो स्नेह और वो प्रत्येकमें है. वाकु प्रकट करनो है. कायसु प्रकट करेंगे? जो मैंने कल आपकु बतायो के कुछ लोग कामनाके कारण प्रकट करें, भई हमारी ये कामनापूर्ति हो जायेगी तो ऐसे करेंगे कामनाके कारण जो प्रकट करवे जायेंगे तो कामनापूर्त होते ही पाछी वो भाग जायेगी. आग तो जल रही है. वामें सूक्ष्म अन्तर इतनो ही है के जब आप कामनासु भक्ति करवे जाओगे तो जितने दिन कामना रहेगी, उतने दिनतो वो भक्ति रही. कामना पूरी भई नहीं के गरज सरी और वैद्य बैरी. ये स्थिति हो जायेगी. कामनासु वाको पल्लवित करवेको प्रयास मत

करो. सकाम बनावेको प्रयास मत करो. यदि कोई वाको प्रयास करनो है तो उपाय तो ये ही है के या तो माहात्म्यज्ञानसु अच्छी तरहसु परमात्माकी महानताकु समझो और कोई हेतुसु वाकु प्रकट करवेको प्रयास मत करो. कामनापूर्तिके लिये भक्तिकु प्रकट मत करो. मने न तो आर्त अर्थार्थी या जिज्ञासु बनके, न तो मुक्तिके लिये प्रकट करो, न अर्थार्थिताके लिये करो, न कामनापूर्तिके लिये करो. प्रकट करनी होय तो **''तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिः विशिष्यते''** ज्ञानके कारण प्रकट करो, ज्ञानके कारण प्रकट नहीं होती होय, क्योंके ज्ञान भी तो हर व्यक्तिमें प्रकट नहीं हो सके है. भगवान् या बातकु समझा रहे हैं तो कोई बात नहीं. चलो अभ्याससु करो. ये तो धनंजयकु परमानन्द श्रीकृष्णने दियो गीतोक्त उपदेश है. आधुनिक युगमें तो हम गुसाई खुद धनजित धनार्त धनार्थी धनैकचित्त हो जावेके कारण पुष्टिभक्ति भी भगवत्सेवामें कुनबारा-छप्पनभोग आदिके आर्थिक उपार्जनकी वानरोचित मनोवृत्तिसु करवे लगे हैं और भागवतकथा भी ऐसी रुपया बटोरवेकी नौटंकी दिखावेके करवे लगे हैं **''डूबे वंश कबीरका के उपजे पूत कमाल''**

(अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्)

अभ्यास करोगे तो धीरे-धीरे संग बनेगो तो स्नेहकी जो आग हृदयमें रही है, वो **''अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् अभ्यासयोगेन ततो माम् इच्छ आप्तुं धनञ्जय''** पर जा बखत तुम अभ्यास कर रहे हो भक्तिकु जगावेको, वा बखतको तथ्य प्रभु बता रहे हैं तेरहवें और चोदहवें श्लोकमें

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुणएव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।
सन्तुष्ट सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मयि अर्पितमनोबुद्धिः यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।

जा बखत तुम ऐसो अभ्यास कर रहे हो, वा बखत तुम परमात्माके साथ भक्तिको अभ्यास कर रहे हो और जगत्के साथ या तुम्हारेसु अधिक उत्कर्ष प्राप्त करवेवालेके साथ द्वेष करोगे तो तुम कहीं न कहीं भटक गये. तुम भक्तिके नामपे अपनी द्वेषकी वृत्ति बढ़ा लोगे. अक्सर आदमी ये ही करे के अपन् जा स्वरूपको अभ्यास कर रहे हैं प्रेमको, वाको तो अभ्यास करें नहीं और दूसरे स्वरूपन्के साथ द्वेषको ज्यादा

अभ्यास कर लें. चक्कर वहां आके पड़ जाये है भक्तिको. अपन् अगर साकारवादी हैं तो अपनेकु निराकारवादीके खण्डनमें मजा आवे लग जाये. निराकारवादी होंय तो उनकु साकारवादीके खंडन्में ज्यादा मजा आवे लग जाये. विष्णुके भक्त हैं उनकु शिवके चरण खींचवेमें ज्यादा मजा आवे है. शिवके भक्त हैं उनकु विष्णुके चरण खींचवेमें ज्यादा मजा आवे है. अरे भक्तिकी दिशा वो नहीं है. दिशा भक्तिकी ये है के जो तुम कर रहे हो वा तरफ आगे बढ़ो. जो तुम नहीं कर रहे हो, वाकी चिन्ता छोड़ दो. जब तुम या तरहकी एकाग्रता लाओगे तो विरोधी चित्तकी वृत्ति, या भक्तिके लिये आवश्यक नहीं है. झगड़वेके लिये आवश्यक है. करनो होय तो करो झगड़ा आनन्दसु, पर ये झगड़वेकी वृत्ति भक्तिमें आवश्यक नहीं है. या लिये भगवान् कहे रहे हैं **''अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्''** मने प्रत्येक भूतमात्र वस्तुमात्रके लिये तुमकु अद्वेष्टा होनो पड़ेगो. क्योंके भक्तिकु खिलवेके लिये, अभ्यासयोगसु जा बखत भक्तिके भावकु प्रकट करनो है, वा बखत गामके साथ द्वेष करके तुम सोचो के हम भक्तिको भाव प्रकट करेंगे तो वो हो नहीं सकेगो.

इलस्ट्रेटेड् वीकलीके एक सम्पादक सरदारजी हते खुशवंतसिह. उनने एक बहुत सुन्दर इन्टरव्यू प्रकट कियो. पता नहीं मैं नाम भूल गयो. वो एक स्वामीजीके पास मिलवे गये. स्वामीजी कहें के हमारो धर्म विश्वधर्म है. सरदारजीने पूछी दूसरे सम्प्रदायकी बात. तो उनने कही ''वो अज्ञानीन्को सम्प्रदाय है. हमारो विश्वधर्म है'' सरदारजीने तीसरे सम्प्रदायकी बात करी. उनने कही ''वो शैतानन्को धर्म है, वाकी बात छोड़ो. हमारो विश्वधर्म है'' सब धर्म शैतानके, सब धर्म अज्ञानीन्के, सब धर्म पाखण्डीन्के, एक तुम्हारो धर्म विश्वधर्म है कैसो विश्वधर्म है भाई वो द्वेष जावे नहीं. अपने धर्मको पालन होवे के नहीं होवे, प्रश्न या बातको नहीं है. मूलमें जो द्वेषकी वृत्ति हती वो गाममें चलती थी आपसमें. एक दुकानदारकु दूसरे दुकानदारसु द्वेष है. एक विद्यार्थीकु दूसरे विद्यार्थीसु द्वेष है. एक अध्यापककु दूसरे अध्यापकसु द्वेष है. अपनी वा वृत्तिपे तो काबू पायो नहीं और अपन्ने भक्तिको टीका लगा लियो. अपन् दूसरे भक्तिसम्प्रदायसु द्वेष करवे लग गये और वाकु अपन् 'भक्ति' कहवे लगे हैं पर अपन्ने सिर्फ द्वेष बढ़ायो है, भक्ति नहीं बढ़ायी. जरूरत भक्तियोगमें भक्ति बढ़ावेकी है, जरूरत भक्तियोगमें द्वेष बढ़ावेकी नहीं है. तुम भक्ति कर रहे हो बहुत अच्छी बात है. वो भक्ति ही करो और बाकी चिन्ता छोड़ दो. यदि वो शैतानको है तो संभालवेवालो भगवान् है. यदि वो अज्ञानजन्य है तो सम्भालवेवालो वाको भगवान् है. आदमी

एक बात जब छोड़े तब दूसरी बात पकड़े वो द्वेष दुकानदारीको नहीं करके या बातको बढ़ा ले है. पर बात वहींकी वहीं कायम रही. भक्तियोगमें आगे नहीं बढ़ सके.

(मैत्रः करुण एव च)

भगवान् या लिये कहें हैं **''अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुणएव च''** खाली अद्वेष्टा कह्यो होतो तो आदमी बहुत चालाक है और भगवान् भी खूब चालाक हैं. वो कहे ''हम अद्वेष्टा हो गये''. कोई खड्डामें पड़ रह्यो है तो पड़वे दो. भगवान् कह रहे हैं के खड्डामें पड़ रह्यो है तो पड़वे दो नहीं, **मैत्रः** तुम अपने मित्रकु खड्डामें पड़वे दोगे? नहीं पड़वे दोगे. हर व्यक्तिसु मैत्री रखो और वो मैत्री ऐसी मैत्री नहीं के कोईके साथ केवल अद्वेषभाव रखके. अद्वेष्टा होनो ही सिर्फ पर्याप्त नहीं है. अपने समान जाको उत्कर्ष दीखतो होय वाके प्रति मैत्रीको भाव निभानो भी मनकु भगवद्भक्तिके लायक बनानो होय तो आवश्यक है. यासु मित्र भी होनो चइये. मित्रताको भाव भी होनो चइये. परन्तु जो अपने समान उत्कर्ष साध नहीं पाये होय उनके प्रति करुणाको भाव भी मनकु भगवद्भक्तिके लायक बनानो होय तो आवश्यक है **करुणएव च**. जो तुमकु खुदसु नीचेकी कक्षाके लगते होंय, उनके प्रति करुणाको भाव रखो.

(निर्ममो निरंहकारः...)

मैत्री और करुणा भक्तिके मार्गमें अचानक आ जानेवाले गड्ढा बन जाते होवे हैं यासु अपने मित्रताके अथवा करुणाके पात्रन्के प्रति अपनी ममता बढ़ जाती होवे है. कई लोग क्या करें? हमारे बम्बईमें व्यक्ति है. उनकु एक दिन भाव जग्यो के संगीतकी सेवा करनी चाहिये. संगीतकी सेवा करनी तो उनने क्या कियो के एक संस्था बनाई. वाको नारा रख्यो ''जय संगीत जय कलाकार''. खुदकी सही भी 'संगीतदास' करवे लगे. अब सभी कलाकार उनकी चापलूसी करके उनको माथा खावे आ जाते सो कंटालके सब कलाकारनकु अपनी ऑफिसके बाहर कुत्ताकी तरह बैठावें. एक बार मैंने पूछी के सबकु ऐसे क्यों बैठावो हो? तो बोले ''सब कलाकार कुत्ता होवें''. तो मैंने मनमें सोच्यो के ''संगीतदास होके आप ऐसी बात कहो तो वो कलाकार तो कुत्ता सिद्ध हो गये पर आप उनके क्या''

आदमी क्या करे, सेवा करे, मैत्री रखे. सचमुचमें वो दिलसु चाहते थे के कलाकारन्को उत्कर्ष होवे, पर बिचारो कलाकार क्यूमें आके बैठ्यो नहीं, वाको दिमाग फिर जातो के ''कुत्तोंकी तरह आके बैठ जाते हैं यहांपे''. तो वो करुणा और मैत्री सिर्फ पर्याप्त नहीं है. निर्ममो निरंहकारो कोई सेवा तो करे है पर सेवा करवेमें पनपतो अहंकार भक्तियोगकु पनपवे नहीं देवे. मैत्रीपूर्ण सेवा करो ये ठीक बात है पर **निर्मम** होके. न तो सेवाके ब्याजसु उनमें इतनी ममता बढ़ावो के कभी निराश होनो पड़े और न अहंकार इतनो बढ़ावो के तुम कोईकी करुणापूर्ण सेवा-सहायता नहीं करोगे तो वो रखड़ जायेगो या तरहके जा बखत मैत्रीभाव रख पाते होव तो मन भगवान्की भक्तिके लायक बनेगो. यासु परिवारेतर लोगन्की मैत्रीभावसु सेवा करवेमें ममतारहित होनो जरूरी है. जा बखत तुम परिवारेतर लोगन्पे करुणा कर रहे हो, वामें अहंता मत लाइयो के मैं इनपे करुणा कर रह्यो हूं नहिं तो कौंन जाने इनकी क्या गति होती. अपने परिवारके मातापिता-संतती आदिकी करुणापूर्ण सेवामें नहीं आवे पर अन्यकी सेवा करें तो ऐसे अहंकारको भाव सहज ही जग जावे के मैं इनको उत्कर्ष कर रह्यो हूं. यासु मैत्रीमें निर्ममता होनी चइये तो करुणामें निरहंकारिता.

''निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी'' या स्थितिमें ये बात सच्ची है के कभी सुखकी अनुभूति होयगी तो कभी असह्य दुःखकी भी अनुभूति होयगी. पर यामें तुमकु समदुःखसुखताको भाव लानो पड़ेगो. क्षमाको भाव लानो पड़ेगो. मने सुख दुःखकु सहन करवेकी शक्ति लानी पड़ेगी. ये शक्ति जब आयेगी तब **''सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः''** हौगे. या तरहसु जब तुम सन्तुष्ट होओगे अपने आपमें, तब ये सारे चक्कर शुरु नहीं होवें.

आदमीमें सन्तोषको भाव नहीं जग्यो **''सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः मयि अर्पितमनोबुद्धिः यो मद्भक्तः स मे प्रियः..''** ये सारो भाव रखते भये अपने मन और बुद्धि जा बखत तुम भगवान्कु अर्पित कर पावोगे तो भगवान् कह रहे हैं **''यो मद्भक्तः स मे प्रियः''**.

ऐसे तुमने यदि अभ्यासयोग कियो तो वो मोकु प्रिय अभ्यासयोग होयगो. यदि या तरहको अभ्यासयोग नहीं कियो और अगड़म्-बगड़म् अभ्यास कियो तो फिर वो मेरी प्रियताको हेतु नहीं होयगो.

(अभ्यासेऽपि असमर्थोऽसि...)

अभ्यासयोगके अलावा एक दूसरो और उपाय बता रहे हैं. अब भगवान् कहें हैं **''श्रेयो हि ज्ञानम् अभ्यासात् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते''** अभ्यासके बजाय ज्ञानको उपाय ऊंचो है. केवल अभ्याससु भक्तिकु प्रकट करनो, याके बजाय ज्ञानसु भक्तिकु प्रकट करनो. ये बहेतर तरीका है. **''श्रेयो हि ज्ञानम् अभ्यासाद् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् शान्तिः अनन्तरम्''** तो पहले तो अभ्यास बतायो वासु श्रेष्ठ समझकु बतायी वासु भी श्रेष्ठ कर्मन्के फलके त्यागकु मान्यो. क्यों के अपन् कुछ भी काम करें वाके फलकी आशा अपनी मनोवृत्तिन्कु प्रदूषित कर देती होय. **''अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् अभ्यासयोगेन ततो माम् इच्छ आप्तुं धनञ्जय''** वाके बाद फिर कह रहे हैं **''अभ्यासेऽपि असमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिम् अवाप्स्यसि''** पर अभ्यासयोग भी बड़ो कठिन है. इतनी बात कठिन बता के भगवान् कह रहे है कोई बात नहीं. अभ्यासमें भी तुमकु यदि असामर्थ्य लगतो होय तो **''मत्कर्मपरमो भव''** गामकी चिन्ता छोड़, खाली मेरी चिन्ता कर. मेरी चिन्ता करनी शुरु करेगो, तब तू आगे बढ़ सकेगो. तेरे कर्मको रूप कैसो होनो चइये के मैं जो कर्म करूंगो भगवदर्थ करूंगो, स्वार्थ नहीं. निरर्थक कर्मकु छोडूंगो नहीं, स्वार्थके लिये कर्म नहीं करूंगो. जो कर्म करूंगो भगवदर्थ करूंगो. अभ्यासमें यदि समर्थ नहीं है तो या तरीकेको एक भाव मनमें दृढ़ बना. **''अथ एतदपि अशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगम् आश्रितः सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्''** तो फिर जो भी कर्म कर रह्यो है, ठीक है करतो रह पर उनके फलकी चिन्ता कमसु कम छोड़ दे. जो मिले सो ठीक और जो न मिले सो भी ठीक. ऐसी एक ज़िन्दादिलीकी मस्ती ला अपने अन्दर. वो ज़िन्दादिलीकी मस्ती भी तोकु भक्तिकी और ले जायेगी. मने कामतो सब कुछ कर रहें हैं पर उनके फलकी चिन्ता नहीं कर रहें हैं. काम जो कर रहे हैं सो चलवे दो पर फलके लिये मनकु उद्विग्न मत बना. हर कर्मकु करते भये आदमी, धन्धा कर रह्यो है तो धन्धा कर, कोई बात नहीं, चले तो ठीक और नहीं चले तो ठीक. पढ़ रह्यो है कोई बुरी बात नहीं है, पास भयो तो ठीक नहीं पास भयो तो भी ठीक. या तरहकी एक मस्तीकु मनमें पैदा कर. वो धीरे-धीरे तेरेकु विषयसु अपने आप विमुख करेगी. विषयसु विमुख करके अपने आप तेरे हृदयमें रहे भये भक्तिके बीजन्कु फूटवेको अवसर देगी. ये मस्ती आई तो वोई भक्तिको द्वार बन जायेगी. वाके लिये कह रहे हैं **''सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्. श्रेयोहि ज्ञानम् अभ्यासात्''** क्योंके अभ्यासके बजाय ज्ञान श्रेय है. केवल ज्ञान करे तो

वो भी पर्याप्त नहीं है क्योंके ज्ञानसु आदमी समझ तो जाये, पर ज्ञानके बजाय यदि तू ध्यान लगा सके हर बखत, परमात्माको ध्यान करके मैं ये मस्ती ला रह्यो हूं तो वो और अच्छी बात है.

''श्रेयो हि ज्ञानम् अभ्यासाद् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् शान्तिः अनन्तरम्.'' यदि ध्यान नहीं कर पातो होय तो कर्मफलत्याग कर. ये कर्मफलत्याग करेगो तो अपने आप तेरे मनमें एक ऐसी शान्ति पैदा होयगी, जा शान्तिके कारण तेरेकु भक्तिके मार्गपे अग्रसर होवेको अवकाश मिलेगो. या तरहसु प्रभुने भक्तियोगको निरूपण कियो. ये आगेके सारे जो श्लोक हैं वो याई लाईन्के इन्स्ट्रक्शन्स् हैं. **''यस्मात् न उद्विजते लोको लोकाद् न उद्विजते च यः हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तो यः स च मे प्रियः.''** ये अभ्यासके बाद ज्ञानको है. वाके बाद **''अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनो गतव्यथः सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः''** ये ध्यानको है. **''यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः. तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्''** ये सारे श्लोक कर्मफलत्यागके हैं.

(ये यथोक्तं पर्युपासते...ते अतीव मे प्रियाः)

या तरहसु :

अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियो नरः।
ये तु धर्म्यामृतम् इदम् यथोक्तं पर्युपासते।।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः।।२०।।

ये जो धर्म्य और अमृत, दोनों बात प्रभुने बताई हैं, ये आचरणीय भी हैं. धर्म्यको मतलब क्या? जो आचरणीय होंय अपनी कृतिके विचारसु, शास्त्रके निर्णयके हिसाबसु, अपने हितके हिसाबसु, थोड़ो भी कर पाये, तो फिर चिन्ताकी कोई बात नहीं है. निश्चित समझो के इतनो भगवान्को चरण अपने हृदयमें स्थापित भयो ही है. श्रद्धापूर्वक जो भक्तिके मार्गपे आगे बढ़े है, **''श्रद्दधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः''** मने बहुत सुन्दर वेदान्तदेशिक एक बात कहे हैं. भक्ति अपन् भगवान्की कृपासु कर पावें हैं, वामें भगवान्कु क्या मजा आती होयगी? भक्ति जब अपन् अपनी सामर्थ्यसु नहीं कर पावें, ज्ञान तो अपन् अपनी सामर्थ्यसु करें, भक्ति तो भगवान्की

दी भई सामर्थ्यसु होवे है. वामें भगवान्कु क्या आनन्द आतो होयगो? वेदान्तदेशिक बहुत सुन्दर बात कहे हैं के तोता-मैनाकु अपन् खुद सिखावें. वो जा बखत बोलवे लग जाये, तब वाकु सिखावेवालेकु कितनो आनन्द आवे.

''स्तोत्रं मया विरचितं त्वदधीनवाचा त्वत्प्रीतये वरद यत् तदिदं न चित्रम् आर्वजयन्ति हृदयं खलु शिक्षकानाम् मंजूनि पञ्जरशकुन्तविजल्पितानि.''

वो कहे है के ये जो मैंने तेरो भक्तिको स्तोत्र कियो है, तेरो सिखायो भयो, जैसे तैंने प्रेरणा दी, वा तरहसु मैंने स्तोत्र कियो. यामें तोकु क्या मजा आतो होयगो? तो वो कहे हैं के इतनो ही मजा आवे, जैसे कोई तोता-मैनाकु अपन् सिखावें बोलो बेटा 'राम'. बोलो मिट्ठू 'राम' और वो जा बखत बेटा 'राम' बोल दे. बस सुनवेवालेकु आनन्द आ जाये. **''ये तु धर्म्यामृतम् इदं यथोक्तं पर्युपासते श्रद्दधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः''** श्रद्धा भगवान्की दी भई सौगात है. वा सौगातके कारण जामें भक्ति प्रकट हो रही है, वो भगवान्की दी भई भक्ति ही अपने हृदयमें प्रकट हो सके है. मानवहृदयकी शक्ति नहीं है के भक्तिकु प्रकट कर सके. वा भक्तिसु परमात्मा उतनो ही प्रसन्न है, जितनो एक तोताकु सिखावेवालो, जा बखत तोता बोलवे लग जाये प्रसन्न होवे है. जो कुछ भक्तियोगको अपन्ने विवरण सुन्यो. ये भगवत्कृपासु ही अपन् गीताके भक्तियोगको विचार कर सके, बोल सके, सुन सके. ये अपने बसको नहीं है. अपन् या बातकु जाने हैं, याके लिये अपन् फिरसु महाप्रभुकु नमस्कार करते भये

निःसाधनजनोद्धारकरणप्रकटीकृतः।
गोकुलेशस्वरूपः श्रीवल्लभः शरणं मम।।
भजनानन्ददानार्थ पुष्टिमार्गप्रकाशकः।
करुणावरणीयः श्रीवल्लभः शरणं मम।।
श्रीकृष्णवदनानन्दो वियोगानलमूर्तिमान्।
भक्तिमार्गाब्जभानुः श्रीवल्लभः शरणं मम।।

।।अमृतवचनावली।।

(१/क) ''पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोर्वधनधरसों पूछें जो ''महाराज कृष्णदासकी तो देह छूटी...सो हम कौनको अधिकार देके बीगार करें? तासों आपु कहो ताको अधिकारी (ट्रस्टी) करें. तब श्रीगोवर्धननाथजी कहे जो ''हमहु कौंन जीवको बिगार करें? जो कोई अधिकार लेयगो (ट्रस्टी बनेगो) ताको बिगार होयगो तासों तुम एक काम करों जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाकों अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढ़ो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाको गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो.''

(श्रीगोवर्धननाथजी, ८४वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता, प्रसंग-१०)

(ख) सो एक दिन एक वैष्णवने किसोरीबाईकों कछू सामग्री दीनी हती. तब किसोरीबाईने सिद्ध करिके श्रीठाकुरजीकों भोग समर्प्यो. ता दिन श्रीठाकुरजी आरोगवेकों पधारे नाहीं. तब किसोरीबाई मनमें बहोत खेद करन लागी. तब श्रीठाकोरजी बोले जो तेनें मेरेलिये सामग्री क्यों लीनी? सो हम कैसे आरोगे?

भावप्रकाश : यामें यह जताये जो औरकी सत्ता-सामग्री अपने श्रीठाकोरजीकों आरोगावनी नाहीं. और कछू वैष्णवपेतें ले के श्रीठाकुरजीकों विनियोग न करावनो. सो श्रीठाकुरजी अंगीकार न करें.

(२५२ वै.वार्ता, किसोरीबाई वा.प्र.२)

(२) जो कटोरी (गहने) धरिके सामग्री आई सो तो भोग श्रीठाकुरजी आप ही के द्रव्यकुं आरोगे सो आप ही को भयो. जो श्रीठाकुरजीको द्रव्य खायगो सो मेरो नाहिं अरु मेरो सेवक भगवदीय होयगो सो देवद्रव्य कबहूं न खायगो जो खायगो सो महापतित होयगो. ताते वा प्रसादमेंते भोजन करिवेको अपनो अधिकार न हतो याकेलिए गोअन्कों खवायो अरु श्रीयमुनाजीमें पधरायो. यह सुनिके सब वैष्णव चुप होय रहे.

(**महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य**.घरुवार्ता-३)

(३) ...श्रीआचार्यजीको वैष्णवने आई कही, ''महाराज श्रीद्वारकानाथजी वैभव सहित पधारे हैं.'' ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाड़े हते (तब) श्रीगोपीनाथजी कहें

''लक्ष्मी सहित नारायण पधारे हैं'' तब श्रीआचार्यजी कहे तब श्रीआचार्यजी कहें ''वैभव ठाकुरको देखि के तिहारो मन प्रसन्न भयो है? (तब) श्रीगोपीनाथजी कहे, तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजी की वस्तुमें अपनो मन करेगो ताको निरमूल नाश जायगो''. तब श्रीआचार्यजी कहें ''हमारो मारग तो ऐसोई है.''

(**श्रीगोपीनाथप्रभुचरण,** ८४ वैष्णव वार्ता, दामोदरदास संभलवारेकी वार्ता).

(४/क) धनादिकी कामनाकी पूर्तिकेलिये जो शास्त्रविहित श्रवण-कीर्तन-सेवा आदि किये जाते हैं उनको कर्ममार्गीय समझना चाहिये अपनी आजीविका चलानेकेलिये धनोपार्जनके रूपमें जो हैं उनको तो खेती-बाड़ी जैसे व्यवसायकी तरह 'लौकिक कर्म ही कहना चहिये (धर्म-भक्ति सर्वथा नहीं). मलप्रक्षालानार्थ गंगाजलका उपयोग करनेवालेको उसके मलकी सफाईसे अधिक गंगास्नानका फल मिलता नहीं है. इतना ही नहीं ध्यान देनेलायक बात यह है कि गंगा जैसी पवित्र नदिके जलका ऐसा घृणित कार्यकेलिये उपयोग करनेके कारण वह पापी बनता है इसी तरह प्रभुकी सेवा-कथाके माध्यमसे पैसे कमानेवालेको सेवा-कथाका कोई भी (धार्मिक-भक्तिमार्गीय) फल तो प्राप्त नहीं ही होता है प्रत्युत ऐसे अधम आचरणके कारण वह पापका ही भागी होता है.

(**श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण**. भक्तिहंस)

(४/ख) तब श्रीगुसांईजी आपु कहे : ''जो हम कौनसे जीवको कहें, जो कौनसे जीवको बिगार करें सुधारनो तो बहोत कठिन है और बिगारनो तो तत्काल है तासों श्रीगोवर्धनधरको अधिकार (ट्रस्टीपद) कौनकों देय? कौनको बिगार करें?...पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछें जो ''महाराज कृष्णदासकी तो देह छूटी...सो हम कौनको अधिकार देके बिगार करें? तासों तुम एक काम करो जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाको अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढ़ो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाकों गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो''.

(**श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण,** ८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता प्रसंग-१०)

(५) अपने सेव्य-स्वरूपकी सेवा आप ही करनी और उत्सवादि समयानुसार अपने वित्त अनुसार करने वस्त्रभूषण भांति-भांतिके मनोरथ करी सामग्री करनी.

(**श्रीगोकुलनाथप्रभुचरण** २४ वचनामृत)

(६) यहां भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें सेवोपयोगी स्थानके रूपमें निज घरको विधान उपलब्ध होयवेसूं, अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवा छोड़के दूसरी जगह (अर्थात् हवेलीन्में, जैसे आजकल, भेट-सामग्री पधराके नित्य या मनोरथनकी झांकी कर लेनो वैष्णवन्ने पुष्टिमार्गमें परमधर्म मान लियो है वैसे) भगवत्सेवा करवेवालेन्कुं कभी भक्ति सिद्ध नहीं हो सके हे.

(**श्रीवल्लभात्मज-श्रीबालकृष्णजी,** भक्तिवर्धिनीव्याख्या-२)

(७) जब सन्तदासको सगरो द्रव्य गयो तब श्रीठाकुरजीकी सेवामें मंडान श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों राखे और श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते चौबीस टका पूंजी करि कोडी बेचते. सो श्रीठाकुरजीकी पूंजीमेंते तो कासिदको दियो न जाई सो कमाईको टका दिये. तब इनकी मजूरीको राजभोग न भयो सो महाप्रसाद हू न लियो. टकाके चूनको न्यारो भोग धरते सो राजभोग जानते, महाप्रसाद लेते, ओर नित्यको नेग बहोत श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों होतो ताते आपुनी राजभोगकी सेवा सिद्ध न भई (जाने). कासिदको दिये सो नारायणदासको लिखें जो ''तुम्हारी प्रभुतातें एक दिन राजभोगको नागा पर्यो जो मेरी सत्ताको भोग न धर्यो'' या प्रकार सन्तदास विवेकधैर्याश्रयको रूप दिखाये. विवेक यह जो श्रीगुसांईजीको हूंडी पठाई-आपुनी सेवा न भई-राजभोगको नागा माने, धैर्य यह जो श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते खान-पान न किये. आश्रय यह जो मनमें आनन्द पाये-दुःखक्लेश न पाये.

(**श्रीहरिराय महाप्रभु,** भावप्रकाश ८४वैष्णवनकी वार्ता-७६)

(८) पारिश्रमिकके रूपमें वित्त दे के कोई दूसरेके द्वारा सेवा कराई जावे तो चित्तमें अहंकार तो बढ़े ही है परन्तु ऐसी खरीदी भई सेवासु चित्त भगवान्में कभी चोंट नहीं सके है. भगवत्सेवार्थ कोई दूसरेसूं पारिश्रमिकके रूपमें धनादिक लिये जावेपे तो, जैसे पंडा-पुरोहितन्कुं यज्ञ-यागादिको फल नहीं मिले है परन्तु यजमानन्कुं ही मिले है वेसे ही सेवाकर्ताकी सेवा निष्फल बन जाय हे शंका:यजमान जैसे

दक्षिणा दे के पुरोहितन्के द्वारा यज्ञयाग करा लेवे है वैसे ही भगवत्सेवा (आजकल जैसे पुष्टिमार्गीय हवेलीन्में वैष्णवगण गुसांई-मुखिया-भीतरिया-समाधानीकी बटालियनसूं करवा लेवे हें वा तरह:अनुवादक) करा लेवेमें क्या बुराई है? समाधान:या शंकाको ये समाधान जाननो जो कर्ममार्गमें ऐसो करनो विहित होवेसुं पुरोहितन्सूं कर्म सम्पन्न करा लेनो आपत्तिजनक नहीं है. भक्तिमार्गमें, परन्तु, या तरहसूं भगवत्सेवा करा लेवेको कहीं विधान उपलब्ध नहीं होयवेसूं कोई दूसरेकुं धन दे के सेवा करानो अनुचित ही हे. भक्तिमार्गमें तो भगवदुक्त प्रकारसूं (निज घरमें निज परिजनन्के सहयोगद्वारा निजी तन-मन-धनसूं ही भगवत्सेवा करनी चहिये.

(गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण, सिद्धान्तमुक्तावली विवृतिप्रकाश-२)

(९) लौकिक अर्थकी इच्छा राखिके जो भगवद्भजनमें प्रवृत्त होय सो सर्वथा क्लेश पावे हे. इतने कछू भेट-सामग्री मिलि जाये ऐसे लाभकेलिये पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो 'पांखड़ी' ओर 'देवलक' कह्यो जाय हे. तासूं लाभपूजार्थ सिवाय जामें निषेध नहीं हे ऐसी रीतिसूं ''मेरो लौकिक सिद्ध होय'' ऐसी इच्छासूं जो भजनमें प्रवृत्त भयो होय सो 'लोकार्थी' कह्यो जाय है.

(**नि.ली.गो.श्रीनृसिंहलालजी महाराज,** सिद्धान्तमुक्तावली-टीका श्लोक १६-१७)

(१०) जो श्रीवल्लभकुल हैं वे तो आपुने सेव्यस्वरूपपें कैसो स्नेह राखत हैं जो एक ठौर द्रव्यकी ढेरी करो और दूसरी ठौर श्रीठाकुरजीकों पधरावो तो श्रीवल्लभकुल वा द्रव्यकी ओर देखेंगे हु नाहीं अरु श्रीठाकुरजीकों अतिस्नेहसों पधराय लेंगे. परि जो या कलिको जीव है वाकुं तो द्रव्य बहुत प्रिय है. तासों वो तो श्रीठाकुरजी सन्मुख हु नाहीं देखेगो अरु केवल वैभवकुं देखेगो अरु मोहित होय जायेगो.

(**नि.ली.गो.श्रीमट्टुजी महाराज,** ३२ वचनामृत वचनामृत-५)

(११) श्रीउदयपुर दरबारकुं आशीर्वाद याके द्वारा सूचित कियो जावे हे कि चल-अचल सम्पत्तिके आर्थिक तथा स्वामित्वकी व्यवस्थाके बारेमें योग्य व्यक्तिन्की एक सलाहकार समिति नियुक्त कर ली गई हे सेवा आदि विषयन्में पुरातन तथा प्रवर्तमान प्रणालिके अनुसार काम कियो जायेगो ओर यदि पुरातन परम्पराको बाध

न होतो होयगो ओर समिति कोइ तरहके सुधारकी इच्छा रखती होयगी तो ऐसे सुधार भी स्वीकारे जायेंगे. ओर श्रीठाकुरजीको द्रव्य अपने व्यक्तिगत उपयोगमें नहीं वापर्यो जायेगो जेसी कि परम्परा आज भी हे ही ओर याकुं निभायो जायेगो. तो भी मेरे पूर्वजन्के समयसूं चले आ रहे मेरे स्वामित्वके हक्क वा ही तरह कायम रहेंगे.

(गोस्वामी तिलकायत नि.ली.गो.श्रीगोवर्धनलालजी महाराज, श्रीनाथद्वारा, डेक्लेरेशन मिति भाद्रशुक्ला पञ्चमी वि.सं.१९४८=ता.५-९-१८९३)

(१२)...या ही तरह अपने यहां जो सन्मुखभेंट धरी जाय हे वो भी देवद्रव्य होवे हे; और वा सामग्रीकुं काममें नहीं लियो जाय है. श्रीगोकुलनाथजी और श्रीचन्द्रमाजी के घरमें आज भी ये नियम पाल्यो जाय हे. वहां जो सन्मुखभेट आवे हे, वाकुं कीर्तनीया-महावनीया ले जावे हे. वो वल्लभकुलको श्रीयमुनाजीको पंडा हे. दूसरो कोई वाको अनुकरण करे तो वो अनुचित है...हम श्रीनाथजीके सामने जो सन्मुख भेंट धरे हैं वो श्रीमहाप्रभुजीकी पादुकाजीकुं घरें हैं फिर भी वो आभूषणन्में वापरी जावे है, सामग्रीमें नहीं. सन्मुखभेंट धरवेमें बहोत अनाचार होवे है. या तरहसूं आयो द्रव्य 'देवद्रव्य' बने हे...वाकुं लेवेवालेकी बुद्धि बिगड़े बिना नहीं रहे है.

(**नि.ली.गो.श्रीरणछोड़लालजी महाराज,** राजनगर, वचनामृत.४८४-८७).

(१३) महाराजकुं जो आमदनी वैष्णव आदिन्सूं होवे हे वामेंसूं घरखर्चाके रूपमें महाराज ठाकुरजीकी सेवाको खर्चा निभावें हें. ठाकुरजीकेलिये चल या अचल सम्पत्ति अलगसूं निकालके वामेंसूं ठाकुरजीकी सेवाको खर्च निभायो नहीं जावे हे. ठाकुरजीके वैभवको, नेगभोगको, आभूषण-वस्त्र आदिको खर्च महाराज स्वयं अपनी आमदनीके अनुसार निभावे हें... ठाकुरजीके सन्मुख भेंट धरी नहीं जा सके... ठाकुरजीकी भेंट देवमन्दिरमें भेजनी पड़े हे महाराज वा भेंटकुं अपने उपयोगमें ला नहीं सकें.

(**नि.ली.गो.श्रीवागीशलालजी महाराज, अमरेली,** श्रीवागीशलालजीके आम-मुखत्यार:''अमरेलीहवेली व्यक्तिगत है या सार्वजनिक'' मुद्दपर सन्१९०९-१०में गायकवाडी बड़ौदा राज्यकी कोर्टमें दी गई जुबानी)

(१४) जैसे अपने पूर्वपुरुष स्वयं अपने धर्मके सत्यस्वरूप तथा शुद्धाद्वैतसिद्धान्त कुं पूर्णतया समझके वैष्णवधर्मको यर्थाथ उपदेश लोगन्कुं देते हते; और मध्यवर्ती कालमें जो सम्पत्ति आदिके कारणन्सूं हमने बहोत हद तक छोड़ दिये हें; या कारणसूं अधिकांश लोगन्में साधारण सेवा और केवल वित्तजा भक्ति की ही रूढ़िके अनुसार जानकारी बच गयी हे.

(पञ्चमगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी, कामवन मुंबईके वैष्णवन्कुं लिखित पत्र:'आश्रय' अप्रिल ८७ के अंकमें प्रकाशित)

(१५) वकील:यदि कोई भी पुष्टिमार्गीय मन्दिरमें वैष्णव श्रीठाकुरजीकी सेवा और नेग-भोग केलिये और श्रीठाकुरजीकी सेवाकुं निभावेकेलिये; भेंट आदि दे के वित्तजा सेवा करते होंय और वा मन्दिरमें तनुजा सेवा भी करते होंय तो वो ''मन्दिर पुष्टिमार्गीय नहीं होवे '' ऐसे आपको कहनो हे?

पू.पा.महाराजश्री:पुष्टिमार्गीय वैष्णवन्केलिये स्वतन्त्रतया तनुजा या वित्तजा सेवा करवेकी कोई प्रक्रिया नहीं हे. और ऐसी सेवा की जाती होय तो वाकुं साम्प्रदायिक मन्दिर नहीं कह्यो जा सके.

(**नि.ली.गो.श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज सुरत** ''नड़ियादकी हवेली वैयक्तिक हे या सार्वजनिक'' विवादमें पुष्टिमार्गके विशेषज्ञ साक्षीके रूपमें दी जुबानी)

(१६) हमारा प्रमुख सिद्धान्त है 'असमर्पित त्याग'. उत्तम उपाय तो यही है कि घरमें जो भी रसोई बने वह प्रभुको भोग धरके बादमें ही महाप्रसाद लिया जाय....जहां तक असमर्पितका त्याग नहीं होगा वहां तक बुद्धि अच्छी नहीं हो सकती. सानुभावता कब सिद्ध हो सकती है? जब हमारी बुद्धि निर्मल हो...आज हम हीरे(घरमें बिराजते सेव्य प्रभु)को परख नहीं सकते. सच्चे हीरेको जौहरी ही परख सकता है. स्थिति क्या है कि हम जूठे हीरेको सच्चा मानकर उसीके पीछे (हवेली-मन्दिरोंमें) दौड़ लगा रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजीने तो निधिरूप सच्चा हीरा हमको दिया है. भगवान् गीतामें कहते हैं कि ''दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमेश्वरम्''. भगवान्को पहचाननेकेलिये तो दिव्यता प्राप्त होनी चाहिये.

दिव्यता ही आत्मबल है....अतः मेरा तो आप लोगोंसे साग्रह अनुरोध है कि आत्मबल प्राप्त करनेकेलिये अपना कुछ दैनिक नियम बनाईये. षोडशग्रन्थके पाठका नियम लीजीये.

(द्वितीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा, श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनामृत ७, पृष्ठ.१२४)

(१७/क) और जब जनरल पब्लिक ट्रस्ट है तब ठाकुरजीकुं गोस्वामीके सम्बन्धसूं पृथक् करके, ठाकुरजीकुं सब सम्पत्ति अर्पण करके अर्थात् भेंट करके रिलीजिअस एंडॉमेन्टके रूपमें भये वे ट्रस्ट हैं. ऐसी अवस्थामें इन ट्रस्टन्सूं जो नेग-भोग चलायो जावे है, वो देवद्रव्यसूं चलायो जा रह्यो है. देवद्रव्यको उपभोग करनेवालो अन्तमें देवलक ही होवे है. श्रीमदाचार्यचरणने प्रभुकी सोनेकी कटोरी गिरवी रखके जब भोग अरोगायो तब आपने वा द्रव्यसूं समर्पित सारोको सारो प्रसाद गायन्कुं खवा दियो. ये है साम्प्रदायिक सिद्धान्त. या प्रकारके आदर्शरूप सिद्धान्तन्को जा (सार्वजनिक मन्दिर-हवेलीकी) प्रथासूं विनाश होवे, आचार्यन्कुं देवलक बनायो जाय, वा प्रथाकुं जितनी शीघ्र सम्प्रदायसूं हटा दी जाय, उतनो ही श्रेय यामें गोस्वामिसमाज तथा वैष्णवसमाज को निहित है.

(१७/ख) भगवत्सेवा सम्प्रदायकी आत्मरूप प्रवृत्ति है. आचार सेवाको अंग है, सेवाके अनुकूल आचारको पालन कियो जानो चहिये. आचार-पालनकुं प्रमुखता देके भगवत्सेवाको त्याग भी उचित नहीं है. भगवत्सेवा जैसे भी बने (अपने घरमें) करो...गुरुघरन्में मत भेजो...यदि हम भगवद्द्रव्यकुं पेटमें डालेंगे तो वो अपराध है. ग्रन्थन्के अध्ययनके प्रति हमकुं समाजकुं आकृष्ट करनो चहिये.

(**नि.ली.**गो.श्रीदीक्षितजी महाराज, मुंबई-किशनगढ़ (१७/क)''आचार्योच्छेदक ट्रस्ट प्रथासे पुजारीपनकी स्थापना घोर सिद्धान्तहानि एवं घोर स्वरूपच्युति'' लेख.पृष्ठ.७, १७/ख.लेख 'श्रीवल्लभविज्ञान अंक ५-६ वर्ष १९६५में प्रकाशित वक्तव्य)

(१८/क) वैष्णवन्के पास जो भी परम पदार्थ है वाको अस्तित्व आजके ही दिनको आभारी है. कालकी भीषणता और परिस्थितिकी विषमता के अत्यन्त विकट युगमें श्रीमत्प्रभुचरणन्के दिव्य सिद्धान्तन्के ऊपर अटल रहवेपर ही जीवमात्रको

ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो पावेगो. अन्याश्रयके त्यागकी भावनापे जगत्के जीव दृढ़ रहें तो वैष्णव-हवेलीन्के वैभवके कारण जो वैष्णव घरसेवाकुं भूल चुके हते, संयोगवशात् उन हवेलीन्में श्रीके दर्शन आज बन्द भये हैं यासुं अब वैष्णवन्के घर पुनः भगवत्सेवासूं किलकिलाते हो जायेंगे. ये लाभ सम्प्रदाय और सम्प्रदायीन् केलिये मामूली नहीं रहेगो. ईश्वरेच्छा अनाकलनीय होवे है. मोकुं तो श्रद्धा है के या कठिन परीक्षामें हम सभीन्को श्रेय ही सिद्ध होवेवालो है.

(१८/ख) मेरे अनुयायीन्कुं दो प्रकारकी दीक्षा दउं हूं. प्रथम कंठी बांधनी तथा दूसरी ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा. कंठी-बांधनी साधारण वैष्णवन्कुं ही दी जावे हे तथा ब्रह्मसम्बन्ध विशेषरूपसूं उन अनुयायीन्कुं, जो सेवामें विशेषरूपसूं आगे बढ़नो चाहे हें. पहली दीक्षाकुं 'शरण-दीक्षा कहें हैं तथा दूसरी दीक्षाकुं 'आत्मनिवेदन कहें हैं. शरणदीक्षासूं वैष्णव सिर्फ नामस्मरण करवेको ही अधिकारी बने है तो सेवावाले वैष्णवकुं ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा लेवेके बाद ही अधिकार मिले हे. ब्रह्मसम्बन्ध लेवे वालो वैष्णव अपने घरमें ही सेवाको अधिकारी होवे हे...हम स्वरूपकी सेवा नन्दालयकी भावनासूं करें हें. यालिये हम सातोंके सात पुत्रन्के घर 'घर' ही कहलावे हैं ओर हमारे घरकी सृष्टि 'तीसरे-घरकी-सृष्टि' कहलावे है.

(१८/ग) श्रीआचार्यचरणके सिद्धान्तोमें भगवत्सम्बन्ध और भगवत्सेवा को ही प्रधानता दी गयी थी. बादमें, परिलक्षित होता है कि, उसमें भी कुछ अन्तर आ गया....श्रीआचार्यचरणके और श्रीप्रभुचरणके, सेवक हम देख सकते हैं कि सभी प्रकारके हैं. ऐसा नहीं है कि अमुक विशिष्ट व्यक्ति ही भगवत्सेवाकेलिये योग्य होता है और अमुक परिस्थितिमें ही भगवत्सेवा हो सकती हो ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है. अनेक प्रकारके जीव भगवत्सेवा करते थे. उनमें स्मशानवासी वेश्या आदिसे लेकर अच्छे विद्वान् ब्राह्मण भी थे आजके समयमें मुझे प्रतीत होता है कि हम उन चरित्रोंको भूल कर पीछेसे मुख्य बन गये ऐसे केवल भावात्मक रूपको ले कर बैठ गये हैं कि जो आज भी वैष्णवोंमें प्रचलित है....मैं मानता हूं कि चरित्रोंका विचार करनेमें सिद्धान्तोंकी आवश्यकता होती है.

(**तृतीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज, कांकरोली**
(क) श्रीमत्प्रभुचरण प्राकट्योत्सव=ता.२४-१२-४८के दिन मुंबईके पुष्टिमार्गीय वैष्णवन्की सभामें अध्यक्षीय प्रवचन. (ख) बयान:मूर्तिबा कार्या.सहा.कमि. देवस्थानविभाग. खंड.उदयपुर एवं कोटा बजरिये कमिशन मु.कांकरोली.फाईल

संख्या.१-४-६४. श्रीद्वारकाधीशमन्दिर दिनांक ७।११।६५. (ग) श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनामृत २०मुं पृष्ठ.१४६,१४९).

(१९) आज मोकुं अपने हृदयके उद्गार कहवे दो, मेरो हृदय जल रह्यो हे मन्दिरन्में मात्र द्रव्यसंग्रहकी प्रवृत्ति बच गई हे; ओर वोही अनर्थन्की जड़ है. ऐसे मन्दिरन्के अस्तित्वसूं कोई लाभ नहीं है. हमारो सम्प्रदाय सामुहिक नहीं वैयक्तिक है. सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक अवश्य है परन्तु सार्वजनिक नहीं. ''करत कृपा निज दैवी जीवनपर'' या उक्तिमें 'निज शब्दको प्रयोग कियो गयो है. दैवीजीव कहीं भी हो सके हैं परन्तु सार्वजनिक रूपसूं नहीं. आज हम 'पुष्टि'को नाम लेवेके भी अधिकारी नहीं हैं...आजको हमारो जीवन चार्वाक-जीवन हो रह्यो हे. क्या हम आज जा प्रकारको सम्प्रदाय हे वाकुं जिवानो चाहें हैं? यदि सच्चे सम्प्रदायकुं चाहो हो तो स्वरूपसेवा घर-घरमें पधराओ एवं नामसेवापे भार रखो... भक्तिकी प्राप्ति स्वगृहमें सेवा करवेसूं ही होयगी. आजके इन मन्दिरन्सूं कोई लाभ नहीं है क्योंकि इनमें द्रव्यसंग्रहकी प्रधानता आ गयी है; ओर जहां द्रव्य इकठ्ठो होय है वहीं अनर्थ हो जावे है. आज सम्प्रदायको विकृत स्वरूप याके कारण ही है.
(**नि.ली.गो.श्रीकृष्णजीवनजी महाराज,** मुंबई-मद्रास 'वल्लभविज्ञान'अंक ५-६ वर्ष.१९६५)

(२०/क) जैसे स्वरूपसेवा स्वार्थबुद्धिवश और लौकिक कार्य समझके नहीं करवेकी श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है, वैसे ही नामसेवा भी वृत्त्यर्थ नहीं करनी चहिये, ऐसी आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें करें हैं... वृत्त्यर्थ सेवा करवेसूं प्रत्यवाय(दोष) लगे है. जैसे गंगा-जमुना जलको उपयोग गुदाप्रक्षालनार्थ नहीं कियो जा सके है, वैसे ही सेवाको उपयोग भी वृत्त्यर्थ नहीं करनो चहिये.

(२०/ख) तन और वित्त प्रभुकेलिये वापर्यो जाय तो मन भी प्रभुमें अवश्य लगे ही है अतएव श्रीवल्लभने उपदेश कियो है के ''तत्सिद्धयै तनुवित्तजा''. मानसी जो परा है वो सिद्ध करनी होय तो तनुवित्तजा सेवा आवश्यक है. तन और वित्त कहीं एकत्र लगायो जाय तो चित्त भी वहां दिन-रात लग्यो रह सके है. दलालीको व्यवसाय करवेवालेके व्यवसायमें केवल तनसूं श्रम कियो जावे है. परन्तु वामें वित्त स्वयंको लगायो नहीं जावे है अतएव बजारके भावन्की घट-बढ़में दलालकुं तनिक भी मानसिक चिन्ता होवे नहीं है...कोई बच्चाको पिता केवल ट्युशन फी

देके समझ ले है के बच्चा परीक्षामें पास हो ही जायेगो. इन तीनोंकुं फलप्राप्ति होवे नहीं है क्योंकि तनुजा-वित्तजा दोनों नहीं लगी. अब तनुवित्त दोनों लगावेवालेके चित्तप्रवण होवेको उदाहरण देखें:एक दुकनदार दुकान और माल की खरीदीमें पूंजी लगाके व्यापार शुरु करे सुबहसूं रात तक वहां उपस्थित रहके जब तन भी व्यापारमें लगावे है तो या कारणसूं दिनरात वाकुं व्यापारके ही विचार आते रहे हैं : अच्छी तरह व्यापार कैसे करूं कैसे व्यापार बढ़े...अतः पुष्टिमार्गमें प्रभुमें आसक्ति सिद्ध होवेकेलिये मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया समझायी गयी है कि भावपूर्वक भक्तकुं तनुवित्तद्वारा सेवा करनी चहिये.

(**नि.ली.गो. श्रीगोविन्दरायजी महाराज पोरबन्दर :** (२०/क) 'सुधाधारा पृ.११४. (२०/ख) 'सुधाबिन्दु पृ.७३)

(२१) ''अति धन्यवादार्ह हे कि आपने इतनी महेनत करके सम्प्रदायके सिद्धान्तनूंकूं कोर्टमें समझाये''-''हमारो यामें पूरो सहयोग रहेगो तनमनधनसे...हमारे सभी चि.बालक या कार्यमें सहयोग करवेकुं तैयार हें''.

(**नि.ली.गो.-श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज,जामनगर,** : गो.श्याम मनोहरजी(पार्ला-किशनगढ़ कुं भेजे दि.२६-१०-८६ और ७-११-८६ के पत्रनूंमें).

(२२/क) ट्रस्ट हवेली-मन्दिर यानि पुष्टिभावोंकी मौत :

भगवान्-स्वधर्म पूंजीसे बंधकर नहीं चलते; वे श्रद्धा और प्रेमपरवश होकर चलते हैं. आज जो (मन्दिरों-हवेलियोंके) ट्रस्टोंकी या न्यांसोकी प्रणाली चल रही है वह पूजीवादकी एक अभिनव दास्तां है जिसमें भगवान्, गाय, गुरु और धर्मानुयायिओं पर एकछत्र साम्राज्य करनेकी लालच समायी हुई है. इस तरहसे आदर्शका जामा पहने हुए इस धनलिप्सा और धनिकों की दास्तांमें वह प्रेम नहीं है जो एक अकिंचन भक्तके ''रहिये मेरे ही महल अनत न जैये...'' इस आत्मीयता भरे मीठे बैंनोंमें झलकती है. यह प्रेमभरा अनुनय है और आजका ट्रस्टी और सत्ता भगवान्को पूंजी या सत्ता के जोर पर यह कहते हैं कि ''इस स्थानसे जरासा भी नहीं हिलना, ध्यान रखना, मैं तुम्हारा व्यवस्थापक, ट्रस्टी हूं, चाहो या न चाहो, तुमको मुझपर भरोसा करना ही होगा, समझे'' लोग समझते हैं कि यह धर्मरक्षाका ही एक सर्वश्रेष्ठ रूप है, किन्तु... इसमें भी प्राणोंकी उतनीही

असुरक्षा है जो मौतसे कम नहीं...वल्लभाचार्यने ऐसे जकड़े हुवे ईश्वरको दामोदर माननेसे भी इंकार कर दिया.

ठाकुरजीको ट्रस्टमें पधरानेवालोंने ठाकुरजीको बेच दिया है :

...अच्छी तरह सोचो कि ऐसी कौन माता होगी जो अपने लड़केको धनकी लालचमें बेच दे; या कोई प्रेमी कभी भी प्रत्यक्ष तो क्या सपनेमें भी ऐसा करना तो दूर रहा, सोच या देख भी नहीं सकता, इस विषयमें एक कहानी याद आती है...एक बार रुपये पैसेवाली बांझ औरत (आधुनीक दर्शनीया वैष्णव और ट्रस्टी)ने एक गरीब(गोस्वामी गुरु)का बच्चा(ठाकुरजी) खिलानेके लिये लिया. कुछ दिनों बाद बच्चेकी मांने जो गरीब थी बच्चा मांगा तो अमीर औरतने कहा कि ये तो मेरा ही बच्चा है, तेरा नहीं है. जो तुझसे हो सके वह करले. बैचारी गरीब मां...न्यायकी मांग करने लगी...मगर सभी(वैष्णव,आमजनता,सरकार) लोग उस गरीबके खिलाफ गवाही देने चले आये.

इस तरह धनने ईमान खरीदा, भगवान् खरीदा और उस उन्मुक्त बालककी गुंजती किलकारियां हमेंश-हमेंश के लिये चुप हो गई. लोगोंने कहा कि अब भगवान् बोलते नहीं, हंसते नहीं, खेलते नहीं हैं. किन्तु यह आशा उससे की जा सकती है जो जीवित हो, किसीके प्यारमें बन्धा हो. फिर उस खूबसूरत बच्चेकी नुमाईश और प्रदर्शन करने लगा, जैसे बेबी मिल्कके डिब्बेका चित्र या मोडेलका चित्र होता है.

ट्रस्टीओं द्वारा की जाती सेवा पूतनाके प्रेमके समान है :

रोज यह सोचा जाने लगा कि इससे क्या आमद हुई, कितनी बिक्री हुई. और सभी व्यवस्थापक इसकी निगरानी करने लगे. जब कोई आता देखने तो उसे दुलार किया जाता. लोग समझते हैं कि यह प्यार है, भक्ति है. मगर था तो वह व्यवसाय ही, जिसका रूप पूतनाके प्रेमकी भांति सच्चाईको छिपा गया और भोली यशोदाने लाल उसे खिलाने दे दिया.

मन्दिर-हवेलियां दुकान बन चुके हैं :

कितनी बिक्री हुई इसका हिसाब रखा जाने लगा धर्म और धर्मस्वरूप यह बालक भगवान् जो प्यारसे भक्तोंके लिये भोला बन गया था. लोगोंने उससे फायदा उठाया और कह दिया-यह सार्वजनिक ईश्वर है. उस सर्वशक्तिमानको स्वार्थका साधन बना दिया और जगन्नियन्तापर धननियन्ता शासन करने लगे. हालत यह हुई कि कौन उसको खिलाये-पिलाये? वह तो सार्वजनिक था

मन्दिर–हवेलियोंके ठाकुरजी जड़ बन चुके हैं :

द्वारकाधीशको भी यह छूट थी कि वह विदूरके घर साग खा सकता था किन्तु यह तो नितान्त निक्रिय बन गया, केवल दिखावा मात्र

...क्या यह सिद्धान्त किसी प्रियतमके लिये प्रियतमा या माता को मान्य होगा? किन्तु यह आज मान्य है और मान्य करना होगा. केवल पैसेकेलिये अपना दिल नहीं, दुनियाका दिल बहेलानेको, वारांगनाकी भांति, जिसमें हृदय नामकी कोई वस्तु रह नहीं सकती और है तो बह मानी नहीं जाती. सभीका अधिकार है उसपर, जैसे वह सम्पत्ति हो, जो चाहें खरीदें, जो चाहे प्रयोगमें लायें, जैसा चाहे वैसा करे उसको करना ही होगा. कैसी अनोखी है यह भक्ति और प्रेम की परिभाषा फिर भी स्वतन्त्रताका घोष किया जाता है क्या यह ही वह भक्ति है जिसे श्रीवल्लभ ''महात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह'' कहते हैं? आज इस भक्तिका माहात्म्य ये ही है कि किस भगवान्के यहां कितनी आमद होती है

ट्रस्ट मन्दिर पुष्टिप्रभुके लिये जेलखाना :

...अब कोई प्यारसे यह नहीं कह सकता कि मेरा बालक देरसे सोया है, जल्दी मत जगाना. सूरदासका पद भगवान्को जगानेकेलिये दुलार नहीं रहा, न कलेउके पदमें ममताका अनुनय है; यह तो कम्पलसरी ब्रेकफास्ट है जिसे समय पर कैदीकी तरह ईश्वरको करना पड़ता है. मानो एक जेलखानेमें उठने या खाने की घंटी बजी हो ठाकुरजी बिक रहे हैं; मनोरथी–दर्शनार्थी भक्त नहीं ग्राहक हैं.

...श्रीवल्लभाचार्यने जीवनमें अपने कलेजेके टुकडे अपने आराध्यको कभी दूर नहीं होने दिया. आज वो बिक रहा है धनिकोंके हाथों और जकड़ा है सरकारी शिकंजेमें, पब्लिक् पोलिसीके अंदर, और अब उसे म्युझियमकी शोभा बनानेका समय निकट आ रहा है.

धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है :

बेचारे धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है...भगवान्की सुंदर विनिन्दितमुक्ता–दंतपंक्ति बगला भगतोंको देखकर खिल जाती है. सदानन्द निरानन्द होकर इन ईमान खरीदनेवालोंके हाथों खुल्लेआम बेचा जा रहा है...सबको सहारा देनेवाला स्वयं बेसहारा होकर बैठा है अपने धनिक ग्राहकोंकी प्रतीक्षामें

हवेली–मन्दिरमें देवद्रव्यका प्रसाद खाना मतलब नरककी टिकिट कटवाना :

धर्मशास्त्रमें जिस बुद्धिमान् ब्राह्मणको देवलकवृत्तिसे अधम माना गया है...आज उस देवलकवृत्तिका धन चटकारे लेकर वैष्णवसमाज खा रहा है. नाथद्वारेमें क्या चिज स्वादिष्ट है...ये ही विवेचन करता है...किन्तु मेरा कर्तव्य क्या है यह कभी नहीं सोचता. श्रीनाथजीमें अब धनिकोंका साम्राज्य है.

...नाथद्वारामें आजकल पैसा अधिक आ रहा है, क्योंकि वहां इन धनिकोंका साम्राज्य है. इनके दलाल श्रीनाथजीकी महिमा बढ़ाते हैं...गरीबोंकेलिये ठहरनेवाला भगवान् अब धनिकोंकेलिये ठहरता है.

श्रीवल्लभके आदर्शोंके स्मशान जैसें मन्दिर–हवेलियां :

भगवन्नाम भागवतसे अस्पतालोंकेलिये करोड़ोंकी रकम जमा होती है, और जामनगरमें आदर्श स्मशान भी है, किन्तु यहां तो स्मशानसे भी आदर्श गायब होता जा रहा है शायद आदर्शका स्मशान है यह ट्रस्ट और सरकारी देवालय.

मन्दिरका प्रसाद खाया नहीं जा सकता है :

...वल्लभमतमें ये सिद्धान्तत गलत है ओर ऐसे देवस्थानोंका चढावेका प्रसाद भी नहीं खाया जा सकता. क्योंकि वहां देवलकवृत्ति ही प्रधान है.

दर्शन–मन्दिर धर्मप्रचारका माध्यम नहीं हो सकते :

जहां तक भगवत्स्वरूप या मूर्तिका प्रश्न है, धर्मप्रचार उनसे सम्बन्धित नहीं है और न उसे उचित कहा जा सकता है. क्योंकि भगवान्ने धर्मकी व्यवस्थाकेलिये वेदव्यासादि अनेक ज्ञानावतार और अंशावतार धारण करके ही धर्मरक्षा की है. आजकी (सार्वजनीक हवेली–मन्दिरकी) व्यवस्था आचार्योचित और धार्मिक या भारतीय ही नहीं है तब वल्लभाचार्यसम्मत होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता...हमारा इस विषयमें सुझाव है कि एक अलग व्यवस्था...करनी चाहिये जिससे वल्लभसिद्धान्तोंकी रक्षा हो सके. यदि ऐसी व्यवस्था नहीं कि जाती तो देवद्रव्य होता है. जिसका सेवन करनेसे आचार्य स्पष्ट कहते हैं कि नरकपात होगा.

नकली बैठके :

बैठकोंकी भावगंगा तो अब घरबैठे ही मनुष्यको पवित्र करने अपनी उत्ताल तरंगोसे सारे घर–बारको ही सराबोर करने लगी है...८४ बैठकोंसे काम नहीं चला तो अब महाप्रभु श्रीवल्लभको मुसलमानोंके खेतोंमें अपनी झारी और अन्य चिन्ह प्रकट करनेको विवश होना पड रहा है

(''हमारी धार्मिक स्थितिका वर्तमान स्वरूप एवं भविष्यकी व्यवस्थाहेतु प्रतिवेदन'' दिनांक. २५।२।८१)

(ख) श्रीवल्लभाचार्यने सेवाको खरीदनेकी बात नहीं कही है कि खरीद आओ रूपये देकर. नहीं 'तनुवित्तजा'पदका अर्थ ही यह है कि वह समस्त पद है. जहां तन लगे वहीं धन लगे तब ही सेवा हुई. परन्तु धन लगे और तन न लगे तो सेवा हुई नहीं कहलाती है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.५९)

(ग)...''सेवाऽपि कायिकी कार्या'' यह नहीं कि पैसे दे दिये. पैसे देकर घरमें विवाहिता पत्नीको नहीं लाया जाता है, वैश्याको लाया जाता है. वेश्यासे घर नहीं बसता है यह स्पष्ट है. अतः साफ बात है कि भगवत्सेवा और वरण में पति-पत्नीका दृष्टान्त देते हैं कि जिनमें आत्मीय सम्बन्ध है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.७४)

(घ) भेंट भी आचार्यके सन्मुख ही होती है. प्रभुके सन्मुख भेंट नहीं होती है. देवलकवृत्तिसे बचनेकी विधि और वैदिक व्यवस्था को सम्हालकर रखना चाहिये अन्यथा बुद्धि बिगड़ेगी. ऐसा करनेसे पतन होता है, और हुवा है. (वहीं पृ.१७१)

वस्त्र-अलंकारोंमें मन अधिक जाता हो तो ऐसा साहित्य रखनेकी आवश्यकता नहीं है. ऐसा करनेसे लौकिक बठता है और धर्मभावना नष्ट होती है...अतः वैभव बढ़ानेकी श्रीगुसांईजीने ना कही थी. और श्रीमहाप्रभुजीने नावको डुबोकर पुरुषोत्तमको ही घरमें पधराया था. (वहीं पृ.१८०)

(ङ) धर्म की परम्परा प्रदर्शनपर आधारित नहीं है पर एक यथार्थ जीवनका उज्वल पक्ष है...कुनवारा और अन्य मनोरथों...का रूप आगे चलकर महाप्रभु श्रीवल्लभकी आचार-परम्परा और सम्प्रदायकी मर्यादा को आहत करनेवाला होगा जिसकी आज कल्पना भी की नहीं जा सकती है. (वहीं पृ.१९७)

(नि.ली.गोस्वामी श्रीरणछोडाचार्यजी प्रथमेश.)

(२३/क) प्रश्न:'देवद्रव्य कायकुं कहे हैं? 'देवद्रव्य'को मतलब देवको द्रव्य. ऐसो द्रव्य या पदार्थ जो देवकुं ही उद्देश्य बनाके अर्पण कियो गयो होवे वाकुं 'देवद्रव्य कहे हैं. याही प्रकार गुरुकुं उद्देश्य बनाके अर्पण किये गये द्रव्यकुं 'गुरुद्रव्य' कह्यो जाय है....मन्दिरन्में ठाकुरजीके सन्मुखमें भेंट धरे जाते द्रव्यकुं

और ट्रस्टकी ऑफिसमें आते द्रव्यकुं तो स्पष्ट शब्दन्में 'देवद्रव्य' कह्यो जा सके है; और वा द्रव्यसूं सिद्ध होती सामग्रीमें भगवत्प्रसादी होवेके बाद महाप्रसादपनो तो आवे है परन्तु वाके साथ वामें देवद्रव्यपनो भी रहे ही है. याही कारण वैष्णवन्कुं ऐसे महाप्रसादकुं देवद्रव्य समझके ही व्यवहार करनो चहिये. ऐसे महाप्रसादकुं लेवेमें देवद्रव्यको बाध तो रहे ही है.

(२३/ख) मन्दिरके स्थलके फेरबदलके बारेमें श्री गो.पू.१०८ श्रीबालकृष्णलालजीने कह्यो कि पुष्टिमार्गमें सार्वजनिक मन्दिरकी परम्परा नहीं है यामें व्यक्तिगत स्वरूप निजी स्वरूप की ही बात है; और याही कारण पुष्टिमार्गमें सेवाप्रकार देवालयके प्रकार जैसो नहीं है. मन्दिरको निर्माण भी घर जैसो होवे है कहीं भी ध्वजा-शिखर नहीं होवे है वैष्णव भी घरमें ही सेवा करे है तथा वाकुं 'मन्दिर ही कहे है...

(**नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी महोदय, सुरत,** (क)'वैष्णववाणी अंक.३, वर्ष मार्च १९८३.(ख)'गुजरात समाचार अंक २५-५-९३में प्रकाशित)

(२४) पुष्टिमार्गकी आज उपेक्षा होती जा रही है. उसकी परम्परा ही अब टूटती जा रही है. इसके मूलमें यदि कुछ है तो वह है आजकी साधन-सम्पत्ति. वही हमारे संस्कार बिगाड़ रही है. अभी भी जिस घरमें अलौकिक (प्रभु) सेवा होगी वहां पुष्टिमार्ग जरूर निभेगा. श्रीमदाचार्यचरणके मतानुसार गृहसेवा और अपने माथे बिराजते ठाकुरजीका अति स्नेहसे जतन करना ही सच्चे संस्कारका मूल है...श्रीगुसांईजीके समयमें छप्पनभोग जैसे मनोरथोंकी शुरुआत करनेके समय (उनमें) केवल लौकिकता ही बढ़ेगी ऐसी स्पष्ट सूचना दी गयी थी...आजकल...मंदिरोंका उपयोग यश-किर्ती प्राप्त करनेके लिये होने लगा है. मंदिरोमें प्राधान्य मनोरथीका होने लगा है. श्री(ठाकुरजी), गुरु तथा सेवाभावना का उपहास होने लगा है. जबसे मार्गीय सिद्धान्तोंका उपहास होने लगा है तबसे मंदिरकी उसके संचालकोंकी वृत्ति ही पलट गई है. आडंबर और यश को पुष्ट करनेकेलिये...दर-दर भटकनेकी स्थिति पैदा हो गयी है...इन सबका सच्चा उपाय इस कलिकालमें अपने सन्तानोंको जरूरी संस्कार अपने घरसे ही दिये जायें ये ही है.

...मंदिरोंका सम्पूर्ण व्यापारीकरण होने लगा है...सम्पत्ति...प्राप्त करनेकी लालच बढ़नेसे प्रभु(स्वरूपसेवा)को भी हम व्यापार स्वरूपमें परिवर्तित करने लगे हैं.

(जुलाई-२००७, पृ.६)

ठाकुरजीकी सेवा चोरकी तरह करनी चाहिये...सेव्यस्वरूपका मैं सेवक हूं उसका ढिंढ़ोरा पीटना या उसका प्रदर्शन करना वह भी जीवके दैन्यमें विक्षेप उत्पन्न कर सकता है....अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवामें भी इतनी गुप्तता जरूरी है. ''प्रीत हियेंमें राखिये प्रकट करे रस जाय'' की रीतिसे तुम्हारे प्राणप्रेष्ठ तुमको जिस रसकी प्राप्ति करातें हैं उसे कभी भी प्रकट नहीं किया जा सकता है.

(सप्टेंम्बर-२००४, पृ.७)

आजतो श्रीनाथजी-नाथद्वारा, चंदबावा-कामवन और अन्य ठाकुरजीके दर्शन करते ही अपने माथे बिराजते ठाकुरजी भुला जाते हैं. पुष्टिमार्गमें तो 'श्रीजी'का अर्थ ही अपनें माथे बिराजते ठाकुरजी होता है. जिसमें 'तिरु'का अर्थ श्री और 'पति'का अर्थ नाथ (यानि श्रीनाथ) ही होता है. अर्थात् अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीमें ही अपने सर्वस्वका दर्शन होना चहिये. उनको आरोगाया मतलब समस्त जगतको प्रसाद लिवा दिया ऐसा भाव सिद्ध होना चाहिये. यहां तो उससे उलटी गंगा बह रही है. अपने सेव्य ठाकुरजीमें सभी निधिस्वरूपोंके दर्शन होनेके बदले अब तो अरे, वहां तक कि जीवमात्रमें अपन अपने ठाकुरजीका दर्शन करनेका विचार कर रहे हैं और फिर बुद्धिकी चतुराई भी वापर रहे हैं कि सभीमें ठाकुरजीका अंश है इसलिये घरमें प्रभुकी सेवा करें या अन्योंकी करें एक ही बात है अतः अन्यसेवामेंसे सन्तोष लेना शुरु किया. इससे शरीर, पैसा, कीर्ति सबकी रक्षा हो और ऊपरसे परम भगवदीय कहलाने लगें (सप्टेम्बर-२००७, पृ.७)

(**पंचमगृहाधीश.नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज,** कामवन-विद्यानगर, वैष्णवता-'सांचे बोल तिहारे', प्रकाशक:पं.पी.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज)

(२५/क) हम श्रीवल्लभाचार्यजीकी आज्ञाको पालन कहां कर रहे हें? अपने यहां गृहसेवा कहां (रह गयी) है? केवल मन्दिरनमें दर्शनसूं क्या लाभ है?

श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है ''कृष्णसेवा सदा कार्या'' . यदि श्रीमहाप्रभुजी मन्दिरकुं मुख्य मानते तो अपनी तीन परिक्रमान्में अनेक मन्दिर स्थापित कर देते. श्रीगुसांईजीने श्रीगिरधरजीकुं सातस्वरूपके मनोरथ करते समय या प्रकारकी चेतावनी दी थी. मन्दिरस्थापन करते समय उनकुं डर हतो के घरमेंसूं ठाकुरजी मन्दिरमें पधार जायेंगे. मेरे पिताजीने कल (उपर्युद्धृत वचनमें) जो कह्यो वो अक्षरशः सत्य है तुम अपने घरन्में ठाकुरजीकुं पधराओ और सेवा करो.

(२५/ख) पुष्टिमार्गीय प्रणालिकाके अनुसार ट्रस्ट होनो उचित नहीं है. श्रीआचार्यचरणने प्रत्येक ब्रह्मसम्बन्धी जीवकुं आज्ञा दी है ''गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः'' (भक्तिवर्धिनी) अर्थात् गृहमें रहके स्वधर्माचरण करनो चहिये गोस्वामी बालक भी आचार्य होवेके बावजूद वैष्णव भी हैं. अतः आचार्यश्रीकी उपरोक्त आज्ञाकुं पालनो उनको भी कर्तव्य है...अतः मेरो तो माननो यही है के आचार्यचरणके सिद्धान्तके अनुसार वैष्णवनकुं स्वयंके घरमें श्रीठाकुरजीकी सेवा करनी चहिये और धर्मग्रन्थन्को पठन-पाठन करनो चहिये. नहीं के मन्दिरन्में जाके...ट्रस्ट तो पुष्टिमार्गीय प्रणालिकासूं संगत होवेवाली बात नहीं है प्रत्युत अपनी प्रणालीको भंग करवेवाली बात है.

(नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीशजी महाराज दहिसर-मुबई, क-'वल्लभविज्ञान'. अंक ५-६ वर्ष १९६५, ख-'नवप्रकाश अंक ८ वर्ष ८)

(२६) क्योंकि श्रीनाथजी स्वयं वाके भोक्ता हैं किन्तु वैष्णव-वृन्द तथा सेवकगण भी वा महाप्रसाद लेवे तकके अधिकारी नहीं हैं. यह आचार्यचरणके इतिहाससूं प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है वाके महाप्रसाद लेवेको केवल गायकुं ही अधिकार है. अन्यथा वा देवद्रव्यके उपभोग करवेसूं निश्चय ही अधःपतन है... सब प्रकारके दान-चढ़ावा व वसूल वसूली करवेको उल्लेख कियो गयो है, वो भी सम्प्रदायके सिद्धान्तसूं नितान्त विरुद्ध है अपने सम्प्रदायकी प्रणालीके अनुसार जो अपने सम्प्रदायके सेवक हैं, उनकोही द्रव्य गुरु-शिष्यके सम्बन्धसूं लेके सेवामें उपयोग करायो जा सके है. सम्प्रदायमें सब प्रकारके दान-चढ़ावान्को उपयोग सेवामें नहीं कियो जाय है; ओर कदाचित् कहीं कियो जातो होय तो वो सम्प्रदायके नियमन्सूं विरुद्ध होवेके कारण बन्द कर देनो चहिये.

(**सप्तमगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीघनश्यामलालजी, कामवन** ''श्रीनाथद्वारा ठिकानेके प्रबन्धकी दिल्ली-योजनाकी आलोचना ता.१-२-५६'')

(२७/क)...ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा करवेसूं प्रत्येक इन्द्रियन्‌को भगवान्‌में विनियोग होवे है...मन्दिर-गुरुघर केवल उपदेशग्रहण करवेकेलिये हैं सेवा अपनकुं अपने घरन्‌में करनी है.

('वल्लभविज्ञान'अंक ५-६ वर्ष १९६५)

(ख) आज बहुत घरोंमें सेवा होती है, पर क्या हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि यह सेवा वास्तविक सेवा है? क्या आजकी सेवा ''चेतस्तत्प्रवणं सेवा'' (चित्तका प्रभुमें प्रवण हो जाना वह सेवा है)का अक्षरशः सार्थक स्वरूप है?

वस्तुतः हम खुद वल्लभवंशज गोस्वामी भी यह दावा नहीं कर सकते हैं कि आज हम वास्तविक सेवा कर रहे हैं. यह कहनेमें मुझको लेशमात्र भी संकोच नहीं हो रहा है, क्योंकि मैं दम्भका संरक्षण करना नहीं चाहता हूं, अतः स्पष्ट है कि यदि हम गोस्वामीओंमें सेवाकी और श्रीमहाप्रभुजीद्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तोंके पूर्ण परिपालनकी क्षमता होगी तो ही हमारे अनुयायी स्वयं सेवा और सिद्धान्त के परिपालनमें सक्षम हो पायेंगें, अन्यथा नहीं. क्योंकि हम गोस्वामी और वैष्णव एक ही तत्वके दो प्रकार हैं. वल्लभकुल बिन्दुसृष्टि है तो वैष्णव नादसृष्टि है. इस स्थितिमें श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी प्रभुचरण द्वारा की गयी आज्ञा वल्लभकुल और वैष्णव दोनोंकेलिये परिपालनीय है.

(पू.पा.गो.श्रीमथुरेश्वरजी महाराज, बडौदा-सुरत, पुष्टिबोध भाग.१-२,वि.सं.२०३४)

(२८/क) प्रश्न : आज चल रहे जो डिस्प्युट हैं वामें कितनेक सिद्धान्त चर्चित हो रहे हैं जैसे कि नये मन्दिर नहीं खोलने, ट्रस्ट-मन्दिर नहीं बनाने, ठाकुरजीके नामपे द्रव्य नहीं लेनो, ठाकुरजीके दर्शन नहीं कराने तथा बिना समजे-सोचे कोईकु ब्रह्मसम्बन्ध नहीं देनो, इन सब विषयमें आपको अभिमत क्या है?

उत्तर : देखो मन्दिरकी जहां तक स्थिति है तो ये बात सत्य है के पुष्टिमार्गीय प्रकारसुं मन्दिर तो मात्र एक ही है; ओर सब घरकी स्थिति हती ...आज मन्दिर जितने हैं अथवा जिन स्थानन्‌कुं अपन मन्दिर समझे हैं वो स्थान...वाकु अपन मर्यादापुष्टि मन्दिर कह सके हैं पुष्टिमन्दिर नहीं पुष्टिको प्रकार तो मात्र गृहसेवामें ही है.

('आचार्यश्रीवल्लभ', ऑगस्ट१९९४,अंक.५, पुष्टिमार्ग-वर्तमान.प्रश्न-उत्तर.४,पृ.७)

(ख) आजसे डेढ़सो वर्ष पूर्व, श्रीमहाप्रभुके समयसे तब तक, पुष्टिमार्गमें भगवन्मन्दिर खोलनेकी प्रणाली नहीं थी. प्रत्येक वैष्णवके घर-घर भगवत्सेवा हो उसका आग्रह रखा जाता था. वैष्णव अपने घरमें श्रीठाकुरजीके स्वरूपको सेव्य कराकर पधराकर गुरुघरकी प्रणालिका अनुसार सेवा करते थे. (व्रज मोंहे बिसरत नांही, पृ.१४०-१४१)

(ग) खेतमें भरे हुवे जलको पी नहीं सकते...वो अनाज तो पैदा कर सकता है. वो अपने पेट भरनेका साधन मात्र करता है. वो किसी दूसरेके ओर उपकारका नहीं होता है...अपना पेट पालनेकेलिये भगवद्‌गुणगान करते हैं वो उस प्रकारके होते हैं कि जैसे खेतमें भरा हुवा पानी होता है. पद्‌मनाभदासजी...आचार्यचरणके निबन्धका श्लोक समझाने पर ही उन्होंने अपनी पौराणिक वृत्तिको छोड़ दिया...अपने मकानमें बरतन धोनेके पनाले हैं उसमें जो जल जाता है वो एक गढ्‌ढेमें इकठ्ठा हो जाता है...वो पानी तो केवल गंध ही मारता है...भगवद्‌भाव होते हुवे भी जिनके स्वभावमें दुःसंगके द्वारा दोष उत्पन्न हो जाता है ऐसे मनुष्य उस गंदे गढ्‌ढेके समान बन जाते हैं कि जिसमें पानी भरा हुवा तो होता है लेकिन वो पानी किसी उपयोगका नहीं होता. वो भरा हुवा पानी केवल दुर्गन्ध पैदा करता है...पांचवे (भगवद्‌गुणगान करके अपनी आजीविका चलानेवाले नीच वक्ताओंके भाव) गटरके समान दुर्गन्धयुक्त...अस्पृश्य होते है. (जलभेद प्रवचन, वड़ोदरा)

(**तृतीयगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज,** कांकरोली-वड़ोदरा)

(२९) श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के दुनियामें भटकते रहेते अपने मन-चित्त(कुं) श्रीठाकुरजीके सङ्ग जोडिके विनकी तनु-वित्तजा सेवा करनी. तनुवित्तकी सेवा अर्थात् स्वयं उपार्जित अपने धनसों अपने ही घरमें श्रीठाकुरजीकी अपने ही शरीरसों सेवा करनी सो.

(पू.पा.गो.चि.श्रीवागीशकुमारजी,वडोदरा-कांकरोली
'वल्लभीयचेतना',
ऑक्टोबर१५ २००३,पृ.४)

(३०) जो घरमें रहकर प्रभुकी सेवा करते हैं वे स्वयं तो कृतार्थ होते ही हैं किन्तु उनके परिवारके परिजन भी कृतार्थ होते हैं....सभी इन्द्रियसे अन्तःकरणसे भजनानन्दका अनुभव घरमें रहकर श्रीठाकुरजीकी सेवासे होता है....इसलिये घरमें आचार्य श्रीगुरुचरणसे पुष्ट करके श्रीठाकुरजी पधराओ और समयको सेवामय बनाओ....श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं तो घर घर नहीं रह जाता, वह प्रभुकी क्रीडाका स्थल बन जाता है...नन्दालयकी लीलाका स्थल बन जाता है.

...मुकुन्ददास...रामदास सांचोरा...किशोरीबाई...जीवनदास...इन महानुभावोंने...श्रीनाथजी तथा घरके श्रीठाकुरजीमें भेद नहीं समझा.

...श्रीठाकुरजी अपने निधि अर्थात् सर्वस्व हैं....ऐसे पूर्णपुरुषोत्तम श्रीनन्दराजकुमारको श्रीमहाप्रभुजीने हमारी गोदमें पधराकर हमें भाग्यशाली बनाया है. यह अलौकिक निधि(धन) देकर हमें धन्य बनाया है. इससे बड़ा दूसरा कौनसा फल हैं

...जो सांसारिक कामनासे श्रीठाकुरजीका भजन अर्थात् दर्शन स्मरण सेवा करता है उसे क्लेश ही हाथ लगता है....इसी तरह जो अपने माथे श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं उन्हें हम चाहे जैसे नये-नये पुष्टिमार्गीय मनोरथ करके सामग्री सिद्ध करके लाड़ लड़ा सकते हैं परन्तु यह अधिकार किसी दूसरे ठिकाने थोड़ी मिल सकता है. अतः ''घरके ठाकुरके सुत जायो नन्ददास तहां सब सुख पायो''.

श्रीनाथजीको भी देवालयकी लीला छोड़कर नन्दालयकी लीला करने हेतु श्रीगुसांईजीके घर पधारना पड़ा. ''व्याजं लौकिकमाश्रित्य श्रीविट्ठलेशगृहे अगमत्''. अतः श्रीनाथजीका यह पाटोत्सव ही मुख्य माना गया है जो फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको आता है.

अतः घरके ठाकुरजीका स्वरूप समझना बहुत आवश्यक है. कोई पत्नी अपने पतिकी सेवा न करे, उसके गुणगान ही करती रहे...तो क्या पति सन्तुष्ट होगा? इसी प्रकार...जो सेवा न करे, कृष्ण-कृष्ण गुणगान करते रहते हैं, परन्तु सेवा स्वधर्मसे विमुख रहते हैं वे हरिके द्वेषी हैं (विष्णुपुराण) सेवासे सेव्यको सन्तोष मिलता है यही वैष्णवका स्वधर्म है.

(पू.पा.गो.श्रीगोकुलोत्सवजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा,
२५२वैष्णव वार्ता, खंड-२की भूमिका पृ.१५-३६)

(३१/क) गो.श्रीहरिरायजी : जरा ध्यानसे सुनें....''तत्र अयम् अर्थः लाभपूजार्थयत्नस्य उपधर्मत्व-देवलकत्वादि'' स्पष्ट सुनें, ''सम्पादकत्वात्''...लाभ-

पूजार्थ यत्न करता है जो सेवा करके, जब वो लाभ-पूजार्थ प्रयत्न करता है तो वो उपधर्म हुवा; देवलकत्व आदि जो दोष हैं वो उसमें प्रविष्ट होंगे ...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : अर्थात् यह खास ध्यानमें रखना कि जिस स्वरूपकी भावप्रतिष्ठा की गयी हो उस स्वरूपकी भी लाभ अथवा पूजा केलिये यदि सेवा की जाती है तो सेवा करनावाला देवलक(पापी बन रहा है...

गो.श्रीहरिरायजी : और उपधर्मत्व होता है...और ये निषिद्ध है...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : इस स्थितिमें गुरु अपने लाभ अथवा पूजा केलिये शिष्यसे कुछ भी ठाकुरजीकेलिये मांगता है तो वह...शास्त्रनिषिद्ध होनेसे...दान होनेसे देवद्रव्य होनेसे उपयोग करने योग्य नहीं होता है.

गो.श्रीहरिरायजी : हां बिलकुल...ये तो बिलकुल स्पष्ट है...'स्ववृत्तिवाद'से भी स्पष्ट होता है.

('पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा विस्तृत विवरण पृष्ठ १६४,१९३)

(ख) श्रीमदाचार्यचरणने ''तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा'' यह कहा है. कारणके दो अलग अलग व्यक्ति तनुजा वित्तजा करते हैं तो मानसी सिद्ध नहीं होती...इसी अभिप्रायको समझानेकेलिये आचार्यचरणने 'तनुवित्तजा' यह समस्तपद कहा है...वेतनके रूपमें वित्त लेकर या देकर दो पुरुषों द्वारा की गई ऐसी तनुता-वित्तजा सेवाएं मानसीकी साधक नहीं होती यही अभिप्राय बतानेकेलिये तनुवित्तजा समस्तपद कहा गया है. अन्यथा तनुवित्तजा न कह कर तनुजा वित्तजा ही कहते...यदि दो अलग-अलग व्यक्ति तनुजा और वित्तजा करें तो दोनों सेवाओंकी एक संयुक्त अवस्था तनुवित्तजा नहीं बन पाती. अतएव मानसी सिद्ध नहीं होती.

(ग) जहां तक लाभपूजार्थत्वका सवाल है तो वह तो किसी भी कोटिका भक्त करेगा तो देवलक ही होगा...यदि कोई स्वलाभपूजार्थ दर्शन-मनोरथ-महाप्रसाद आदि करता है तो अवश्य देवलक है...अन्यके घरमें, अन्यके वित्तसे, अन्यके ठाकुरजीके भोगका महाप्रसाद लेना घोर सिद्धान्तविरुद्ध है.

(घ) अब रहा सबाल ट्रस्टकी इन्कम और प्रोफिट यानी आय और लाभ का, तो ट्रस्टके आय-लाभ हम नहीं लेते. उलटा भगवत्शास्त्रोक्त सर्वलाभोपहरण न्यायसे ट्रस्टका सारा लाभ भगवदर्थ या गो-ब्राह्मणार्थ लगा देते हैं....हमारें प्रभुको नित्यनेगभोग हम स्ववित्तजासे अरोगाते हैं.

(ङ) पुष्टिमार्गीय वैष्णवके लिये श्रीभागवतकथा करके वृत्ति करना निषिद्ध है.

(**पु.सि.सं.शि.पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी महाराज, जामनगर,**
अनिर्दिष्टपृष्ठसंख्याक 'तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा')

(३२) अपने सम्प्रदायमें इतनो अधिक सिद्धान्तवैपरीत्य हो गयो है कि गुजरातके एक गांवमें...अपने सम्प्रदायके ही दो मन्दिर हैं और मन्दिरन्की दीवार भी एक ही है; परन्तु...इतनो लोकार्थित्व समाजमें उत्पन्न हो गया है...सवेरो होते ही चन्द्रमाजीवाले वैष्णव बालकृष्णलालको जो मेवा होवे है वो चन्द्रमाजीमें ले जावे हैं और बालकृष्णजीवाले जो वैष्णव होवे हैं वो चन्द्रमाजीको जो मेवा और प्रसाद होवे है वाकु बालकृष्णलालजीमें ले आवे हैं ऐसी जबरदस्त होंसातोंसी वैष्णवसमाजमें पैदा हो गई है के मानों एक-दूसरेके संग स्पर्धा करते होवें. ऐसो ईर्ष्या-द्वेषको वातावरण जब सेवाके क्षेत्रमें उत्पन्न हो जावे तो वासूं बढ़के लोकार्थित्व ओर क्या हो सके है...ऐसे सभी सिद्धान्तवैपरीत्यकी फज़ीहत यदि सर्वाधिक कहीं होती होय तो गुजरातमें होवे है. भागवतमें भी लिख्यो है के ''गुर्जरे जीर्णतां गताः'' भक्ति गुजरातमें आके बूढ़ी हो गई है. अन्धानुकरण बढ़ा हो तो वह गुजरातमें बढ़ा है...अतः सिद्धान्तकी सत्यनिष्ठा...और श्रीमहाप्रभुजीके पुष्टिसिद्धान्तों के सद्जागरणकी कहीं आवश्यकता है तो...गुजरातमें.

(**पू.पा.गो.श्रीद्रुमिलकुमारजी, सुरत** ''पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा दि.१०-१३जनवरी,९२. पार्ले-मुंबई विस्तृतविवरण'' पृ.३१७-३१८)

(३३) प्रश्न : अपने सम्प्रदायमें मन्दिरकुं 'मन्दिर न कहके 'हवेली क्यों कह्यो जावे है?

उत्तर : सामान्यतया इतर हिन्दु-सम्प्रदायमें 'मन्दिर शब्द देवालयके अर्थमें प्रयुक्त होवे है परन्तु ऐसे देवालयके रूपमें मन्दिर जैसी संस्थाको पुष्टिमार्गमें अस्तित्व ही नहीं है. क्योंकि पुष्टिमार्गमें अपने माथे जो प्रभु पधराये जावे हैं वे प्रभुस्वरूप और उनकी सेवा हरेककु व्यक्तिगतरूपमें वाकी भावनाके अनुसार पधराये जावे हैं. स्वयंके श्रीठाकुरजीकी सेवा पुष्टिमार्गीय जीवको एकमात्र स्वयंको कर्तव्य बन जातो स्वयंको ही धर्माचरण है. पुष्टिमार्गमें सेवा सामुहिक जीवनको विषय नहीं परन्तु व्यक्तिगत जीवनको विषय है. जेसे लोकमें पत्नी अथवा माता को पति अथवा पुत्र की सेवा या वात्सल्य प्रदान करवेको वाको व्यक्तिगत धर्म उत्तरदायित्व और अधिकार होवे है. वा ही तरह जा सेवकके जो सेव्यस्वरूप होवे हैं वा

सेव्यस्वरूपकी सेवा वाको व्यक्तिगत धर्म और अधिकार होवे है. सेवा कोई सार्वजनिक कार्य या सार्वजनिक प्रवृत्ति नहीं परन्तु सेवा तो स्वयंके आन्तरिक जीवनके साथ सम्बन्ध रखवेवाली बात होवेसूं स्वयंके जीवनकी स्वयंके घरमें की जावेवाली धर्मरूप प्रवृत्ति है...अतः इतर हवेलीन्की तरह जैसे 'श्रीनाथजीको मन्दिर' शब्द रूढ़ हो गयो होवेसूं प्रयोग कियो जावे है. वस्तुतः तो सामुहिक दर्शन या सेवा जहां की जाती हो ऐसे अन्यमार्गीय सार्वजनिक-देवस्थान जैसो वो मन्दिर नहीं है.

(**पू.पा.गो.श्रीवल्लभरायजी महाराज, सुरत** 'पुष्टिने शीतल छांयडे पृ.सं.१५७-१५८)

(३४) **श्रीमहाप्रभुजीने अलग-अलग मन्दिरन्की प्रणाली खड़ी नहीं करी; परन्तु** यामें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यकी एक दूरदृष्टि हती...प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय बननो चहिये...कोई मन्दिरके पड़ौसमें एक बहन रहे है वाकुं मन्दिरकी आरतीके घंटानाद सुनाई पड़े हैं. सेवा करवेकुं बैठी भई वो बहन ठाकुरजीके वस्त्र बड़े करके स्नान करावे जा रही हती ऐसेमें आरतीके घंटानाद सुनाई दिये. वो ठाकुरजीकुं वहीं वाही अवस्थामें छोड़के मन्दिरकी तरफ दौड़ गई. थोड़ी देरके बाद लौटके घर आई. अब विचार करो कि या तरहसूं कोई सेवा करे तो वामें आनन्द कभी आ सके है क्या? यहां तो प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय है.

(**पू.पा.गो.सुश्रीइन्दिरा बेटीजी,** वडोदरा 'वैष्णवपरिवार अंक.जून ९०)

(३५) तनुजा सेवा और वित्तजा सेवा एक ही व्यक्ति करे तब कहीं जाकर वह मानसीको सिद्ध करती है. केवल तनुजा करली या केवल वित्तजा करली तो अहन्ता-ममता दूर नहीं होगी....कैसे? मैं आपको एक उदाहरण देता हूं...जो घरसेवा करते हैं उनकेलिये तो को प्रश्न नहीं है. लेकिन यदि कोई वित्तजा सेवा करेगा तो समझ लीजीये कि उसने मन्दिरमें भेंट दी, मनोरथ किया. उसकी आप रसीद लेंगे...तब आप कहेंगे ''मैने सेवा लिखायी है''. आप कहते हैं ''मैने सेवा लिखायी है'' तब अहन्ता कहां दूर हुई? अब आप मेहताजीसे क्या मांगोगे? ''ये मेरी रसीद है मेरा प्रसाद लाओ''. तो देखीये अहन्ता-ममतामें हम और बंध गये. तो ऐसी सेवा संसारको दूर नहीं करेगी. संसारमें बांधेगी...केवल यदि हम वित्तजा करते हैं तो हमारे अहंकारको बढाते हैं. और अहन्ता दूर न होगी ममता दूर न होगी तो मानसी कैसे सिद्ध होगी? क्योंकि सभी बन्धनका मूल अहन्ता-ममता ही है.

(पू.पा.गो.श्रीद्वारकेशलालजी महाराज, कामवन–सुरत सिद्धान्तमुक्तावली प्रवचन भरूच जनवरी २००५)

(३६) पुष्टिमार्ग गुप्त है दिखावाकेलिये तो है ही नहीं, भक्त और भगवान् के बीच आन्तरिक सम्बन्ध दृढ करवेको मार्ग है...दोनोंके संबंध ऐसे होने चहिये कि कोई तीसरेकुं वाकी जानकारी न हो पाये. अपनो अपने भगवान्के साथ क्या सम्बन्ध है याकुं दूसरे कोई व्यक्तिकुं जतावेकी आवश्यकता ही क्या है? प्रशंसा पावेकुं स्वयंकी महत्ता बढ़ावेकुं? ये तो सभी कुछ बाधक है.

(**पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी,** अमरेली–कांदीवली 'पुष्टिनवनीत' पृ.१२)

(३७) चित्त भगवत्प्रेममें परिपूर्ण होइ जाय, पूर्णत: भगवान्में लगि जाय, तन्मय अरु तल्लीन होइ जाय है. तब परासेवा होत है. याकों मानसी सेवा कह्यो जाय है. याके सङ्ग मनुष्यकों शरीरसों हु सेवा करनी चहिये...तनुजा सेवासों शरीरकी शुद्धि होत है. अहन्ता–अहंपनेंको नाश होत है. धनसों करी जाती सेवा 'वित्तजा'सेवा है. वासों ममता–मेरोपेनेंको नाश होत है. अहन्ता अरु ममता एक–दूसरेके सङ्ग जुडे भये रहत हैं तासों तनुजा अरु वित्तजा सेवा एकसङ्ग करनी चहिये यामें प्रधानता तनुजा सेवाकी है. केवल धन दे देवेसों सेवा होत नाहीं है वासों तो (चित्तमें) राजसी वृत्ति होत है.

(**षष्ठगृहाधीश पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी वडोदरा** श्रीमद्भगवद्गीता पुष्टिदर्शन पृ.१२५)

(३८/क) ''श्रीमहाप्रभुजी वल्लभाचार्यजीके पुष्टिसम्प्रदायमें दो दीक्षाएं दी जाती हैं. दोनों दीक्षाओंका प्रयोजन और तत्पश्चात् कर्तव्य का भी विचार बहुत आवश्यक है. केवल शिष्येषणासे प्रेरित होकर शिष्य बनानेकेलिये दी जाती दीक्षासे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है. जो भगवत्सेवा करनेकेलिये तैयार नही है उसको कदापि ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनी नहीं चाहिये. परन्तु श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तोंमें यदि निष्ठावान् है तो उसे केवल नामदीक्षा लेनी चाहिये और अन्याश्रयका त्याग करके श्रीकृष्णका आश्रय दृढ करनेकेलिये प्रयत्नशील होकर

नामसेवारत रहना चाहिये. परन्तु ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनेके बाद श्रीकृष्णकी सेवा करनी अनिवार्य है.

श्रीकृष्णकी सेवा भी श्रीमहाप्रभुजीद्वारा दिखलाई गयी रीतिके अनुसार ही हो सकती है. अपने घरमें अपने परिवारके सदस्योंके साथ अपने ही द्रव्यसे भगवत्सेवा करनी चाहिये. किसीको द्रव्य देकर अथवा किसीसे द्रव्य लेकर की जाती सेवा वह भगवत्सेवा तो कदापि नहीं ही है परन्तु श्रीमहाप्रभुजीका द्रोह होनेसे गुरु–अपराधसे ग्रसित बनाकर आरुढपतित बनाती है और इस भक्तिमार्गसे भ्रष्ट करती है. आजीविका चलानेकेलिये की जाती व्यावसायिक सेवासे तो चांडालके समान हीन देवलक बन जाते हैं. अतः भगवत्सेवा अपने घरमें अपने द्रव्य और तनसे ही की जा सकती है.

सेवाकी ही तरह भगवत्कथा–कीर्तन भी स्वयं अथवा निष्काम भगवदीयोंके साथ करने चाहिये. व्यावसायिक कथाकारोंको द्रव्य–दक्षिणा देकर अथवा लेकर करायी जाती कथा राखमें घी होमनेके तुल्य है. ऐसी कथा, पारायण, कीर्तन अथवा सप्ताह पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध हैं. अतः सेवा और कथा दोनों द्रव्य देकर अथवा लेकर करनेसे किसी भी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति किसी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति स्वप्नमें भी नहीं हो सकती है. हां, बहिर्मुख अवश्य होते हैं.

(ख) ''अमे तो राजना खासा खवास मुक्ति मन न आवे रे'' व्रजाधिपका सेवन करनेवाले हम मुक्ति नहीं मांगते हैं फिर भी पुष्टिमार्गी वैष्णव भागवत सप्ताह बैठाकर अपने पितृओंको मोक्षके मार्गपर भेजते हैं पितृमोक्षार्थ भागवत सप्ताह, कोई एकसो आठ कोई एक हजार आठ...अपने पितृ तो गोलोकमें जाते हैं उनको वापिस मोक्षमें क्यों भेजते हो...भागवत सप्ताह पूरी हो जानेके बाद माला पहेरामणी (सौराष्ट्रकी एक वैष्णव परम्परा)की जाती है और कहते हैं कि अब गोलोक धाम...अब गोलोक धाममें भेजना है मतलब यह हुवा कि पितृओंको यहां से वहां सिर्फ धक्के हि खिलवाने हैं हमारा कोई ध्येय ही निश्चित नहीं है हमने श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थोंको खोला नहीं है उसका यह दुष्परिणाम है कि जिसे हमारे पूर्वजोंको भुगतना पड़ रहा है.

(पू.पा.गो.चि.श्रीपुरुषोत्तमलालजी, जुनागढ, श्रीयमुनाष्टक प्रवचन राजकोट २००६)

संयुक्तघोषणापत्र : सुप्रिमकोर्ट

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है....अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें....सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

हस्ताक्षर कर्ता:

गो शरद अनिरुद्धजी (मांडवी-हालोल)

गो किशोरचन्द्र (मांडवी-जुनागढ)

गो अजयकुमार श्यामसुंदरजी (मद्रास)

गो मनमोहन (मुंबई)

गो श्यामसुन्दर मुरलीधरजी (बोरीवली)

गो हरिराय कृष्णजीवनजी (मुंबई)

नि.ली.गो.श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)

गो वल्लभलाल श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)

गो हरिराय श्रीगोविंदरायजी (पोरबंदर)

नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीषजी श्रीकृष्णजीवनजी (दहिसर)

गो व्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)

नि.ली.गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)

गो राजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)

गो विजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)

गो योगेश्वर मथुरेश्वरजी (वडोदरा-सुरत)

गो रघुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)

गो देवकीनन्दनाचार्य (गोकुल-अमदावाद)

गो नवनीतलाल श्रीगोविंदलालजी (कामवन-भावनगर)

गो मुरलीमनोहर श्रीव्रजाधीशजी (दहिसर)

नि.ली.गो.श्रीमाधवरायजी श्रीगोकुलनाथजी (मुंबई-नासिक)

गो रमेशकुमार श्रीगोपीनाथजी (मुलुंड-नासिक)

गो कल्याणराय (कन्हैयाबावा (वीरमगाम-अमदावाद)

गो योगेशकुमार (मुंबई)

गो व्रजप्रिय मुरलीधरजी (बोरीवली)

गो नीरजकुमार श्रीमाधवरायजी (मुंबई-नासिक)

गो शरदकुमार (शीलूबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)

गो चन्द्रगोपाल (चंदुबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)

नि.ली.गो.श्रीनृत्यगोपालजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)

पत्रद्वारा सम्मति:

नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी श्रीगोविंदरायजी (सुरत)

नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (जामनगर)

पञ्चमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लभविद्यानगर)

नि.ली.गो.श्रीगोविंदलालजी (कोटा)

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी श्रीद्वारिकेशलालजी (मांडवी-हालोल)

गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)

गो.श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर)

गो.श्रीविट्ठलनाथजी श्रीव्रजभूषणलालजी (चापासेनी-जूनागढ-जामनगर)

गो.श्रीहरिरायजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर)

गो.श्रीव्रजरत्नजी श्रीव्रजभूषणलालजी (नडीयाद-जामनगर)

गो.श्रीनवनीतलालजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जूनागढ-जामनगर)

गो.श्रीबालकृष्णजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जेतपुर-जामनगर)

(''**महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यवंशज गोस्वामीओंका संयुक्त-घोषणापत्र**'' १९८६ पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्त विवरण पृष्ठ.४९-७८, फोटोकोपी देखें : सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्तप्रकाशन, सन.२००८)

।।सिद्धान्तवचनावलीके अंश।।

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिलें तो...स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह सेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनो प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता (गोस्वामी-मुखीया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव=दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हो और भक्त हो ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध:अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल:एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित:श्री ठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६वां अपराध:श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल:सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित:जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पानेके लिये भी भजन (सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी?...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-समाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंके लिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धतम नरकको पानेवाले सहज आसुरी जीव हैं.

(पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश, हस्ताक्षरोकी फोटोकॉपी देखें:सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्त प्रकाशन, २००८)

सम्मतिमें हस्ताक्षर करनेवाले गोस्वामी महानुभाव :

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी द्वारकेशलालजी (मांडवी-हालोल)

गो.श्रीकिशोरचन्द्रजी पुरुषोत्तमलालजी (जुनागढ़)

गो.श्रीकन्हैयालालजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)

गो.श्रीकृष्णकान्तजी कृष्णचन्द्रजी (इचलकरंजी)

गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)

पंचमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लविद्यानगर)

गो.श्रीगोपिकालंकारजी श्रीवल्लभलालजी (राजकोट-माणावदर)

चतुर्थपीठाधीश गो.श्री.देवकीनन्दनाचार्यजी (गोकुल)

गो.श्रीद्रुमिलकुमार मथुरेश्वरजी (वडोदरा)

गो.श्रीद्वारकेशलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-सुरत)

गो.श्रीनवनीतलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-भावनगर)

गो.श्रीमथुरेशजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)

गो.श्रीमाधवरायजी मुरलीधरजी (वेरावल)

गो.श्रीरधुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)

गो.श्रीरघुनाथजी रमेशकुमारजी (मुलुंड-नासिक)

गो.श्रीरवीन्द्रकुमारजी दामोदरलालजी (राजकोट-मांडवी)

गो.श्रीरसिकरायजी द्वारकेशलालजी (उपलेटा-पोरबन्दर)

गो.श्रीराजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)

गो.श्रीवल्लभलालजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)

गो.श्रीवल्लभलालजी गिरिधरलालजी (कामवन-विद्यानगर)

गो.श्रीवल्लभलालजी देवकीनन्दनजी (गोकुल-अहमदावाद)

गो.श्रीविजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)

गो.श्रीविठ्ठलनाथजी लालमणीजी (कोटा-मुंबई)

गो.श्रीव्रजरायजी रणछोडलालजी (अहमदावाद)

गो.श्रीव्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अहमदावाद)

गो.श्रीव्रजेशकुमार चन्द्रगोपालजी (कडी-अहमदावाद)

गो.श्रीशरदकुमार (शीलूबावा) श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)

गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)

संयुक्तघोषणापत्र : अमदावाद

आज फेरि वो समय आयो है वासों हु कठिन समय आयो है. वा समय तो अन्यमार्गीय लोग मतन्कुं प्रस्तुत करिके भ्रम उत्पन्न करत हते. परि आज तो अपने सम्प्रदायके ही 'सुज्ञजन' श्रीमहाप्रभुजीकी वाणीको विपरीत अर्थ करि रहे हैं. लोगन्कूं पथभ्रष्ट करि रहे हैं. दैवीजीवन्के सङ्ग घोर अन्याय करि रहे हैं. तासों ही

अभी महाप्रभु श्रीवल्लभाधीशके वंशज पुष्टिमार्गीय युवा आचार्यन्ने एक 'संवादस्थापकमण्डल'की स्थापना करीके मुम्बईमें...चार दिवस पर्यन्त एक पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभाको आयोजन कियो हतो...सभामें ३५ महानुभाव आचार्य उपस्थित हते २८ गोस्वामी आचार्य महानुभावन्ने गो.श्रीश्याम मनोहरजी महाराश्री (किशनगढ-पार्ला)के 'सिद्धान्तवचनावली'के भावानुवादकुं सहमति दीनी हती...पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी व्रजभूषणलालजी महाराजश्री जामनगरवारेन्ने पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी महाराजश्रीके सङ्ग विनने करे भावानुवादके मुद्दान्पे चर्चा प्रारम्भ कीनी हती...समयके अभावके कारण चर्चा निर्णयपे पहुंच न सकी. परन्तु वर्तमान(में) कितनेक चर्चास्पद, संशयास्पद मुद्दान्की स्पष्टता या चर्चामें प्राप्त भयी जो वस्तुत: एक बड़ी सिद्धि है. इतनो ही नहीं परन्तु नीचे बताये मुद्दान्के विश्लेषणमें पूज्य श्रीश्याम मनोहरजीके सङ्ग सहमत होयके पूज्य श्रीहरिरायजीने अपने सम्प्रदायकी उत्तम सेवा कीनी है:

१. पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूपसों ही बिराजे हैं, वे स्वरूप पाछें चाहे गुरुके सेव्य होवें के शिष्य (वैष्णव)के सेव्य होवें दोउ(स्वरूपन्)मेंतें कोउमें हु पुरुषोत्तमपनों न्यूनाधिक होत नाहीं.

२. पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त अनुसार कृष्णसेवा करिवेको स्थान गृह ही होइ सकत है सार्वजनिक (स्थल) नाहीं.

३. पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवाकु धनकी प्राप्तिको साधन बनानो नहीं चहिये.

४. देवलक (=भगवत्सेवाकु धनप्राप्तिको साधन अथवा आजीविकाको साधन बनायवेवारे) व्यक्तिकी सेवा निषिद्ध कक्षाकी होयवेसों (वो) सेवा करवे योग्य नाहीं है.

५. श्रीठाकुरजीके तांई काहु प्रकारके दान-भेंट मांगने अथवा स्वीकारने वो शास्त्रद्वारा निषिद्ध है इतनो ही नाहीं परि लाभ-पूजाके हेतुसों अपने लिये द्रव्य अथवा काहु वस्तुको स्वीकारनो वो शास्त्रकी दृष्टिमें ऋणानुबन्धी दोषकों उत्पन्न करिवेवारो होयवेसों बन्धनकारी है.

६. पुष्टिमार्गके सिद्धान्तानुसार श्रीठाकुरजीकुं निवेदन करे पदार्थन्को ही समर्पण होइ सकत है अरु समर्पित पदार्थन्को ही भगवद उच्छिष्टरूपमें प्रसाद लेइ सकत हैं श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें आयी भयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें ली नहीं जा सके है क्योंके श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें

प्राप्त भये पदार्थ (द्रव्य)सों आयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें पाछी लेवेसों 'दत्तापहार'को पाप लागत है.

७. सेवा तो शास्त्रको विषय है तासों सेवाके सम्बन्धमें शास्त्रसों श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थन्सों ही सर्व निर्णय होइ सकत है अन्य काहु प्रकारसों नाहीं.

(''संयुक्तघोषणापत्र:अमदावाद'', मिति ङ्गाल्गुन सुदि.७, श्रीवल्लभाब्द ५१४, दि.११ मार्च १९९२, देखें : पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्तविवरण १९९३)

हस्ताक्षर:

नि.ली.गो श्रीव्रजरायजी-श्रीनटवरगोपालजी महाराज (अहमदाबाद)

पू.पा.गो.श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी महाराज (अहमदाबाद)

च.पी.पू.पा.गो.श्रीदेवकीनन्दनजी (गोकुल)

पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीराजेशकुमारजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीजयदेवलालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीमथुरेशजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीकन्हैयालालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)